॥ श्री ॥

सुंदरविलास

सटीक.



[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]



ॐ

॥ श्रीसुंदरविलास ॥

ब्रह्मनिष्ठपंडित श्रीपीतांबरजीकृत

विपर्ययअंगकी टीकासहित ।

औ

श्रीज्ञानसमुद्र तथा श्रीसुंदरकाव्य

साधु श्रीसुंदरदासजीकृत ।

पंचम आवृत्ति

दोनो भाग संपूर्ण ॥

शरीफ सालेमुहंमद नूरानीकी आज्ञासे

अबदुल्लहुसेन आदमजी बुकसेलर भावन-

गरवालेने छपवायके प्रसिद्ध किया ॥

अमदाबाद युनियन प्रिन्टिंग प्रेस कंपनी लिमिटेडमें

मोतीलाल सामलदासने छाप्या ॥

संवत् १९६९—सन् १९१३.

॥ दोहा ॥

"ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित्। ताकी बानी वेद ॥
भाषा अथवा संस्कृत । करत भेदभ्रम छेद" ॥१०॥
(वि०सा०तृ०त०॥)

॥ श्लोकः ॥

तावद्गर्जंति शास्त्राणि जंबुका विपिने यथा।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद्वेदांतकेसरी ॥ १ ॥

अन्वयः— यथा विपिने जंबुकाः।
अर्थः- जैसै वनविषै श्याल-नामक पशुविशेष
(तहांलगि गर्जते हैं। जहांलगि सिंह नहीं गर्जता है ॥)

तथा शास्त्राणि
वैसै अन्य सांख्यन्यायादिक शास्त्र

तावत् गर्जंति । यावत् महाशक्तिः
तहांलगि गर्जते हैं। जहांलगि महाशक्तिवान्

वेदांत केसरी न गर्जति ॥ १ ॥
वेदांत शास्त्ररूप सिंह नहीं गर्जता है॥ १॥

॥ दोहा ॥

"ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित् । ताकी बानी वेद ॥
भाषा अथवा संस्कृत । करत भेदभ्रम छेद" ॥१०॥
(वि०सा०ह०त०॥)

॥ श्लोकः ॥

तावद्गर्जंति शास्त्राणि जंबुका विपिने यथा।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद्वेदांतकेसरी ॥ १ ॥

अन्वयः— यथा विपिने जंबुकाः।

अर्थः– जैसै वनविषै श्याल-नामक पशुविशेष

(तहांलगि गर्जते हैं। जहांलगि सिंह नहीं गर्जता है ॥)

तथा शास्त्राणि

तैसै अन्य सांख्यन्यायादिक शास्त्र

तावत् गर्जंति । यावत् महाशक्तिः

तहांलगि गर्जते हैं। जहांलगि महाशक्तिमान्

वेदांत केसरी न गर्जति ॥ १ ॥

वेदांत शास्त्ररूप सिंह नहीं गर्जता है ॥ १ ॥

॥ ॐपरमात्मने नमः ॥

॥ दूसरी आवृत्तिकी प्रस्तावना

श्रीसुंदरदासजीने श्रीसुंदरविलासआदिक अनेकग्रंथ औ पदनकी रचना करी है। तिनमैं श्रीसुंदरविलास औ श्रीज्ञानसमुद्र ये दो ग्रंथ अतिप्रसिद्ध हैं ॥

श्रीसुंदरदासजीकी समग्रकविताका संग्रह करिके एक पुस्तकमैं प्रगट होवे तो मुमुक्षुनकूं अति उपयोगी होवै। ऐसी बहुत मित्रांनैं इच्छा प्रदर्शित करी। तिसके अनंतर शोध करते हुये ऐसा एक प्राचीनग्रंथके ऊपरसैं लिखित पुस्तक मेरे मित्र प्राणजीवनदासरामदासके पाससैं मिला ॥ इस आवृत्तिके अंतमे श्रीसुंदरदासजीके किये अनेकग्रंथ

औ पदनका संग्रहरूप सुंदरकाव्य नामक ग्रंथ धन्या है। तिसमैं जितनी कविता हैं सो सर्व बहुत करिके उक्त लिखितपुस्तक- ऊपरमैं लेके धरि है। औ सो लिखितपु- स्तक लिखताके दोषसैं कहुं कहुं अशुद्ध था। सो ब्रह्मनिष्ठपंडित श्रीपीतांबरजीनैं शोधन

---

१ यह महात्मा श्रीरामगुरुके प्रशिष्य औ श्रीबापुजी महाराजके शिष्य हैं॥ इस महात्मानैं श्री पंचदशीकी विस्तृत औ अतिउत्कृष्ट तत्त्वप्रका- शिका नामक हिंदुस्थानीभाषामैं टीका करी है। औ ईशाद्यष्टोपनिषद् नामक वेदके अष्टउपनिषद- नकी संपूर्ण शंकरभाष्यके अनुसार हिंदुस्थानीभा- षामैं टीका करी है॥ औ श्री सुंदरविलासके वी- पर्ययअंगकी टीका तथा श्री विचारचंद्रोदय अरु- श्री वृत्तिरत्नावली आदिक अनेक वेदांतके ग्रंथ

करी दिया ॥ तिस लिखितग्रंथविषै कित-नीक कविता अतिशय अशुद्ध औ वेदांतविषै अतिउपयोगी औ रुचिकर नहीं देखी। सो छोड दई है ॥

श्रीसुंदरविलासके विपर्ययअंगकी टीका जो प्रथमआवृत्तिमैं छापी है। सोई टीका इस ग्रंथमैं बी छापी है। सो टीका ब्रह्म-निष्ठ पंडित श्रीपितांबरजीमहाराजने करी है॥

पीवतरस विपरीत यह। तांहि होत निजज्ञान
बहुरि जन्म होवै नहीं। रहत सुपूर्ण प्रमान॥१॥

विपर्ययअंगकी टीकाके अंतमैं यह उपरि

रचे हैं। औ पदार्थमंजूषा नामक ग्रंथ जो मूलचं-द्रज्ञानीकृत है। सो शोधन करिके छपाया है ॥ इसरीतिसैं इस महात्मानें भाषावालोंपर परमअनु-ग्रह किया है ॥

लिख्या दोहा धर्‌या है। तिसके प्रतिचरणके आरंभमैं अंतरलापिका करिके जो एकएक अक्षर धर्‌या है। सो तिस टीकाकर्ताके नामके सूचक है॥

इस द्वितीयावृत्तिमैं प्रथमावृत्तिसैं बहुत अधिक विषय धर्‌या है॥ श्रीज्ञानसमुद्रआदिक अनेक ग्रंथ तथा २६ रागनके १०० पद इस आवृत्तिमैं छापे हैं। सो इस ग्रंथकी आदिमैं धरी हुई अनुक्रमणिकाके देखनैसैं सम्यक् विदित होवैगा॥ औ अक्षर बी पूर्वावृत्तिसैं किंचित् बडे रखे हैं। तातैं इसका पठन सुखकर होवैगा॥

शरीफ सालेमहम्मद.

॥ ॐ परमात्माने नमः ॥

॥ प्रथमावृत्तीकी प्रस्तावना. ॥

सर्वप्राणी सुख (परमानंद) प्राप्तिकी औ दुःख (सर्वअनर्थ) निवृत्ति (मोक्ष) की इच्छा करैं हैं। परंतु सो इच्छा आत्म-(अपने) ज्ञानविना और किसीउपायकरि पूर्ण होवै नही ॥ आत्मज्ञानका अधिकार मनुष्यप्राणीकूंही है। औरनकूं नहीं ॥ यद्यपि सुखप्राप्ति औ दुःखनिवृत्तिरूपमोक्षकी इच्छा। उक्तप्रकारकरि सर्वप्राणीऑकूं होवै है। तातें तिनकूं भी मुमुक्षुता संभवै है। तथापि मनुष्यप्राणीविना और किसी प्राणीकूं आत्मज्ञान होनेकी योग्यता नहीं होनेतें वे आत्मज्ञान संपादन करनेमें समर्थ

नहीं है। औ मनुष्यप्राणी समर्थ हैं। तातें सर्वमनुष्योंकूं आत्मज्ञान संपादनीय है॥ सो आत्मज्ञान दो प्रकारका हैः— एक परोक्ष। दूसरा अपरोक्ष॥ वेदांतके अवांतरवाक्यनके श्रवणकरि परोक्षज्ञान होवै है। औ महावाक्यनके श्रवणकरि अपरोक्षज्ञान होवै है॥ सो दोनूं प्रकारके वाक्य वेदचतुष्टयके अंतर्गत हैं॥ तिनकी भाषा संस्कृत होनेतें तिनतें मंदबुद्धिपुरुषनकूं ज्ञान होवै नहीं। औ तिसी अर्थके बोधक अन्य प्राकृतभाषाके ग्रंथनमें तादृशवाक्य देखीये हैं। तिनतें भी मुमुक्षुकूं आत्मज्ञान होवै है॥ तातें संस्कृत ग्रंथनकी न्याई। आत्मज्ञानमें प्राकृत ग्रंथ बी अति उपयोगी होनेतें। यह श्रीसुंदरविलास नामक वेदांत विषयपर पुस्तक अतिलक्षपूर्वक शुद्ध करिके छपाया है॥

यह पुस्तक आरंभते लेके अंतपर्यंत संपूर्ण हिंदुस्थानी भाषामें पद्यात्मक है ॥.... ....तिनमें यद्यपि वेदांतकी शृंखलाबद्ध प्रक्रिया नहीं है। तथापि युक्तिसहित सुभाषित उक्ति करि। अनेक वेदांतकी प्रक्रिया कहिये हैं॥ यह पुस्तक वेदांतप्रस्ताविककाव्यरूप होनेतें अतिरमणीय औ अपूर्व हुवा है॥ .... "श्रीसुंदरविलास। सुंदर अष्टक औ ज्ञानविलास" यह तीनग्रंथ दादूपंथीसाधु श्रीसुंदरदासजीकृत हैं॥ मुख्य जो "श्री सुंदरविलास" नामक ग्रंथ है। ताके सर्व मिलिके चौतीस-अंग हैं। तिनमें ८४७ छंदसंख्या है॥ यह बांचनेमें सुलभ होनेके वास्ते प्रत्येकछंदके अर्धपदकी भिन्नभिन्न पंक्ति करी है। औ प्रत्येक विभक्त्यंत शब्द न्यारे न्यारे किये हैं॥

श्रीसुंदरविलासकी पूर्व छपी हुई सर्व-आवृत्तिआं अशुद्धही रह गईथी। सो अशुद्धता निकासिके अब यह आवृत्ति अतिशयशुद्ध छपी गई है ॥ इस ग्रंथमें मनहर। दूमिळा। इंदव। कुंडलिया। हंसाल औ सवैया। यह छे जातिके छंद हैं ॥ तिनकी रचना अतिउत्कृष्ट हैं। काहेतें। यह बांचिके वा सुनिके मंदबुद्धिपुरुषनकूं भी अतिआनंद औ वेदांतपरप्रेम उत्पन्न होवे है॥

---

१ यह छंद कोई भी रागके ध्रुवपदके गायनमें उपयोगी होवे है ॥ इसी हेतुतें पूर्व लिखी हुई औ छपी हुई प्रतोंमें इस छंदका चतुर्थ पदांस टेककी न्याई कहूं कहूं छंदकी आदिमें रखनेकी पद्धति देखी है। परंतु सो इस आवृत्तिमें नहीं रखी है ॥

इस ग्रंथके "उपदेश चिंतामणि" नामक दूसरे अंगमें ३३ औ ३४ इन अंकनवाले जो दो दुमिला छंद हैं। सो चित्रकाव्यरूप हैं। परंतु इसतें पर्व छपी हुई आवृत्तिओमें तिनका स्वरूप प्रदर्शित किया नहीं है। सो इस आवृत्तिमें "द्वादशपुष्पमालाबंध" चित्रके आकारमें दिखाय दिया है। यातें कविका पांडित्य जान्या जावै है॥ चित्रकाव्यकी रचना अतिकठण होवै है। काहेतें। चित्रकाव्यके सादृश्य भासनयुक्त शब्दनमें। अभिलषितअर्थका यथार्थ समावेश होना दुर्लभ है॥ औ ऐसी रचना विना चित्रकाव्य ह्वै नहीं॥ चित्रकाव्यांतरगत अर्थ भी अतिदुर्लभ होनेतें मंदबुद्धिपुरुषनकूं समजना कठिन होवै है। इस हेतुतें। इन दो छंदनकी तिस स्थलमें

टीका लिखी है। औ चित्रकाव्य ग्रंथके आरंभमें रखी है ॥

"विपर्यय" नामक जो वीशवा अंग है। सो उलटे अभिप्रायवाला होनेतें मंदबुद्धिपुरुषनकूं ताका अर्थ समझ्या जावै नहीं ॥ ताकी टीका एक सत्पुरुषने करि है। सो प्रत्येक सवैयेके प्रत्येक पादकी भिन्न भिन्न छापी है ॥ तामें बहुत पद पदार्थ दर्शाये हैं ॥ यद्यपि इस अंगकी और भी पूर्व कितनीक टीका भई हैं। तथापि वे सब योगके विषयपर होनेतें मुमुक्षु पुरुषनकूं उपयोगी नहीं है। तातें यह टीका केवल वेदांतविषयक छापी गई है। सो सर्व मुमुक्षुपुरुषनकुं अति उपयोगी होवैगी ॥ इस अंगका विषय दुर्बोध होनेतें। कहूं कहूं टीकामें काठिनता दृष्ट पडेगी। यातें जिनकूं

कठिनता प्रतीत होवै। तिनोंनें इसका गुरु-मुखद्वाराही श्रवण वा पठन करि लेना ॥ इस टीकामें और एक ऐसा चातुर्य है की। मूलके जो शब्द हैं सो अन्वयकी रूढीसें भाषामें मिलायके बडे अक्षरोंमें रखे है ॥

श्रीसुंदरविलास ग्रंथमें हिंदुस्थानी भाषाके रूढिशब्द बहुत देखनेमें आवैं हैं। औ कहं कहूं संस्कृतशब्द भी दखिये हैं। तिनका अर्थ सर्वपुरुषनकूं सुगम होनेके वास्ते तिसी पृष्ठके नीचे टिप्पनमें दर्शाये हैं ॥

इस ग्रंथमें यद्यपि कहूं कहूं अशुद्ध औ अपभ्रंश शब्द देखिये हैं। तथापि ताका दोषारोप कर्त्तापें नही है काहेतें। हिंदुस्थानीभाषामें संस्कृतशब्दनकी कविताके नियमके वास्ते। बहुत अशुद्धता होई जावै

है ॥ औ कहूं भाषाके शब्दनमें भी अधिक न्यूनता होई जावै है । सो कविऑनें अशुद्धता नहीं गिनी है ॥

इस ग्रंथके कर्त्ता दादूपंथी साधु श्रीसुंदरदासजी बडेमहात्मापुरुष औ पंडित भये है । तिनका जन्मचरित्र इस पुस्तकमें लिखनेकी हमारी इच्छा थी । परंतु ताका वृत्तांत यथास्थित हमकूं मिल्या नहीं । तातें सो लिख्या नहीं है ॥ इस महात्मापुरुषनें वेदांतविषयपर बहुत ग्रंथ किये हैं । ऐसे सुन्या जावे है । परंतु सो इस देशमें अप्रसिद्ध हैं । श्रीसुंदरविलास । ज्ञानविलास । ज्ञानसमुद्र । औ दश अष्टक । इतने ग्रंथ प्रसिद्ध हैं । सो भी वेदांतीओंकूं अतिउपयोगी भये हैं ॥

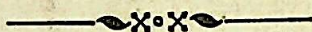
इस महात्मापुरुषने प्रस्ताविककाव्य बहुत करी है। ऐसे सुन्या है ॥ कहते हैं की इस

श्रीसुंदरविलास नामक ग्रंथकी रचना श्री-सुंदरदासजीने ग्रंथके आकारमें करी नहीं थी । किंतु ऐसे बहुत प्रस्ताविककविताकी वेदांतविषयपर रचना करीथी । तिस कविताका संग्रह कोई एक साधुपुरुषने करिके । तिनकी यथानुक्रम रचनापूर्वक ग्रंथरूप आकृति बनाइ है ॥ तामें जो अतिउपयोगी कविताथी सो लीनी है । औ अनेक छोडि भी दीनी है ॥ श्रीज्ञानविलास नामक ग्रंथ है । सो भी इसी रीतिसें ग्रंथाकार भया है ॥ ऐसे इसी ग्रंथकी सुंदरविलासके सादृश्यताद्वारा अनुमान होवै है ॥ श्रीज्ञानसमुद्र नामक जो ग्रंथ है । सो आदिसेंही ग्रंथके कर्त्तानें ग्रंथके आकारमें किया है । ऐसे स्पष्ट जान्या जावै है ॥ काहेतें । यामें पांच उल्लास किये

हैं ॥ प्रथमउल्लासमें गुरुशिष्यके लक्षण कहे हैं। दूसरेमें उत्तम मध्यम औ कनिष्ठ यह तीनप्रकारकी भक्तिका वर्णन किया है। तीसरेमें अष्टांगयोगका कथन किया है। चतुर्थमें सांख्ययोगका निरूपण किया है। औ पंचममें राजयोग कह्या है ॥ यह रचना सांकेतिक होनेतें सो कर्त्ताकी सिद्ध होवै है ॥ श्रीज्ञानसमुद्रग्रंथकी समाप्ति संवत् १७१० के वर्ष में भई है। तातें कर्त्ताके जीवितकालका प्रमाण भी होवै है ॥ औ जो दश अष्टक हैं। तिन प्रत्येकका विषय भिन्नभिन्न है। औ तिनकी कविता अतिरसिक है ॥ कहते हैं की ऐसे और भी बहुत अष्टक किये हैं। परंतु सो सब अप्रसिद्ध हैं ॥

शा॰ सा॰

श्रीसुंदरविलासकी अनुक्रमणिका ।



॥ श्रीज्ञानसमुद्रकी अनुक्रमणिका ॥

॥ श्रीसुंदरकाव्य ॥

॥श्रीज्ञानविलासकी अनुक्रमणिका॥

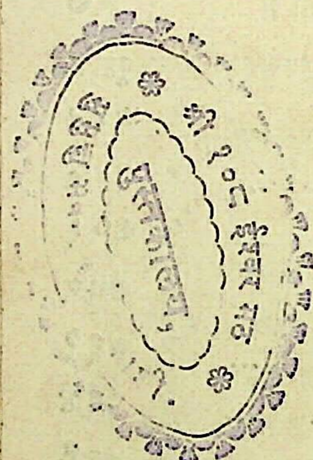
॥ श्रीसुंदराष्टकनकी अनुक्रमणिका ॥



ग्रंथ सर्वांगयोगकी अनुक्रमणिका.॥

॥ श्रीसुंदरदासजीके पदनकी अनुक्रमणिका ॥







॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ श्री सुंदरविलास प्रारंभः ॥

॥ अथ श्रीगुरुदेवको अंग ॥ १ ॥

॥ इंदव छंद ॥

मौज करी गुरुदेव दया करी ।
शब्द सुनाय कह्यो हरि नेरो ॥
ज्यूं रविके प्रगटे निशि जात सु ।
दूरि कियो भ्रम भान अँधेरो ॥
कायक वाचक मानसहू करि ।
है गुरुदेवहि वंदन मेरो ॥
सुंदरदास कहै कर जोरि जु ।
दादु दयालकों हूं नित चेरो ॥ १ ॥

पूरनब्रह्म-विचार निरंतर ।
काम न क्रोध न लोभ न मोहै ॥

श्रोत्र त्वचा रसना अरु घ्राण सु ।
देखि कछू कहुँ नैन न मोहै ॥
ज्ञानस्वरूप अनूप निरूपन ।
जासु गिरा सुनि मोहन मोहै ॥
सुंदरदास कहै कर जोरि जु ।
दादु दयालहि मोर नमो है ॥ २ ॥
धीरजवंत अडिग्ग जितेंद्रिय ।
निर्मलज्ञान गह्यो दृढ आदूं ॥
शील सँतोष क्षमा जिनके घट ।
लागि रह्यो सु अनाहद नादू ॥
भेख न पक्ष निरंतर लक्ष जु ।
और कछू नहि वाद विवादू ॥
ये सब लच्छन हैं जिनमांहि सु ।
सुंदरकें उर हैं गुरु दादू ॥ ३ ॥
भौजलमें वहि जात हुते जिन ।

---

१ वाणी ॥ २ आदिकालका ज्ञान ॥

काढि लियो अपनो करि आदू ॥
और सँदेह मिटाय दिये सब ।
काननि टेर सुनायके नादूँ
पूरनब्रह्म प्रकाश कियो पुनि ।
छूटि गयो सब वादविवादू ॥
ऐसि कृपा जु करी हम ऊपर ।
सुंदरके उर हैं गुरु दादू ॥ ४ ॥
कोउक गोरखकूं गुरु थापत ।
कोउक दत्त दिगंबर आदूँ ॥
कोउक कंथर कोउक भँर्थर ।
कोउ कबीरके राखत नादू ॥
कोउ कहै हरदास हमार ज़ु ।

---

३ अन्वयः-आदू (प्रथम) भौजलमें । वा । अपनो आदू (आदि)स्वरूपकरि ॥ ४ महावाक्यका उच्चार ॥ ५ ॥ दत्तात्रेय ॥ ६ आदिको ॥ ७ भर्तृहरी ॥ ८ कबीरपंथिका गुरुचिन्ह ॥

यूं करि ठानत वादविवादू ॥
और तु संत सबैं शिर ऊपर ।
सुंदरके उर हैं गुरु दादू ॥ ५ ॥
कोउ विभूति जटा नख धारि क-
है यह भेख हमारहि आदू ॥
कोउक कान फराय फिरै पुनि ।
कोउक सिंगि बजावत नादू ॥
कोउक केश लुंचाइ करै व्रत ।
कोउक जंगमें के शिववादू ॥
यूं सब भूलि परे जितही तित ।
सुंदरके उर हैं गुरु दादू ॥ ६ ॥
योगि कहैं गुरु जैन कहैं गुरु ।
बौध कहैं गुरु जंगम मानै ॥
भक्त कहैं गुरु न्यांसि कहैं वन-

---

९ जैन ॥ १० नानकपंथिनके शिष्यनकी एकसा-खावाले ॥ ११ शैव अथवा लिंगायत ॥ १२ संन्यासी ॥

वासि कहैं गुरु और बखानें ॥
शेख कहैं गुरु सूंफि[13] कहैं गुरु ।
या हित सुंदर होत हिरानें ॥
वाँहु[14] कहैं गुरु वाहु कहैं गुरु ।
है गुरु सोई सबै भ्रम भानैं ॥ ७ ॥
सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु ।
सत्व रजो तम ताप निवारी ॥
इंद्रिय देह मृषा[15] करि जानत ।
शीतलता समता उर धारी ॥
व्यापकब्रह्म-विचार अखंडित ।
द्वैतउपाधि सबै जिन टारी ॥
शब्द सुनाय सँदेह मिटावत ।
सुंदर वा गुरुकी बलिहारी ॥ ८ ॥
पूरनब्रह्म बताय दियो जिन ।

---

१३ मुसलमानोंमें वेदांतके अनुसारी ॥ १४ अन्यकूं ॥ १५ मिथ्या ॥

एक-अखंडित-व्यापक सारे ॥
राग रु द्वेष करैं अब कौनसुँ।
जो अँहिं[16] मूल वही सब डारे ॥
संशय शोक मिट्यो मनको सब।
तँत्त्वविचार[17] कह्यो निरधारे ॥
सुंदर शुद्ध कियो मॅल[18] धोइ ज।
है गुरुको उर ध्यान हमारे ॥ ९ ॥
ज्यूं कपडा दरजी गहि व्योंतत।
काष्ठहिकूं वँढई[19] कसियॅंनै[20] ॥
कंचनकूं जु सुनार कसै पुनि।
लोहको घाट लुहारहि जानै ॥
पाहानकूं कसि लेत सिलावट।
पात्र कुंभारके हाथ निपानै ॥
तैसहि शिष्य कसै गुरुदेव जु।

---

१६ है ॥ १७ आत्मविचार ॥ १८ पापबुद्धि। अविद्या औ ताका कार्य ॥ १९ छेदे ॥ २० सुतार ॥

सुंदरदास तबै मन मानै ॥ १० ॥

॥ मनहर छंद ॥

शत्रूहू न मित्र कोउ। जाके सब हैं समान।
देहको ममत्व छांडि। आतमाही राम है ॥
औरहू उपाधि जाके कबहू न देखियत।
सुखके समुद्रमें रहत आठों जाम हैं ॥
रिद्धि[21]अरुसिद्धि[22] जाके हाथ जोरि आगे खरी।
सुंदर कहत ताके। सबही गुलाम हैं ॥
अधिक प्रशंसा[23] हम। कैसेकीर कही शकैं।
ऐसे गुरुदेवकूं हमारे जु प्रनाम हैं ॥ ११ ॥
ज्ञानको प्रकाश जाके। अंधकार[24] भयो नाश।
देह-अभिमान जिन। तज्यो जानि छारधी ॥
सोइ सुखसागर। उजागर[25] वैरागर[26] जु।

---

२१ विभूति ॥ २२ अणिमादि अष्टसिद्धि ॥
२३ श्लाघा। स्तुति ॥ २४ अज्ञान ॥ २५ सुचेत ॥
२६ वैराग्यवान ॥

जाके बैन सुनत। बिलात है विकारधी ॥
अगम अगाध अति। कोउ नाहिं जानै गति।
आतमाको अनुभव। अधिक अपारधी ॥
ऐसे गुरुदेव वंदनीक। तिहूँ लोकमांहि।
सुंदर विराजमान। शोभत उदारधी ॥१२॥
काहुसूं न रोषँ[27]-तोषँ[28] काहुसूं न राग-दोषँ[29]।
काहुसूं न वैरभाव। काहुसूं न घांत[30] है ॥
काहुसूं न बकवाद। काहुसूं नहीं विषाद[31]।
काहुसूं न संग न तौ। काहु पक्षपात है।
काहुसूं न दुष्टबेन। काहुसूं न लैन· दैन।
ब्रह्मको विचार कछु। और न सुहात है ॥
सुंदर कहत सोई। ईशनको महाईश।
सोई गुरुदेव जाके। दूसरी न बात है ॥१३॥
लोहकूं ज्यूं पारस पाषानहूं पलटि लेत।

२७ क्रोध ॥ २८ प्रसन्नता ॥ २९ द्वेष ॥ ३० दगा ॥ ३१ खेद ॥

कंचन छुवत होत । जगमें प्रमानिये ॥
द्रुम[32]कूं ज्यूं चंदन पलटही लगाय वास ।
आपके समान ताकूं । शीतलता आनिये ॥
कीटकूं ज्यूं भ्रंगि[33]हू पलटिके करत भ्रंगि ।
सोउ उडि जाई ताको । अचरज मानिये ॥
सुंदर कहत यह । सगरे प्रसिद्ध वात ।
सद्य[34] शिष्य पलटै[35] सो । सद्गुरु जानिये ॥१४॥

गुरु बिन ज्ञान नाँहि । गुरु बिन ध्यान नँहि ।
गुरु बिन आतमाबिचार न लहतु है ॥
गुरु बिन प्रेम नँहि । गुरु बिन नेम नाँहि ।
गुरु बिन शीलहु संतोष न गहतु है ॥
गुरु बिन प्याँस[36] नाँहि बुद्धिको प्रकाश नँहि ।
भ्रम[37]हुको नाश नँहि । संशय रहतु है ॥

---

३२ वृक्षकूं ॥ ३३ भ्रमरी ॥ ३४ तत्काल ॥ ३५ जीवभाव पलटिके ब्रह्मभाव होना ॥ ३६ जिज्ञासा ॥ ३७ देहादिककी औ जीवब्रह्मके भेदकी सत्यताका ज्ञान । विपरीतभावना ॥

गुरु बिन बाट नाहिं। कौडी बिन हाट नाहिं।
सुंदर प्रगट लोक-वेद यूं कहतु है ॥ १५ ॥
पढेके न बैठो पास। अक्षर न बांचि शकै।
बिनही पढितें कैसे। आवत है फारशी ॥
जव्हरीके मिले बिन। परखि न जानै कोई।
हाथ नंग[३८] लिये रहै। संशय न टारसी ॥
वैदहु न मिल्यो कोउ। बूटिकूं बताइ देत।
भेद बिन पाय वाके। औषध है छारसी ॥
सुंदर कहत सुख। रंचहु न देख्यो जाई।
गुरु बिन ज्ञान जैसे। अंधेरेमें आरसी ॥१६॥
गुरुके प्रसाद बुद्धि। उत्तमदशाकूं गहै।
गुरुके प्रसाद भवदुःख बिसराईयें ॥
गुरुके प्रसाद प्रेम। प्रीतिहु अधिक बाढै।
गुरुके प्रसाद राम। नाम गुन गाईयें ॥
गुरुके प्रसाद सब। योगकी युगति जानै।

---

३८ जव्हर। पत्थरविशेष ॥ ३९ ब्रह्मनिष्ठ ॥

गुरुके प्रसाद सुन्यमें समाधि लाईयें ॥
सुंदर कहत गुरुदेव जु कृपालु होई ।
तिनके प्रसाद तत्त्वज्ञान पुनि पाईयें ॥ १७

डूबत भौसागरमें । आइके वंधावै धीर ।
पारहु लंगाई देत । नावकूं ज्यूं खेवै सो ॥
परउपकारी सब । जीवनके सारे काज ।
कबहु न आवै जाके । गुननिको छेव सो ।
बचन सुनाई भय । भ्रम सब दूरि करैं ।
सुंदर दिखाई देत । अलख अभेव सो ॥
औरहु सनेही हम । नीके करि शोधि देखे ।
जगमें न कोउ हितकारी गुरुदेव सो ॥१८॥

गुरु मात गुरु तात । गुरु बंधु निज गोत ।
गुरुदेव नख शिख । सकल संवार्‍यो है ॥
गुरु दिये दिव्यनैन । गुरु दिये मुख बैन ।

---

४० निष्प्रपंचस्वरुपमैं ॥ ४१ नावकूं चलानेवाला ॥ ४२ अंग ॥ ४३ सुधार्‍यो ॥ ४४ अलौकिक ॥

गुरुदेव श्रवन दे। शबद उचार्‌यो है ॥[45]
गुरु दिये हाथ पाव। गुरु दिये शीशभाव।
गुरुदेव पिंड मांहि। प्रान आई डार्‌यो है।
सुंदर कहत गुरुदेव जु कृपालु होई।
फेरि धाट घडि कारि। मोहि निसतार्‌यो है १

कोउ देत पुत्र धन। कोउ देत बल धँन[46]।
कोउ देत राजसाज। देव ऋषि मुन्‍यो[47] है॥
कोउ देत यश मान। कोउ देत रसआन।
कोउ देत विद्याज्ञान। जगतमें गुंन्यो[48] है॥
कोउ देत रिद्धि सिद्धि कोउ देत नवनिधि
कोउ देत ओरकछु। तातें शिश घुंन्यो[49] है।
सुंदर कहत एक। दियो जिन राम नाम।
गुरुसो उदार कोउ। देख्यो है न सुन्यो है २

---

४५ उच्चार्‌यो ॥ ४६ बहुत ४७ मुनि ४८ गुणवान ॥ ४९ मस्तक हिलाइके रिद्धिसिद्धिका अनादर किया ॥

भूमिहुकी रेनुंकी तो। संख्या कोउ कहत
भारहु अठारद्रुम। तिनके जु पात हैं ॥
मेघनिकी संख्या सोउ।ऋषिने कही विचारि।
बुंदनिकी संख्या तेउ। आइके बिलात हैं ॥
तारनकी संख्या सो तौ।कही है पुरानमांहि।
रोमनिकी संख्या पुनि। कितनेक गात हैं ॥
सुंदर जहांलौं जंत। तिनहीको आवै अंत।
गुरुके अनंत गुन।कापै कहै जात हैं ॥२१॥
गोविंदके किये जीव। जात हैं रसातलकूं।
गरु उपदेशै सो तौ। छूटै जमफंदतैं ॥
गोविंदके किये जीव। वश परे कर्मनके।
गरुके निवारे सू फिरत हैं स्वेछंदतैं ॥
गोविंदके किये जीव। डूबत भौसागरमें।
सुंदर कहत गुरु। काढै दुःखद्वंद्वतें ॥

५० रजकी ॥ ५१ स्वतंत्र होईके ॥ ५२ राग द्वेष। क्षुधा तृषा। इत्यादि दो दो दुःख ॥

औरहू कहांलौं कछू । मुखतें कहूं बनाय ।
गुरुकी तौ महिमा अधिक है गोविंदतें २
चिंतामणि पारस कलपतरु कामधेनु ।
औरहु अनेकनिधि । वारि वारि नाखियें ॥
जोई कछु देखिये सो । सकल विनाशवंत ।
बुद्धिमें विचार करि । बहु अभिलाखियें ॥
तातें मन वचन करम करि कर जोरि ।
सुंदर चरन शीश मेली दीन भाखियें ॥
बहुतप्रकार तीनुंलोक सब शोधे हम ।
ऐसी कौन भेट गुरुदेव आगै राखियें २
महादेव वामदेव । ऋषभ कपिलदेव ।
व्यास शुकदेव जयदेव नामदेव जू ॥
रामानंद सुखानंद कहिये अनंतानंद ।
सुरसुरानंदहुके । आनंद अछेव जू ॥
रैदास कबीरदास । सोझादास पीपादास ।
दासहूके दासभाव । भावहूकी टेव जू ॥

सुंदर सकलसंत । प्रगट जगत मांहि ।
तैसे गुरुदादू दास । लागै हरिसेव जू ॥२४
गुरुदेव सर्वोपरि । अधिक विराजमान ।
गुरुदेव सबहितें । अधिक गरिष्ठ[53] हैं ॥
गुरुदेव दत्तात्रय । नारद शुकादि मुनि ।
गुरुदेव ज्ञानघन । प्रगट वशिष्ठ हैं ॥
गुरुदेव परमआनंदमय देखियत ।
गुरुदेव वरें[54] वरियानहूं[55] वरिष्ठ[56] हैं ॥
सुंदर कहत कछु । महिमा कही न जाय ।
ऐसे गुरुदेव-दादू । मेरे शिर इष्ट हैं ॥२५॥
योगी जैन जंगम संन्यासी वनवासी बौध ।
और कोउ भेख पक्ष । सबभ्रम भान्यो है ॥
तापस रु ऋषीश्वर । मुनीश्वर कवीश्वर ।
सबनिको मत देखि । तत्त्व पहिछान्यो है ॥

---

५३ भारी ॥ ५४ पंचमीभूमिकाआरूढ ॥ ५५ षष्ठीभूमिकाआरूढ ॥ ५६ सप्तमीभूमिकाआरूढ ॥

वेदसार तत्त्वसार । सम्रृति पुरान सार ।
ग्रंथनिको सार सोई। हृदैमांहि आन्यो है ॥
सुंदर कहत कछु । महिमा कही न जाय ।
ऐसो गुरुदेव-दादू । मेरे मन मान्यो है ।२६
जीत है जु काम-क्रोध। लोभ-मोह दूरि किये।
और सब गुननिको । मद जिन भान्यो है ।
उपजै न ताप कोई । शीतलस्वभाव जाको ।
सबहीमें समता संतोष उर आन्यो है ॥
काहूसुं न राग-दोष । देते सबहीकूं तोष ।
जीवतही पायो मोष । एकब्रह्म जान्यो है ।
सुंदर कहत कछु । महिमा कहि न जाय ।
ऐसो गुरुदेव-दादू । मेरे मन मान्यो है॥२७

इति श्रीगुरुदेवको अंग संपूर्ण ॥१॥

अथ उपदेशचिंतामणीको अंग ॥२॥

॥ हंसाल छंद ॥

तो सहि चतुर सुजान परबीन अति ।

परै जनी पिंजर मोह-कूवा ॥
पाय उत्तमजनम लाय ले चपल-मन ।
गाय गोविंद-गुन जीत जूवा ॥
आपही आप अज्ञान-नलिनी बँध्यो ।
बिना प्रभु विमुख कै बेर मूवा ॥
दाससुंदर कहै परमपद तौ लहै ।
राम हरि राम हरि बोल सूवा ॥ १ ॥
नैफ्स शैंयतानकूं कैद कर आपने ।
क्या दुनीमें फिरै खाय गोता ॥
है गुनेगार भी गुनाही करत है ।
खायगा मार तब फिरैं रोता ॥

---

१ जगतरूपी जुवाबाजीकू जीत । कहिये संसारतें मुक्त हो ॥ २ जैसे सूवा नलिनी साथ लटकिके औ आकाशकूं जल मानिके बंधनकूं प्राप्त होवैहै । तैसे जीव अविद्यारूपी नलिनीमें फसिके आपकूं बद्ध मानै है ॥ ३ मन ॥ ४ कुमार्गमें प्रवृत्ति करावनेवाला ॥

जिन तुझे खाकसें अजब पैदा किया ।
तूं उसे क्यूं फरामोश होता ॥
दासमुंदर कहै शरम तबही रहै ।
हक्क तूं हक्क तूं बोल तोता ॥ ॥ २ ॥
आँबकी बुंदहि वजूद पैदा किया ।
नैन मुख नाशिका कर सँजूती ॥
खेलं ऐसा करै ओहि लीये फिरै ।
जागके देख क्या करै सूती ॥
भूलि उस खसंमकूं काम तैं क्या किया ।
वेगही याद कर मर निपूंती ॥
दाससुंदर कहै सरवसुख तौ लहै ।

---

५ विस्मरण ॥ ६ सत्य ॥ ७ जलकी ॥ ८ शरीर ॥ ९ जो परमात्मा जलकी बुंदसें शरीररूपी खेलकूं रचै है । सोही तिस शरीरकूं लेईके साथही फिरै है । सो तूं जागिकें देख ॥ १० पतिकूं ॥ ११ बांझ (पुत्ररहित) ॥

[12]भी तुँही भी तुँही बोल तूती ॥ ३ ॥
अवल उस्तादके[13] कदमकी[14] खाक हो ।
हिर्स[15] बगुजार[16] सब छोड फैनाँ[17] ॥
यार[18]-दिलूंदार[19] दिलमांहि[20] तूं याद कर ।
है तुज्ही पास तूं देख नैना ॥
जानका[21] जान है जिंदका[22] जिंद है ।
सुखनिका[23] सुखन कछु समज सैना[24] ॥
दाससुंदर कहै सकलघटमें रहै ।
एक तूं एक तूं बोल मना ॥ ४ ॥

---

१२ केवल ॥ १३ गुरुके ॥ १४ चरणकी ॥ १५ अशुभकामना ॥ १६ त्याग दे ॥ १७ व्यसन ॥ १८ दोस्त (कूटस्थ) ॥ १९ मनकूं वश करनेवाला (परमात्मा) ॥ २० अंतःकरणविषे परमात्मा है । दूर नहीं है । ऐसे स्मरण कर ॥ २१ जाननेवाली जो अंतःकरणकी वृत्ति । तिनकूं भी जाननेवाला है ॥ २२ जीवनका जीवन है ॥ २३ वक्ताका ॥ २४ स्याना ॥

॥ मनहर छंद ॥

कानके गयेतें कहा । कान ऐसे होत मूढ ।
नैनके गयेतें कहा । नैन ऐसे पाइये ॥
नाशिका गयेतें कहा । नाशिका सुगंध लेत ।
मुखके गयेतें कहा । मुख ऐसे गाईये ॥
हाथके गयेतें कहा । हाथ ऐसे काम होत ।
पावके गयेते ऐसे । पाव कित धाइये ॥
याहितें विचारि देख । सुंदर कहत तोहि ।
देहके गयेतें ऐसी । देह कित पाइये ॥ ५ ॥
बेर बेर कह्यो तोहि । सावधान क्यूं न होइ ।
ममताकी [25]मोट शिर । काहूकूं धरतु है ॥
मेरो धन मेरो धाम । मेरे सुत मेरी [26]बाम ।
मेरे पशु मेरे ग्राम । भूल्योही फिरतु है ॥
तूं तौ भयो बावरो । बिकाइ गई बुद्धि तेरी ।
ऐसो अंध-कूप गेह । तामें तूं परतु है ।

---

२५ बोजा । गठडी ॥ २६ स्त्री ॥

सुंदर कहत तोहि । नेकँहु[27] न आवै लाज ।
काजकूं बिगारके अकाज क्यूं करतुं है ॥६॥
तेरो[28] तोकूं पेच पर्‍यो । गांठि अति घूरि गई ।
ब्रह्मा आई छोरे क्यूंही । छूटत न जबहू ॥
तेलसूं भिजोई करि । चीथरा लपेटि राखै ।
कूकरको पूंछ सूधो । होत नाँहि तबहु ॥
सासू देत सीख बहु । कीरींकूं गिनत जाइ ।
कहत कहत दिन । बीत गयो सबहू ॥
सुंदर अज्ञानी ऐसे । छोडै नाँहि अभिमान ।
निकसत प्रान लग । चेतै नाँहि कबहू ॥ ७ ॥
बालूंमांहि[29] तेल नांहिं । निकसत काहूविध ।
पथ्थर न भीजै बहु बरषत धँन[30] है ॥
पानीके मथेतें कहूँ घीउ नांहिं पाइयत ।

---

२७ रंचमात्र ॥ २८ देहाभिमानरूपी पेंचमें पर्‍यो । तातें भेदबुद्धिरूपी गांठि अतिदृढ होगई है ॥ २९ समुद्रकी रेतमैं ॥ ३० वर्षा । मेघ ।

कूकसके कूटे कहूँ । निकसत कन है ॥
सून्यहीकी मूठीं भरि । हाथ न परत कछु ।
ऊसर[31]में बोहे कहा । निपजत अन है ॥
उपदेश-औषध सो । कौनविधि लागै ताँहि ।
सुंदर असाँध[32]रोग । भयो जाके मन है ॥ ८ ॥

वैरी घरमांहि तेरे । जानत सनेही मेरे ।
दारा[33] सुत वित्त[34] तेरे खोसि खाएँगे ॥
औरहू कुटुंब-लोक । लूटै चहु औरहीतें ।
मीठी मीठी बात कही । तोसू लपटाएँगे ॥
संकट परैंगे जब । कोई नहिं तेरो तब ।
अंत[35]ही कठिन बाकीबेर उठि जाएँगे ॥
सुंदर कहत तातें । झूठोही प्रपंच सब ।
स्वपनकी न्यांई यह । देखत बिलाएँग[36] ॥९॥

---

३१ क्षारभूमिमें ॥ ३२ जाननेंमें नहीं आवे ऐसा ॥ ३३ स्त्री ॥ ३४ धन ॥ ३५ देहपातरूप कठिन समयमें तिसही बेर उठि जाएँगे ॥ ३६ नाश होवैगा ॥

बालूके मंदिरमांहि । बैठि रह्यो स्थिर होई ।
राखत है जीवनकी । आस केऊ दिनकी ॥
पल पल छीजत घटत जात घरी घरी ।
बिनसत बेर कहा । खबर ना छिनकी ॥
करत उपाय झूठे । लेन-देन खान-पान ।
मूसाँ[३७] इत उत फिरै । ताकी रही मिंनकी[३८] ॥
सुंदर कहत मेरी । मेरी करि भूल्यो सठ ।
चंचल-चपल-माया । भई किन किनकी ॥१०
श्रवण ले जाइ करिं । नादकी ले डारै फासी ।
नैनहू ले जायकरि । रूप वस कऱ्यो है ॥
नाशिका ले जाईकारि । बहुत सुंघावै गंधं ।
रसना ले जाईकरिं । स्वाद मन हऱ्यो हैं ॥
त्वचाहु ले जाईकारि । नारिसूं परस करै ।
सुंदर कोईक साधु । ठगनित डऱ्यो है ॥
काम-ठग-क्रोध-ठग । लोभ-ठग मोह-ठग ।

---

३७ उंदीर ॥ ३८ बिलाडी ॥

ठगनिकी नगरीमें। जीव आइ पर्‍यो है ॥११॥

पायो है मनुष्यदेह। औसर बन्यो है एह।
ऐसो देह बेरबेर। कहो कहां पाइये ॥
भूलत है बावरे तूं। अबके सियानो होई।
रतन-अमूल सो तौ। काहेकूं ठगाइये ॥
समुझि बिचार करि। ठगनिको संग त्यागि।
ठगबाजी देखि कहुँ। मन न डुलाइये ॥
सुंदर कहत तातें। सावधान क्यूं न होई
हरिको भजन करि। हरिमें समाइये ॥१२॥

घरि घरि घटत छिजत जात छिन छिन।
भिजतही गरी जात। माटीकेसो ढेलै है ॥
मुकतिके द्वार आई। सावधान क्यूं न होई।
बेर बेर चढत न। तिंयाकोसो तेल है ॥

---

३९ गढा ॥ ४० मनुष्यदेहरूपी मुक्तिका द्वार ॥ ४१ लग्नके समयमें कन्याके शरीरपर मलके हरन करनेकेवासते तैलयुक्त सुगंधीपदार्थनका मर्दन करे है। सो पुनः पुनः नहीं होवैहै ॥

करी ले सुकृत हरि। भजि ले अखंड-नर।
यांहीमें[42] अंतर परे। यामें ब्रह्म मेल है ॥
मनुष्यजनम यह। जीत भावै हार अब।
सुंदर कहत यामें। जूवाकेसो खेल है ॥१३॥
यौवनको गयो राज। और सब भयो साज।
आपनी दुंआई[43] फेरि। दमामो[44] बजायो है ॥
लकुटी हथ्यार लिये। नैन कर ढाल दिये।
स्वेत-बार[45] भये ताके। तंबूसो तनायो है ॥
दर्सन[46] गये सु मानो। दरवान दूरि किये।
जो घरी परी सो आन। बिछानो बिछायो है ॥
सीस कर कंपत सु। सुंदर निकाऱ्यो रिपु।
देखतहि देखत बुढापो दौरी आयो है ॥१४
देहको न देंह कछु। देहको ममत्व छांड।

---

४२ इसी शरीरमें ब्रह्मके साथ भेद पडैहै। औ इसी देहमें ब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै ॥ ४३ ढंढोरा। खबर ॥ ४४ नगारा ॥ ४५ केश ॥ ४६ दांत ॥

देहैं[47] तौ दमामो दिये । देह देह जात है ॥
घट तौ घटत घरि-घरि घट नाश होत ।
घटके गयेतें घटकी न फिर बात है ॥
पिंड पिंडमांहिं पिंड । पिंडकूं उपावत है ।
पिंड पिंड खात पुनि । पिंडहीको पात है ॥
सुंदर[48] न होय जासूं । सुंदर कहत जग ।
सुंदर चैतनरूप । सुंदर विख्यात है ॥१५॥

॥ इंद्रव छंद ॥ ॥

[49]ग्रीव त्वचा कटि[50] है लटकी कच[51] ।
हूं पलटे अजहू रति[52] बामी[53] ॥

---

४७ (१४ वे सवैयेमैं जो शरीरकी अवस्था दिखाई है । सो सर्वशरीरकूं निश्चयकरि प्राप्त होवहै । यातें) देह तोकूं नगारा बजाईके कहै है । जो जितने देह हैं सो सर्व नाशकूं पावै हैं ॥ ४८ जगत ताहिको सुंदर कहै है जो सुंदर नहीं है ॥४९॥ गला ५० कम्मर ॥ ५१ केश ॥ ५२ प्रीति ॥ ५३ दूनी । दोगिनि ॥

दंत गये मुखके उखरे नख-
रे न गये सु खैरो-खर कामी ॥
कंपत देह सनेह सु दंपति।
संपति जंपत है निशि-जाँमि ॥
सुंदर अंतहु भौनं तज्यो न भ-
ज्यो भगवंत सु लौन-हरामी ॥१६॥

देह घटी पग भूमि मँडे नहि।
औ लठिया पुनि हाथ लई जू ॥
आंखिहु नाक परै मुखतें जल।
सीस हलै कटि ढीचनई जू ॥
ईश्वरकूं कबहू न सँभारत।
दुःख परै तब हाइ दई जू॥
सुंदर तौहु विषैसुख वंछत।
घोरे गये पै बगै न गई जू ॥ १७ ॥

---

५४ पक्का गर्दभ ॥ ५५ स्त्रीपुरुष ॥ ५६ जपता है
५७ दिवस ५८ गृह ॥

॥ सवैया छंद ॥

पाइ अमूलकदेह यहै नर ।
क्यूं न विचारं करै दिल अंदर ॥
कामहु क्रोधहु लोभहु मोहहु ।
लूटत हैं दशहू दिशि द्वंद्वंर ॥
तूं अब बंछत है सुर-लोकहि ।
कालहु पाइ परैं सु पुरंदंर ॥
छांडि कुबुद्धि सुबुद्धि हृदै धरि ।
आतमराम भजै क्युं न सुंदर ॥ १८ ॥

॥ इंदव छंद ॥

इंद्रिनके सुख मानत है सठ ।
याहिहितें बहुते दुख पावै ॥
ज्युं जलमें जख मांसहि लालच ।
स्वाद बँध्यो जल बाहरि आवै ॥
ज्यूं कपि मूठि छांडत है रस-

५९ कामक्रोधादिक दो दो ॥ ६० इंद्र ॥

ना बस बंध पर्‍यो बिललावै[61] ॥
सुंदर क्यूं पहिले न सँभारत ।
जो गुड खाय सु कान बिँधावै ॥ १९ ॥

कौन कुबुद्धि भई घट अंदर ।
तूं अपने प्रभुसूं मन चोरै ॥
भूलि गयो विषयासुखमें सठ ।
लालच लागि रयो अतिथोरै ॥
ज्यूं कोउ कंचन छार मिलावत ।
ले करि पथ्थरसूं नग फोरै ॥
सुंदर या नरदेह-अमूलक ।
तीर लगी नउका कित बोरै ॥ २० ॥

देखनके नर शोभत हैं जस ।
आहि अनूपम केलिकु खंभा ॥
भीतर तौ कछु सार नहीं पुनि ।
ऊपर छीं[62]क अंबर[63] दंभा ॥

६१ हैरान होवेहै ॥ ६२ छिलटे ॥ ६३ वस्त्र ॥

बोलत है पार नाहिं कछू सुधि ।
ज्यूंहि वंहारते बाजत कुंभा ॥
रूसि रहै कपि ज्यूं छिनमांहि सु ।
या हित सुंदर होत अचंभा ॥ २१ ॥

देखनके नर दीसत हैं परि ।
लच्छन तौ पशुके सबही हैं ॥
बोलत चालत पीवत खात सु ।
वे-घर वे-बन जात सही हैं ॥
प्रात गये रजनी फिरि आवत ।
सुंदर यूं नित भार वही हैं ॥
औरतु लच्छन आइ मिले सब ।
एक कमी शिर सिंग नहीं हैं ॥ २२ ॥

प्रेत भयो कि पिशाच भयो कि नि-
शाचर सो जितही तित डोलै ॥
तूं अपनी सुधि भूलि गयो मुख-

६४ वायुतें ॥

तें कछु औरकि औरहि बोलै ॥
सोइ उपाय करै जु मरै पचि ।
बंधन तौ कबहू नहिं खोलै ॥
सुंदर जा तनमें हरि पावत ।
सो तन नाश कियो मति भोले ॥ २३ ॥

पेटतें बाहरि होतहि बालक ।
आइ जु मातु पयोधर[६५] पीनो ॥
मोह बँध्यो दिनही दिन और त-
रून भयो तियके रस भीनो ॥
पुत्र प्रपुत्र बँध्यो परिवारसु ।
ऐसिहिं भांति गये पन[६६]-तीनो ॥
सुंदर रामको नाम बिसारि सु ।
आपहि आपकुँ बंधन कीनो ॥ २४ ॥

मात पिता सुत भाइ बँध्यो युव-
तीके कहे कह काम करै है ॥

---

६५ स्तन ॥ ६६ बालापन । युवापन । वृद्धापन ॥

चोरि करै बटपारि[67] करै किरि-
षी[68] बनजी[69] करि पेट भरै है ॥
सीत सहै शिर धाम सहै कहि ।
सुंदर सो रनमांहि मरै है ॥
बांधि रह्यो ममता सबसूं नर ।
याहित बद्धहिं बद्ध फिरै है ॥ २५ ॥
तूं ठगिके धन औरकु ल्यावत ।
तेरउ तौ घर औरहि फोरै ॥
आग लगै सबही जरि जाइ सु ।
तूं दमरी दमरी करि जोरै ॥
हाकमको डर नाहि न सूजत ।
सुंदर एकहि वेर निचोरै ॥
तूं खरचै नहिं आप न खाइ सू ।
तेरिहि चातुरि तोहिकुँ बोरै ॥ २६ ॥

---

६७ रस्तेपर लूट ॥ ६८ (कृषि) खेती ॥
६९ व्यापार ॥

॥ मनहर छंद ॥

करत प्रपंच इन । पंचनिके बस पर्‍यो ।
परदारा रत भै न । आनत बुराईको ॥
परधन हरै परजीवकी करत घात ।
मद्य मांस खाय लवलेश न भलाईको ॥
होयगो हिसाब जब । मुखतें न आवै ज्वाँब ।
सुंदर कहत लेखो । लेत राई राईको ॥
इहां तौ कियो विलास । यमको न तोहि त्रास ।
उहां तौ नहिं है कछुाराज पोपाबाईको ॥२७॥
दुनियाकूं दौरता है । औरतकूं लौरता है ।
वजूदकूं मौरता है । बटौ ईस राईकाँ ॥
मुरघीकूं मोसता है । बकरीकूं रोसता है ।
गरीबकूं खोंसता है । बेमेहेर गाईका ॥
जुलमकूं करता है । धनीसूं न डरता है ।
दोजककूं भरता है । खजाना बलाईका ॥

७० उत्तर ॥ ७१ रस्ता ॥

होयगा हिसाब जब। आवैगा न ज्वाव तब।
सुंदर कहत गुन्हेगार है खुदाईका ॥२८॥
कर कर आयो जब। खर खर काट्यो नार।
भर भर वाज्यों ढोल। घर घर जान्यो है ॥
दर दर दोर्‍यो जाय। नर नर आगे दीन।
बर बर बकत न नेक अॅलसान्यो है ॥
सर सर सोधै धन। तर तर तोरै पात।
जर जर काटत। अधिक मोद मान्यो है।
फर फर फूल्यो फिरै। डर डरपै न मूढ।
हर हर हसत न सुंदर संकान्यो है ॥२९॥
जनमसें रॉन्यो जाई। भजन विमुख सठ।
काहेकूं भवन कूप। विन मींचै मरै है ॥
गहत अविद्या जानि।शुक नलिनी ज्युं मूढ।
कर्म औ विकर्म करै। करत न डरै है ॥

---

७२. नाभिकी नाडी ॥ ७३ आलसी ॥ ७४ डरसें भी नही डरे है ॥ ७५ तिरस्कारकूं पाया ॥ ७६ मृत्यु ॥

आपहीतें जात अंध । नरकमें बेर बेर ।
अजहू न शंक मनमांहि अब करै है ॥
दुःखको समूह अवलोकिके न त्रास होइ ।
सुंदर कहत नर नाँगपास परै है ॥३०॥
जग मँर्ग पग तजि । सजि भजि राम नाम ।
काम-क्रोध तन-मन । घेरि घेरि मारिये ॥
झूठ मूठ हठ त्याग । जाग भाग सुनि पुनि ।
गुन ज्ञान आनि औंन वारि वारि डारिये ॥
गहि ताहि जाहि शेष । ईश ससि सुर नर ।
और बात हेत तात । फेरि फेरि जारिये ॥
सुंदर दरद खोइ । धोइ धोइ बेर बेर ।
सार संग अंग रंग । हेरि हेरि धारिये ॥३१॥

॥ दूमिला छंद ॥

हठ-योग धरो तन जात भिया ।
हरि नाम विना मुख धूरि परै ॥

---

७७ नागफास बाण ॥ ७८ मार्ग ॥ ७९ और ॥

सठ सोग हरो छिन गात किया।
चरि चाम दिना भुख पूरि जरै ॥
भठ भोग परो घन घात धिया।
अरि काम किना सुख जूरि मरै ॥
मठ रोग करो धन धात हिया।
परि राम तिना दुख दूरि करै ॥३२॥

अर्थः—हे भैया ! हठयोग धारन कियेसें शरीरकी हानी होवै है। परंतु हरिके नाम विना मुखमें धूर परै है। अर्थात् फलकी प्राप्ति नहीं होवै है (॥) तातें हे सठ मूर्ख ! शोकका हरण करौ ॥ यह जो शोक है सो शरीरकूं भक्षणकरिके क्षीण करिदेवै है। औ मृत्युसमयमें शोकाग्निके पूरमें झरि जावै है (॥) संसारके जो भोग हैं सो भट्ठीमें डालने योग्य हैं। इनतें बुद्धिकी बहुत घात होवै हैं ॥ ऐसें सुखभोगकूं झुरिके जो मरै है सो मानो वैरीका काम करै है (॥) जे जन ह-

दयमें धनकी आशा धरिके ध्यावै है । ते मानो (चौराशीलक्षयोनीरूपी महा) रोगका मठ (ग्रह) करि लेवै है । परंतु जो रामकी शरण लेवै है ताके दुःख वे (राम) दूरि करै है ॥३२॥

गुर ज्ञान गहै अति सोई सुखी ।
मन मोह तजे सब काज सरै ॥
धुर ध्यान रहै पति खोइ मुखी ।
रन लोह बजे तब लाज परै ॥
सुर तान नहै हति दोइ दुखी ।
तन छोह सजे अब आज मरै ॥
पुर थान लहै मति धोइ रुखी ।
जन वोह रजै ज१ राज करै ॥३३॥

अर्थः—जो गुरुके मुखसें ज्ञानका ग्रहण करै है सो अतिसुखी होवै है । तातें मनके मोह (अज्ञान) का नाश होवै है । औ सर्व कार्यकी सिद्धि होवै है (॥) औ तिसकुं आदि (ब्रह्म)

स्वरूपका अखंडध्यान रहै है ॥ औ जो गुरुविमुख हैं सो अंतके समयमें (जब कालशत्रु आवै है तब अति लज्जायमान होयके अपनी पत गमा-यके ताके शरण जावै है (॥) तब शूरत्वका तान (आवेश) नहीं होवै है। तातें स्वार्थ परमार्थ दो-नूंकी हानीकरिके दुःखी होवै है। पीछे यद्यपि शरीरकी रक्षाका प्रयत्न करै है तथापि शीघ्रही मरणकूं पावै है (॥) जो रुखी (गुरुभक्त) हैं सो अपनी मति (बुद्धि)कूं छोड़के इस शरीररूपी पूरीमैं अपना आत्मस्वरूपरूपी स्थानकूं प्राप्त होवै है॥ ऐसी स्थितिमें जब जन व्राजमान होवै है तब सो अपना साम्राज्यपद (आत्मपद) पावै है ॥ ३२ ॥

इति उपदेशचिंतामणिको अंग संपूर्ण ॥ २ ॥

अथ कालचिंतामणीको अंग ॥ ३ ॥

—•—

॥ इंदव छंद ॥

मंदिर म्हेल विलायत[1] हैं गज ।
ऊंठ ददाम दिना इक दो हैं ॥
तातहू मात तिया सुत बंधव ।
देख धुँ[2] पामर होत बिछो हैं ॥
झूठ प्रपंचसुँ राचि रह्यो सठ ।
काठकि पूतरि ज्यूं कपि मोहैं ॥
मेंरिहि मेरि कहै नित सुंदर ।
आंखि लगे कहि कौनकु कोहैं ॥ १ ॥
ये मम देश बिलायत हैं गज ।
ये मम मंदिर ये मम थाती ॥
ये मम मात पिता पुनि बंधव ।
ये मम पूत सु ये मम नाती ॥

---

१ अपना मुलुक ॥ २ निश्चय ॥

ये मम कामिनि केल करै नित ।
ये मम सेवक हैं दिन राती ॥
सुंदर ऐसहि छांडि गयो सब ।
तेल जर्‍यो सु बुजी जब बाती ॥ २ ॥
तैं दिन चारि विराम लियो सठ ।
तोर कहे कछु व्है गई तेरी ?
जैसहिं बाप ददा गय छांडि सु ।
तैसहि तूं तजि है पल फेरी ॥
मारहि काल चपेट अचानक ।
होइ वरीकमें राखकि ढेरी ॥
सुंदर ले न चलै कछु ये सँग ।
भूलि कहै नर मेरिहि मेरी ॥३॥
कै यह देह जरायके छार कि-
याकि कियाकि कियाकि किया है॥
कै यह देह जमीमहिँ गारि दि-
याकि दियाकि दियाकि दिया है ॥

कै यह देह रहै दिन चार जि-
याकि जियाकि जियाकि जिया है ॥
सुंदर काल अचानक आई लि-
याकि लियाकि लियाकि लिया है ॥४॥

देह सनेह न छांडत है नर।
जानत है थिर है यह देहा ॥
छीजत जात घटै दिनही दिन।
दीसत है घटको नित छेहा ॥
काल अचानक आइ गहै कर।
ठाहँ गिराइ करै तन खेहा ॥
सुंदर जानि यहै निहचे धरि।
एक निरंजनसूं कर नेहा ॥५॥

तूं कछु और बिचारत है नर।
तोर षिचार धर्योहि रहैगो ॥
कोटिउपाय करै धनके हित।

---

३ पटकना ॥

भाग लिख्यो तितनोहि लहेगो ॥
भौरकि सांज घरी पलमांझ सु ।
काल अचानक आइ गहेगो ॥
राम भज्यो न कियो कछु सुकृत ।
सुंदर यूं पछताइ रहेगो ॥ ६ ॥
भलि गयो हरि नामकुं तूं सठ ।
देख धुं कौन संयोग बन्यो है ॥
काल अचानक आइ गहे कँठ ।
पेख धुं झूठहि तान तन्यो है ॥
छार करै सब धामकुं लूटि अ-
नादिकु ऐसहि जीव हन्यो है ।
कोइ न होत सहाय कुटुंब त-
नादिक सुंदर यूंहि सुन्यो है ॥ ७ ॥
बीत गये पिछले सबही दिन ।
आवत हैं अगले दिन नेरे ॥
काल महाबलवंत वडो रिपु ।

साधि रह्यो सिर ऊपर तेरे ॥
एक घरीमँहि मारि गिरावत ।
लागत ताहि कछू नहि बेरे ॥
सुंदर संत पुकारि कहैं सब ।
हूं पुनि तोहि कहूं अब टेरे ॥ ८ ॥
सोइ रह्यो कहाँ गाफिल ह्वै करि ।
तो शिर ऊपर काल द[४]हारै ॥
धामम धूमस[५] लागि रह्यो सठ ।
आइ अचानक तोहि पछारै ।
ज्यूं बनमें मृग कूदत फांदत ।
चित्र[६] गले नखसूं उर फारै ॥
सुंदर काल डरै जिनके डर ।
ता प्रभुकूं कहु क्यूं न सँभारै ॥ ९ ॥
चेतत क्यूं न अचेतन औंघत ।
काल सदा शिर ऊपर गाजै ॥

---

४ चोट । चौंप ॥ ५ धामधुम ॥ ६ चित्रा (वाघ)॥

रोकि रहै गढके सब द्वारनि ।
तूं तब कौन गली हुइ भाजै ॥
आइ अचानक केश गहै जब ।
पाकरिके पुनि तोहिजु लाजै ॥
सुंदर कौन सहाय करै जब ।
मूंडहि मूंड बराबर बाजै ॥ १० ॥
तूं अतिगाफिल होइ रह्यो सठ ।
कुंजर ज्यूं कछु शंक न आनै ॥
म॰य नहीं तनमें अपनो बल ।
मत्त भयो विषयासुख ठानै ॥
खोसत खात सबैदिन बीतत ।
नीत अनीत कछू नहि जानै ॥
सुंदर केंहरि काल महारिपु ।
दंत उखारि कुँभस्थल भानै ॥ ११ ॥
मात पिता युवती सुत बांधव ।

७ केसरी सिंह ॥ ८ ललाट ॥

आइ मिल्यो इनसें सनबंधा ॥
स्वारथके अपने अपने सब ।
सो यह नाहिन जानत अंधा ॥
कर्म विकर्म करै तिनके हित ।
भार धरै नित आपुन कंधा ॥
अंत विछोह भयो सबसूं पुनि ।
याहित सुंदर हैं जग अंधा ॥ १२ ॥

संत सदा उपदेश बतावत ।
केस सबै शिर स्वेत भये हैं ॥
तूं ममता अजहू नहि छांडत ।
मौतहु आइ सँदेस दये हैं ॥
आजु कि काल चलै उठिं मूरख ।
तेरहि देखत केत गये हैं ॥
सुंदर क्यूं नहिं राम सँभारत ।
या जगमें कहु कौन रहै हैं ॥ १३ ॥

---

९ संबंध ॥

॥ मनहर छंद ॥

करत करत धंध । कछुहि न जानै अंध ।
आवत निकट दिन । आगले चपाक दे॥
जैसे बाज तीतरकूं । दाबत है अचानक।
जैसे बक मछरीकूं लीलत लपाक दे ॥
जैसे मक्षिकाकी घात । मकरि करत आय
जैसे साप मूसककूं । ग्रसत गपाक दे ॥
चेत रे अचेत नर । सुंदर सँभार राम ।
ऐसे तोहि काल आय । लेइगो टपाक दे॥
मेरो देह मेरो गेह । मेरो परिवार सब ।
मेरो धन माल मैं तो । बहुविध भारो हूं॥
मेरे सब सेवक हुकम कोउ मेटै नाहिं ।
मेरी युवतीको मैं तो अधिक पियारो हूं।
मेरी वंश ऊंचो मेरे बाप दादा ऐसे भये।

१० जलदी ॥ ११ बग ॥ १२ खेलते खेलते पकडी लेवै है ॥

करत बडाई मैं तौ जगत उजारो हूं ॥
सुंदर कहत मेरो मेरो करि जानै सठ ।
ऐसे नहि जानै मैं तौ कालहीको चारो हूं १८
जबतें जनम धऱ्यो । तबहीतें भूलि पऱ्यो ।
बालपनमांहि भूल्यो । समझ्यो न रुखेंमें ॥
यौवन भयो है जब । काम-वश भयो तब ।
युवतीसूं एकमेक भूलि रह्यो सुखमें ॥
पुत्रहु प्रपुत्र भये । भूल्यो तब मोह बांधि ।
चिंता करि करि भूल्यो । जानै नहिं दुःखमें॥
सुंदर कहत सठ । तीनूपनमांहि भूल्यो ।
अंत पुनि जाइ पऱ्यो । कालहीके मुखमें १९
ऊठत बैठत काल । सोवत जागत काल ।
चलत फिरत काल । काल उर धस्या है ॥
कहत सुनत काल । खातहू पिवत काल ।
कालहीके गालमांहि हर हर हस्यो है ॥

---

१३ समय ॥

तात मात बंधु काल। सुत दारा गृह काल।
सकलकुटुंब काल। काल जाल फस्यो है ॥
सुंदर कहत एक रामबिन सबकाल।
कालहीको कृत्य कियो अंत काल ग्रस्यो है१७

जबतें जनम लेत। तबहीतें आयु घटै।
माई सो कहत मेरो। बडो होत जात है ॥
आज और काल और। दिन दिन होत और।
दोऱ्यो दोऱ्यो फिरत खेलत अरु खात है ॥
बालापन बीत्यो जब। यौवन लग्यो है आई।
यौवनहु बीते बुढो डोकरो दिखात है।
सुंदर कहत ऐसे। देखतही बूझि गयो।
तेल घटि गये जैसे। दीपक बुझात है १८

सब कोऊ ऐमे कहैं। काल हम काटत हैं।
काल तौ अखंडनाश सबको करतु है।
जाके भय ब्रह्मा पुनि। होत है कंपायमान।

जाके भय सुरासुरँ[14] । इंद्रहू डरतु है ।
जाके भय शिव अरु । शेषनाग तीनूंलोक ।
केइक कलप बीते । लोमँस[15] परतु है ॥
सुंदर कहत नर । गरव गुमान करैं ।
तूं तौ सठ एकही पलकमें मरतु है ॥१९॥
काल-सम बलवंत । कोऊ नाहिं देखियत ।
सबको करत अंत । काल महाजोर है ॥
कालहीको डर सुनि । भँग्यो[16] मूसापैगंबर ।
जहां जहां जाइ तहां तहां वाको घोर है ।

---

१४ देव औ दानव ॥ १५ चिरजीवी लोमस-ऋषि ॥ १६ ऐसी कथा है की जब यहुदीलोकनके मूसापैगंबरके सनमुख विरुद्धपक्षवाले लोकोंने मायाके सपोंकु उत्पन्न कीये तब तिनकु देखीके वे पैगंबर भगे थे परंतु पीछेसे मूसासाहेबने अपनी लकड़ीकुं महासर्परूप करदीया तब तिसकरी मायाके सर्पोंका ग्रसन भया ॥

काल-भयानक भयभीत सब किये लोक ।
स्वर्ग मृत्यु पातालमें । कालहीको सोर है ।
कालहीको काल एक सुंदर अखंडब्रह्म ।
वासूं काल डरै जोई । चल्यो वहि और है२०
बरषा भयेतें जैसे । बोलत भँगीरी स्वर ।
खंड न परत कहु । नेकहू न जानिये ॥
जैसे[१७] पुंगी बाजत अखंडस्वर होत पुनि ।
ताहूमें न अंतर अनेकराग गानिये ॥
जैसे कोई गुँडीकूं चढवात गगनमांहि ।
ताहुकी सूं धुनि सुनी । वैसेही वखानिये ॥
सुंदर कहत तैसे । कालको प्रचंड वेग ।
रात दिन चल्यो जाई । अचरज मानिये २१
माया जोरि जोरि नर । राखत जतन करि ।
कहत है एकदिन । मेरे काम आइ है ॥
तोहि तो मरत कछु । बेर नहिं लागै सठ ।

---

१७ सुरनाई ॥ १८ उडावनेका पतंग ॥

देखतहि देखत बैंलूला सो बिलाई है ।
धन तो धर्‍योही रहै । चलत न कोडी गहै ।
रीते हाथनसें जैसो आयो तैसो जाई है ॥
करी ले सुकृत यह वेरियां न आवै फिरि ।
सुंदर कहत नर । पुनि पछताई है ॥ २२ ॥
बावरो सु भयो फिरै ॥ बावरीहि बात करै ।
बावरो ज्यूं देत बायु । लागत बुरानो है ॥
मायाको उपाय जानै । मायाकी चातुरी ठानै
मायामें मगन अति । माया लपटानो है ॥
यौवनके मद-मातो । गिनत न कोउ नातो ।
काम-वस कामनीके । हाथही बिकानो है ॥
अतिही भयो बेहाल । सूजत न माथे काल ।
सुंदर कहत ऐसो । और को दिवानो है ॥२३
झूंठो धन झूठो धाम । झूठो सुख झूठो काम ।

---

१९ पानीका परपोटा ॥ २० समय ॥ २१ यहां झूठ शब्दनका अर्थ "मिथ्या" है ॥

झूठो देह झूठो नाम। धरीके भुलायो है ॥
झूठो तात झूठी मात। झूठे सुत दारा भ्रात।
झूठो हित मानि मानि झूठो मान लायो है ॥
झूठो लैन झूठो दैन। झूठो मुख बोले वैन।
झूठे झूठे करै फैन। झूठहीकूं धायो है ॥
झूठहीमें एतो भयो। झूठहीमें पचि गयो।
सुंदर कहत साच कबहू न आयो है ॥२४॥

॥ दीर्घाक्षर–कवित्त ॥

झूठे हाथी झूठे घोरा। झूठे आगे झूठा दौरा।
झूठा बांध्या झूठा छोरा। झूठा राजा रानी है॥
झूठी काया झूठी माया। झूठा झूठे धंधे लाया?
झूठा मूवा झूठे जाया। झूठी याकी वानी है॥
झूठा सोवै झूठा जागै। झूठा झूझै झूठा भागै।
झूठा पीछे झूठा आगै। झूठे झूठी मानी है॥
झूठा लीया झूठा दीया। झूठा खाया झूठा पीया
झूठा सौदा झूठा कीया। ऐसा झूठा मानीहै२५

॥ मनहर छंद ॥

झूठ यूं बंध्यो है जाल । ताहीतें ग्रसत काल ।
काल विकराल व्याल[22] सबहीकूं खात है ॥
नदीको प्रवाह चल्यो जात है समुद्रमांहि ।
तैसे जग कालहीके । मुखमें समात है ॥
देहसु ममत्व तातें । कालको भै मानत है ।
ज्ञान उपजेतें वही । कालहू बिलात है ॥
सुंदर कहत परब्रह्म है सदा अखंड ।
आदि मध्य अंत एक । सोई ठहरात है ॥२६॥

॥ इंदव छंद ॥

काल उपावत काल खपावत ।
काल मिलावत है गहि माटी ॥
काल हलावत काल चलावत ।
काल खिलावत है सब आटी ॥
काल बुलावत काल भुलावत ।

---

२२ सर्प ॥

काल डुलावत है वन-घाटी ॥
सुंदर काल मिटै तबही पुनि ।
ब्रह्मविचार पढै जब पाटी ॥ २७ ॥

इति कालचिंतामणीको अंग सपूर्ण ॥ ३ ॥

अथ देहआत्मबिछोहको अंग ॥४॥

॥ इंदव छंद ॥

वे श्रवना रसना मुख वे सहि ।
वे सहि नाशिका वे सहि अंखी ॥
वे कर वे पग वे सब द्वार सु ।
वे नख सीसहि रोम असंखी ॥
वे सहि देह परी पुनि दीसत ।
एक बिना सब लागत खंखी[1] ॥
सुंदर कोउ न जानि सके यह ।

---

१ शून्य ॥

बोलत हो सु कहां गय पंखी ॥ १ ॥
बोलत चालत पीवत खावत ।
सींचत है द्रुमकूं जस माली ॥
लेतहु देतहु देखत रीझत ।
तोरत तान बजावत ताली ॥
जा मँहि कर्म-विकर्म किये सब ।
है यह देह परी अब ठाली ॥
सुंदर सो कितहू नहिं दीसत ।
खेल गयो इक खेल सु ख्याली ॥२॥
मात पिता युवती सुत बांधव ।
लागत है सबकूं अतिप्यारो ॥
लोक-कुटुंब खरो हित राखत ।
होइ नहीं हमतें कहुँ न्यारो ॥
देह सनेह तहांलग जानहु ।
बोलत है मुख शब्द उचारो ॥
सुंदर चेतनशक्ति गई जब ।

बेगि कहैं घर-बार निकारो ॥३॥
रूप भलो तबही लग दीसत ।
जौंलग बोलत चालत आगै ॥
पीवत खात सुनै अरु देखत ।
सोइ रहै उठिके पुनि जागै ॥
मात पिता भइयां मिलि बैठत ।
प्यार करी युवती गल लागै ॥
सुंदर चेतनशक्ति गई जब ।
देखत ताहि सबै डरि भागै ॥ ४ ॥

॥ मनहर छंद ॥

कौन भांति किरतार । कियो है शरीर यह ।
पावककेमांहि देखौ पानीको जमावनो ॥
नाशिका श्रवण नैन । वदन रसन बैन ।
हाथ पाव अंग नख । सीसको बनावनो ॥
अजब अनूप रूप । चमक दमक ऊप ।
सुंदर शोभत अति । अधिक सुहावनो ॥

जाहि छिन चेतनशकति लीन होइ गई ।
ताहि छिन लगत है । सबकूं अभावनो ॥५॥
मृत्तिकाको पिंड देह ताहिमें प्रकति भई ।
नासिका नयन मुख । श्रवण बनाये हैं ॥
सीस पांव हाथ अरु । अंगुरी बिराजमान ।
अंगुरी के आगे पुनि । नखहूं लगाये हैं ॥
पेट पीठ छाती कंठ । चिबुक अधर गाला ।
दसन रसन बहु बचन सुनाये हैं ॥
सुंदर कहत जब । चेतनशकति गई ।
वही देह जारि बारी । छार करि आये हैं ॥६॥
देह तौ प्रगट यह । ज्यूंकी त्यूंही जानियत ।
नैनके झरोखेमांहि । झांखत न देखिये ॥
नाकके झरोखेमांहि । नेक न सुवास लेत ।
कानके झरोखेमांहि । सुनत न लेखिये ॥
मुखके झरोखेमैं न । वचन उचार होत ।
जीभहूंकूं षटरस स्वाद न विशेखिये ॥

सुंदर कहत कोउ। कौन विधि जानै ताहि।
पीरो कारो काहू द्वारा। जातोहूं न पेखिये॥७
मात तौ पुकार छाति। कूटि कूटि रोवत है।
बापहू कहत मेरो। नंदन कहां गयो॥
भयाहू कहत मेरी। बांह आजु दूरि भई।
बहन कहत मेरो। वीर दुःख दे गयो॥
कामिनी कहत मेरो। सीस शिर-ताज कहां।
उन्है ततकाल रोई। हाथमैं धारो लयो॥
सुंदर कहत कोउ। ताहि नहिं जानि शकै
बोलत हुतो सो यह। छिनमें कहां गयो॥८
रज अरु वीरजको। प्रथम संयोग भयो।
चेतनशकति तब कौन भांति आई है?
कोउ तौ कहत बीजमध्यही कियो प्रवेश।
किनहूक पंचमास। पीछेके सुनाई है॥
देहको वियोग जब। देखतहि होइ गयो

२ पथ्थर॥

तब कोइ कहो कहां । जाईके समाइ है ॥
पंडितही ऋषीश्वर । तपेश्वर मुनीश्वर ।
सुंदर कहत यह । किनहू न पाई है ॥ ९ ॥
तबलौंहि क्रिया सब । होत है विविधभांति ।
जबलग घटमांहि । चेतन-प्रकाश है ।
देहके अशक्त भये । क्रिया सब थकी जाय ।
जबलग श्वास चलै । तबलग आश है ।
श्वासहू थक्यो है जब । रोवन लगै है तब ।
सब कोऊ कहैं अब । भयो घट नाश है ॥
काहु नहीं देख्यो किहि-वौर किन कहां गयो ।
सुंदर कहत यही । बडोही तमाश है ॥१०॥
देह तौ सुरूप तौलौं । जौलौं हैं अरूप मांहि ।
सब कोउ आदर करत सनमान हैं ॥
टेढी पाग बांधि बेर बेरही मरोरै मूछ ।
बाहू हू सँवारे अति धरत गुमान है ॥

---

३ जीव ॥

देश देशहीके लोक आयके हजूर होइ ।
बैठिकरि तखत कहावै सुलतान है ॥
सुंदर कहत जब चेतनशकति गई ।
वहै देह ताकी कोऊ मानत न आन है ॥११॥
इति देहआत्मबिछोहको अंग संपूर्ण ॥ ४ ॥

अथ तृष्णाको अंग ॥ ५ ॥

—×—

॥ इंदव छंद ॥

नैननकी पलही पलमें क्षण ।
आधिघरी घटिका जु गई है ॥
जाम[1] गयो जुग जाम गयो पुन ।
सांझ गई तव रात भई है ॥
आज गई अरु काल गई पर-
सों तरसों कछु और ठई है ॥

---

१ प्रहरकाल ॥

सुंदर ऐसहि आयु गई तृस-
ना दिनही दिन होत नई है ॥ १ ॥

॥ दूमिला छंद ॥

कनही कनकूं बिललात फिरै ।
सठ जाचत है जनही जनकूं ॥
तनही तनकूं अतिसोच करै ।
नर खात रहै अनही कनकूं ॥
मनही मनकी तृसना न मिटी ।
पुनि धावत है धनही धनकूं ॥
छिनही छिन सुंदर आयु घटी ।
कबहू न गयो बनही बनकूं ॥ २ ॥

॥ इंदव छंद ॥

जो दश बीश पचाश भये शत ।
होइ हजार तु लाख मगैगी ॥
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य ध-
रापति होनकि चाह जगैगी ॥

स्वर्ग पतालकु राज करौं तृस-
ना अधिकी अति आग लगैगी ॥
सुंदर एक संतोष बिना सठ।
तेरि तु भूख कदी न भगैगी ॥ ३ ॥
लाख करोर अरब्ब खरब्बनि ।
नील रु पद्म तहांलग खाठी ॥
जोरिहि जोरि भँडार भरे जब ।
और रही सु जमीतर दाटी ॥
तौहु न तोहि संतोष भयो सठ ।
सुंदर तैं तृसना नहि काटी ॥
सूजत नाहिन कालहि तो शिर ।
मारि जु थाप मिलाइत माटी ॥ ४ ॥
भूख लिये दशहूं दिशि दौरत ।
ता हित तूं कबहू न अधै है ॥
भूख-भँडार भरै नहिं कैसहू ।
जो धन मेर-सुमेर लुं पैहै ।

तूं अब आगेहि हाथ पसारत ।
या हित हाथ कछू नहिं ऐहै ॥
सुंदर क्यूं नहिं तोष करै नर ।
खाइ जु खाइ कितोइक खेंहै ॥५॥

भूख नचावत रंकहि रावहि ।
भूख नचाइ जु विश्व विगोई ॥
भूख नचावत इंद्र सुरासुर ।
और अनेक जहांलग जोई ॥
भूख नचावत है अध-ऊर्धहि ।
तीनहु लोक गिनै कह कोई ॥
सुंदर जाइ तहां दुःखही दुःख ।
ज्ञान बिना न कहूं सुख होई ॥६॥

पेट पसार दियो जितही तित ।
तैं यह भूख कितीइक थापी ॥
वौर न छोर कछू नहिं आवत ।

---

२ निंदित करै है ॥

मैं बहु भांति भली विध मापी ॥
देखत देह भये सब जीरन ।
तूं नित नूतन आहि अद्यापि ॥
सुंदर तोहि सदा समुझावत ।
हे तृसना अजहू नहिं धाँपी ॥ ७ ॥
तीनहि लोक अहार कियो सब ।
सातसमुद्र पियो पुनि पानी ॥
और जहां तहँ ताकत डोलत ।
काढत आंख डरावत प्रानी ॥
दांत दिखावत जीभ हलावत !
या हित मैं यह डाकिनि जानीं ॥
सुंदर खात भये कितने दिन ।
हे तृसना अजहू न अघानी ॥ ८ ॥
पाँव पताल परे गय नीकसि ।
सीस गयो असमान अघेरो ॥

३ तृप्त ॥

हाथ दशोंदिसकूं पसरे पुनि ।
पेट भरे न समुद्र सुमेरो ॥
तीनहु लोक लिये मुख-भीतर ।
आंखिहु कान बँधे चहुँ फेरो ॥
सुंदर देह धऱ्यो अतिदीरघ ।
हे तृसना कछु छेह न तेरो ॥ ९ ॥
वाद व्रथा भटकै निशि-वासर[४] ।
दूर कियो कबहू नहि धोषा ॥
तूं हतियारिनि पापिनि कोढनि ।
साच कहूं मत मानहु रोषा ॥
तोहि मिले तबतें हुइ बंधन ।
तूं मरि है तबही हुय मोषा[५] ॥
सुंदर और कहा कहिये तुहि ।
हे तृसना अब तौ कर तोषा ॥ १० ॥

---

४ दिन ॥ ५ मोक्ष ॥

क्यूं जगमांहि फिरै जख मारत ।
स्वारथ कौंन परी जिहि जोलै ॥
ज्यूं हरियाइ[6] गऊ नाहि मानत ।
दूध दुह्यो कछु सो पुनि ढोलै ॥
तूं अतिचंचल हाथ न आवत ।
नीकस जाई नहीं मुख बोलै ॥
सुंदर तोहिं कह्यो कितनी बिर ।
हे तृसना अब तूं मत डोलै ॥ ११ ॥
तैं कहि कान धरी नहिं एकहु ।
बोलत बोलत पेटहि पाक्यो ॥
हूं कछु बात बनाई कहूं जब ।
तैं तब पीसतही सब फाक्यो ॥
केतक द्यौस भये परबोधत ।
तैं अब आगेहिकूं रथ हाक्यो ॥

६ छीछरी गउ ॥ ७ दिन ॥

सुंदर सीख गई सबही चलि ।
हे तृसना कहिके तुहि थाक्यो ॥१२॥

तूंहि भ्रमाय प्रदेश पठावत ।
बूडत जाइ समुद्रहि जाजा ॥
तूंहि भ्रमाय पहाड चढावत ।
वाद व्रथा मरि जाइ अकाजा ॥
तैं सबलोक भ्रमाय भलीविध ।
भांड किये सब रंकहु राजा ॥
सुंदर तोहि दुस्ताइ कहूँ अब ।
हे तृसना तुहि नेकु न लाजा ॥ १३ ॥
इति तृष्णाको अंग संपूर्ण ॥ ८ ॥

अथ धीर्य उशाहनको अंग ॥ ६ ॥

॥ इंदव छंद ॥
पाँव दिये चलने फिरने कहूं ।

हाथ दिये हरिं कृत्य करायो ॥
कान दिये सुनिये हरिके यश ।
नैन दिये तिन मार्ग दिखायो ॥
नाक दियो मुख शोभत ता करि ।
जीभ दई हरिको गुन गायो ॥
सुंदर साज दिये परमेश्वर ।
पेट दियो पर पाप लगायो ॥ १ ॥

कूप भरै अरु वावि भरै पुनि ।
ताल भरै वरषा-ऋतु तीनो ॥
कोठि भरै घट माट भरै घर-
हाट भरै सबही भरि लीनो ॥
खंडरु खास बखार भरै परि ।
पेट भरै न बडो दर दीनो ॥
सुंदर रीतुहि रीतु रहै यह ।
कौन खडा परमेश्वर कीनो ॥ २ ॥

॥ मनहर छंद ॥

किधों पेट चूलो किधों भाठि किधों भार आहि।
जोइ कछु झोंकिये सु सब जरि जातु है ॥
किधों पेट थल किधों वावि किधों सागर है।
जेतो जल परै तेतौ सकल समातु है ।
किधों पेट दैत किधों भूत प्रेत राक्षस है।
खाउं खाउं करै कछु नेक न अघातु है ॥
सुंदर कहत प्रभु कौन पाप लायो पेट।
जबही जनम भयो तबहीको खातु है ॥ ३ ॥
विग्रह तौ विग्रह करत अति बेरबेर ।
तन पुनि तनक न कबहु अघायो है ॥
घट न भरत क्यूंही घट्योही रहत नित।
शरीर-सिराईमें तौ कबहु न खायो है ॥
देह देह कहतही कहत जनम बीत्यो।

१ शरीर ॥ २ ढंग ॥ ३ थोडा ॥ ४ दे ॥

पिंड पिंड काज निशि-दिन ललचायो है ॥
मुदगर्ल गिलत गिलत न तृपत होइ ।
सुंदर कहत वपु कौन पाप लायो है ॥ ४ ॥
पाजी-पेट-काज कोटवालके आधीन होइ ।
कोटवाल सो तौ शिकदार आगे दीन है ॥
शिकदार दीवानके पीछे लग्यो डोलै पुनि ।
दीवांनहु जाय बादशाह आगे लीन है ॥
बादशाह कहै या खोदाय मुझे और देई ।
पेटही पसारे वही पेट वश कीन है ॥
सुंदर कहत प्रभु क्यूंही नहीं भरै पेट ।
एक पेटकाज एक एकके आधीन है ॥ ५ ॥
तैं तौ प्रभु पेट दियो जगत नचायो जिन ।
पेटहीके लिये घर-घर-द्वार फिर्‌यो है ॥
पेटहीके लिये हाथ जोरी आगे टाठो होई ।

---

५ आप ॥ ६ लड्डु ॥

जोई जोई कह्यो सोई सोई उन कर्यो है ॥
पेटहीके लिये पुनि मेघ-शीत-घाम सहै ।
पेटहीके लिये जाई रनमांहि मर्यो है ॥
सुंदर कहत इन पेट सब भांड किये ।
और गैल छूटै परि पेट गैल पर्यो है ॥ ६ ॥
पेटसो न बली जाके आगे सब हारि चले ।
राव अरु रंक एक पेट जीति लिये हैं ॥
कोउ वाघ मारत विदारत है कुंजरकुं ।
ऐसे शूरवीर पेट काज प्रान दिये हैं ॥
यंत्र मंत्र साधत आराधत मसान जाइ ।
पेट आगे डरत निडर ऐसे हिये हैं ॥
देवता असूर भूत प्रेत तीनूंलोक पुनि ।
सुंदर कहत प्रभु पेट जेर किये हैं ॥ ७ ॥
प्रांतही उठत जब पेटहीकी चिंता तब ।

७ हात्थीकूं ॥

सब कोऊ जात आपु आपुके आहारकूं ॥
कोऊ अन्न खात पुनि आँमिष भखत कोऊ।
कोऊ घास चरत चरत कोऊ दारकूं ॥
कोऊ मोती फल कोऊ वास रस पय पान।
कोऊ पौन पीवत भरत पेट-भारकूं ॥
सुंदर कहत प्रभु पेटही भ्रमाए सब।
पेट तुम्ह दियो है जगत होन ख्वारकूं ॥८॥

॥ इंदव छंद ॥

पेटहि कारन जीव हने बहु।
पेटहि मांस भखै रु सुरापी ॥
पेटहि लेकर चोरि करावत।
पेटहिकूं गठरी गहि कापी ॥
पेठहि पाश गरेमहि डारत।
पेटहि डारत कूप रु वापी ॥
सुंदर काहिकूँ पेट दियो प्रभु।

८ मांस ॥

पेटसो और नहीं कोइ पापी ॥ ९ ॥
औरनकूं प्रभु पेट दियो तुम्ह।
तेर तु पेट कहूं नही दीसै ॥
ए भटकाइ दिये दशहू दिश।
कोउक रांधत कोउक पीसै ॥
पेटहि कारन नाचत है सब।
ज्यूं घरही घर नाचत कीसै ॥
सुंदर आप न खावहु पीवहु।
कौन करी इन ऊपर रीसै ॥ १० ॥

॥ मनहर छंद ॥

काहेकूं काहूके आगे जाइके आधीन होई।
दीन-दीन वचन उचार मुख कहते ॥
जिनकूं तौ मद अरु गरव गुमान अति।
तिनके कठोर बैन कबहू न सहते ॥

---

१ बानर ॥

तुह्मारेही भजनसूं अधिक-लैलीन अति ।
सकलकूं त्यागिके एकांत जाई गहते ॥
सुंदर कहत यह तुह्मही लगायो पाप ।
पेट न हुतो तौ प्रभु बैठे हम रहते ॥ ११ ॥
पेटहीके वश रंक पेटहीके वश राव ।
पेटहीके वश और खान सुलतान हैं ॥
पेटहीके वश योगी जंगम संन्यासी सेख ।
पेटहीके वश वनवासी खात पान हैं ॥
पेटहीके वश ऋषि मुनि तपधारि सब ।
पेटहीके वश सिद्ध साधक सुजान हैं ॥
सुंदर कहत नहि काहूको गुमान रहै ।
पेटहीके वश प्रभु सकलजहान है ॥ १२ ॥

इति धीर्य उराहनको अंग संपूर्ण ॥ ६ ॥



अथ विश्वासको अंग ॥ ७ ॥

॥ इंदव छंद ॥

होइ निचिंत करै मत चिंतहि ।
चांच दई वइ चिंत करैगो ॥
पाउ पसार पऱ्यो कि न सोवत ।
पेट दियो वइ पेट भरैगो ॥
जीव जिते जलके थलके पुनि ।
पाहनमें पहुचाय धरैगो ॥
भूखहि भूख पुकारत है नर ।
सुंदर तूं कह भूख मरैगो ॥ १ ॥
धीरज धारि विचार निरंतर ।
तोहि रच्यो वहि आपहि ऐ है ॥
जेतिक भूख लगी घट प्रानहि ।

१ क्यूं ॥ २ पथ्थरमैं ॥

तेतिक तूं अनयासहि पै है ॥
जो मनमें तृसना करि ध्यावत ।
तौ तिहुँ-लोक न खात अघै है ॥
सुंदर तूं मत शोच करै कछु ।
चंच दई वइ चूनहि दै है ॥ २ ॥

नेक न धीरज धारत है नर ।
आतुर होइ दशोदिश ध्यावै ॥
ज्यूं पशु खैंचि तुडावत बंधन ।
जौंलगि नीर अहार न आवै ॥
जानत नाहि महा-मतिमूरख ।
जा घरद्वार धनी पहुचावै ॥
सुंदर आप कियो घट भाजन ।
सो भरि है मत सोच उपावै ॥ ३ ॥

भाजन आप घडे जितने भरि-
हैं भरिहैं भरिहैं भरिहैं जू ॥

गावत हैं जिनकें गुनकूं हरि-
हैं हरिहैं हरिहैं हरिहैं जू ॥
आदिहु अंतहु मध्य सदा हरि-
हैं हरि हैं हरि हैं हरि हैं जू ॥
सुंदरदास सहाय सही करि-
हैं करिहैं करिहैं करिहैं जू ॥ ४ ॥

काहिकुँ दौरत है दशहू दिश ।
तूं नर देख कियो हरिजूको ॥
बैठि रहै दुरिके मुख मूंदि ।
उघारत दांत खवाइहि टूंको ॥
गर्भ-थकें प्रतिपाल करी जिन ।
होइ रह्यो तबही जड मूको ॥
सुंदर क्यूं बिललात फिरै अब ।
राख हृदे विसवास प्रभूको ॥ ५ ॥

३ झाड़के ॥ ४ टुकडा ॥ ५ विलाप ॥

जा दिनतें ग्रभ-वास तज्यो नर ।
आइ अहार लियो तबहीको ॥
खातहि खात भये इतने दिन ।
जानत नाहि न भूख कहीको ॥
दौरत धावत पेट दिखावत ।
तूं मठ कीट सदा अनहीको ॥
सुंदर क्यूं विसवास न राखत ।
सो प्रभु विस्व भरै सबहीको ॥ ६ ॥
खेचर भूचर जे जलके चर ।
देत अहार चराचर पोषै ॥
वे हरि जो सबकूं प्रतिपालत ।
ज्यूं जिहिँ भांति तिमी-विश्व तोषै ॥
तूं अब क्यूं विसवास न राखत ।
भूलत है कित धोखहि धोखे ॥

१ आकाशमें विचरनेवाळे प्राणी ॥

तोहि तहां पहुचाय रहै प्रभु ।
सुंदर वैठि रहै किन ओखे ॥ ७ ॥

॥ मनहर छंद ॥

काहेकूं बधूरा भयो । फिरत अज्ञानी नर ।
तेरा तौ रिजक तेरे घर वैठे आई है ॥
भावै तूं सुमेर जाइ । भावै जाइ मारुदेश ।
जितनोक भाग लिख्यो तितनोहि पाई है ॥
कूपमांझ भरि भावै सागरके तीर भर ।
जितनोक भांडो नीर । तितनो समाई है ॥
ताहितें संतोष करि । सुंदर विश्वास धरि ।
जितनो रच्यो है घट । सोई जु भराई है॥८॥
काहेकूं फिरत नर । दीन भयो घर घर । ⁝
देखियत तेरो तौ । आहार इक शेर है ॥
जाको देह सागरमें सुन्यो शत-योजनको ।

---

७ गुफा ॥

ताहूकूं तौ देत प्रभु यामें नहि फेर है ॥
भूख्यो कोउ रहत न जानियें जगतमांहि ।
कीरी अरु कुंजर सबनहीकूं दे रहै ॥
सुंदर कहत विसवास क्यूं न राखै सठ ।
वेर वेर समुझाय कह्यो केती वेर है ॥ ९ ॥
तेरे तौ अधीरज तूं आगिलीहि चिंता करै ।
आज तौ भर्‍यां पेट काल कैसी होइ है ॥
भूख्योही पुकारे अरु दिन उठि खातो जाई ।
अतिही अज्ञानी जाकी मात गई खोइ है ॥
ताकूं नही जानै सठ जाको नाम विश्वंभर ।
तहां तहां प्रगट सबनि देत सोइ है ॥
सुंदर कहत तोहि वाको तौ भरोसो नहि ।
एक विसवास विन याही भांति रोइ है॥१०॥
देख धों सकलविश्व भरत भरनहार ।
चूंचके समान चून सबहीकूं देत है ॥

कीट पशु पंछी अजगर मछ कछ पुनि ।
उनके न सौदा कोउ न तो कछु खेत है ॥
पेटहीके काज रात-दिवस भ्रमत सठ ।
मैं तौ जान्यो नीके करी तूं तौ कोउ प्रेत है॥
मानुष-शरीर पाय करत है हाय हाय ।
सुंदर कहत नर तेरे शिर रेत है ॥ ११ ॥
तूं तौ भयो बावरो उतावरो फिरत अति ।
प्रभुको विश्वास गहि कहि न रहतु है ॥
तेरो जो रिजक है सो आइ है सहजमांहि ।
यूंही चिंता करि करि देहकूं दहतु है ॥
जिन यह नख-शिख साजिके सँवार्‍यो तोहि।
अपने कियेकी वह लाजकूं वहतु है ॥
काहेकूं अज्ञानी कछु सोच मनमांहि करै ।
भूख्यो तूं कदै न रहै सुंदर कहतु है ॥ १२॥

---

८ धुरि ॥

जगतमें आइके बिसार्‍यो है जगत-पति ।
जगत कियो है सोई जगत भरतु है ॥
तेरे निशिदिन चिंता औरही परी है आइ ।
उद्यम अनेक भांति भांतिके करतु है ॥
इत उत जायके कमाइ करि लाउं कछु ।
नेकु न अज्ञानी-नर धीरज धरतु है ॥
सुंदर कहत एक प्रभुके विश्वास बिन ।
वादहीकूं वृथा सठ पचिके मरतु है ॥१३॥

। इति विश्वासको अंग संपूर्ण ॥ ७ ॥

अथ देह-मलिनके गर्वप्रहारको अंग ॥ ८ ॥

देह तौ मलिन अति बहुत विकार भरि ।

---

१ हट करिके ॥

ताहूमांहि जरा-व्याधि सब दुःख-रासी[1] है ॥
कबहूक पेट-पीर कबहूक शिर-बाय ।
कबहूक आंख कान मुखमें बिथासी[2] है ॥
औरहू अनेकरोग नख-शिख पूरि रहे ।
कबहूक श्वास चलै कबहूक खासी है ॥
ऐसो ये शरीर ताहि आपनो के मानत है ।
सुंदर कहत यामें कौन सुखवासी है ॥१॥
जा शरीरमांहि तूं अनेकसुख मानि रह्यो ।
ताहि तू विचार यामें कौन बात भली है ?
मेद मज्जा मांस रग-रगमें रगत भर्‌यो ।
पेटहू पिटारीसीमें ठौर-ठौर मली है ॥
हाडनसूं भर्‌यो मुख हाडनके नैन नाक ।
हाथ पाउं सोउ सब हाडनकी नली है ॥
सुंदर कहत याहि देखी जिन भूलै कोई ।

1 समूह ॥ 2 पीडाकी न्याई ॥

भीतर भंगार³ भरी ऊपर तौ कली है ॥ २॥

॥ इंदव छंद ॥

हाडको पिंजर चाम मढ्यो सब ।
  मांहि भऱ्यो मल–मूत्र विकारा ॥
  थूक रु लाल परै मुखतें पुनि ॥
  व्याधि वहै सब औरहु द्वारा ॥
  मांसकि जीभसुँ खाय सबै कछु ।
  ताहिते ताहिको कौन विचारा ॥
  ऐसे शरीरमें पैठिके सुंदर ।
  कैस जु कीजिय सोच अचारा ॥ ३ ॥
थूक रु लाल भऱ्यो मुख दीसत ।
  आंखिमें गीडर नाकमें सेढो ॥
  औरहु द्वार मलीन रहैं अति ।
  हाड रु मांसके भीतर भेढो ।

---

३ कचरा ॥

ऐस शरीरमें वास कियो तब ।
एकस दिसत ब्राह्मण ढेढो ॥
सुंदर गर्व कहा इतने पर ।
काहकुँ तूं नर चालत टेढो ॥ ४ ॥

जा दिन गर्भ-संयोग भयो तब ।
ता दिन बूंद छियां हुतिं तांहि ॥
द्वादश-मास अधोमुख झूलत ।
बूडि रह्यो पुनि वा रस मांही ॥
ता रज-वीरजकी यह देह सु ।
तूं अब चालत देखत छांही ॥
सुंदर गर्व गुमान कहा सठ ।
आपुनि आदि विचारत नाही ॥ ५ ॥

॥ इति देहमालिनके गर्वप्रहारको अंग संपूर्ण ॥८॥

---

४ खराब ॥

अथ नारीनिंदाको अंग ॥ ९ ॥

——x——

॥ मनहर छंद ॥

कामिनीको तन मानु कहिये सघन-बन ।
वहां कोउ जाय सो तौ भूलेही परतु है ॥
कुंजर है गति कटि केहरीको भय जामें ।
वैं[1]नी काली-नागिनी ऊ फनिकूं धरतु है ॥
कुचें[2] हैं पहार जहां काम-चोर वसैं तहां ॥
साधिके कटाक्ष[3]-वान प्रानकूं हरतु है ॥
सुंदर कहत एक और डर जामें अति ।
राक्षसी-वदन खांउ खांउही करतु है ॥ १ ॥
विषहीकी भूमिमांहि विषके अंकुर भये ।
नारी विष-वेली बढी नख-शिख देखिये ॥
विषहीके जर-मुल विषहीके डार-पात ।

---

१ अंबोडा ॥ स्तन ॥ ३ आंखिकी सैन ॥

विषहीके फुल-फल लागे जु विसेखिये ॥
विषके तंतू पसार उरझाँई आंटी मार ।
सब-नर व्रक्ष पर लपटेही लेखिये ॥
सुंदर कहत कोऊ संत-तरु बचि गये ।
तिनके तौ कहूं लता लागी नहि पेखिये॥२॥

उदरमें नरक नरक अध-द्वारनमें ।
कुचनमें नरक नरक भरी छाती है ॥
कंठमें नरक गाल चिबुक नरक विंब ।
मुखमें नरक जीभ लालहु चुचाती है ॥
नाकमें नरक आंख-कानमें नरक वहै ।
हाथ-पाउ नख-शिख नरक दिखाती है ॥
सुंदर कहत नारी नरकको कुंड यह ।
नरकमें जाई परै सो नरक-पाती है ॥३॥

कामिनीको अंग अतिमलिन महा अशुद्ध ।

---

४ गुंथन ॥ ५ वेली ॥

रोम-रोम मलिन मलिन सबद्वार हैं ॥
हाड मांस मज्जा मेद चामसूं लपेटि राखै ।
ठौर ठौर रगतके भरेई भंडार हैं ॥
मूत्रहू पुरीष[6] आँत[7] एकमेक मिली रही ।
औरही उदरमांहि विविध-विकार हैं ॥
सुंदर कहत नारी नख-शिख निंद्यरूप ।
ताहि जे सराहै सो तौ बडोई गँवार है॥४॥

॥ कुंडलिया छंद ॥

रसिकप्रिया[8] रसमंजरी । और सिंगारहि जान
चतुराई करि बहुतविधि । विषय बनाई आन ॥
विषय बनाई आन । लगग विषयिनकूं प्यारी॥
जागे मदन प्रचंड । सराहै नख-शिख नारी॥

---

६ विष्ठा ॥ ७ आंतरडे ॥ ८ रसिकप्रियादिक साहित्यशास्त्रनतें कामविकार उत्पन्न होवे है । तातें इहां प्रसंगानुसार तिनकी निंदा करी है ।

ज्यूं रोगी मिष्टान खाइ । रोगहि विस्तारे ॥
सुंदर य गति होइ । जोइ रसिकप्रिया धारै ८
रसिकप्रियाके सुततही । उपजै बहुतविकार॥
जो या मांही चित धरै । वहै होत नर ख्वार॥
वहै होत नर ख्वार । वार तौ कबहु न लागै ।
सुनत विषयकी बात । लहर विषहीकी जागै॥
ज्यूं को ऊंघ्यो हुतो । लेई पुनि सेज बिछाई ॥
सुंदर ऐसी जान। सुनत रसिक प्रिया भाई।।६

॥ इति नारीनिंदाको अंग संपूर्ण ॥ ९ ॥

॥ अथ दुष्टजनको अंग ॥ १० ॥

॥ मनहर छंद ॥

अपने न दोष देखै परके औगुन पेखै ।
दुष्टको स्वभाव उठि निंदाही करतु है ॥
जैसे कोई महल सँवारी राख्यो नीके करि ।

कीरी तहां जाई छिद्र ढूंढत फिरतु है ॥
भोरहीतें सांझ-लग सांझहीत भोर-लग !
सुंदर कहत दिन ऐसेहि भरतु है ॥
पावके तरेकी नहीं सूझे आग मूरखकूं ।
औरकूं कहत तेरे शिरपें वरतु है ॥ १ ॥

॥ इंदव छंद ॥

घात अनेक रहैं उर अंतर ।
दुष्ट कहै मुखसूं अतिमीठी ॥
लोटत पोटत व्याघ्रही ज्यूं नित ।
ताकत है पुनि ताहिकि पीठी ॥
ऊपरतेँ छिरकै जल आन सु ।
हेठ लगावत जारि अंगीठी ॥
यामँहि कूर कछू मति जानहु ।
सुंदर आपुनि आखिनि दीठी ॥ २ ॥

---

१ चूला ॥

आपनु काज सँवारनके हित ।
औरकु काज बिगारत जाई ॥
आपनु कारज होउ न होउ ।
बुरो करि औरकु डारत भाई ॥
आपहु खोवत औरहु खोवत
खोइ दुनो-घर देत वहाई ॥
सुंदर देखतही बनि आवत ।
दुष्ट करै नहि कौन बुराई ॥ ३ ॥
ज्यूं नर पोषत है निज देहहि ।
अन्न विनास करै तिहि वारा ॥
ज्युं अहि और मनुष्यहि काटत ।
वाहि कछू नहि होत अहारा ॥
ज्यूं पुनि पावक झारि सबै कछू ।
आपहि नाश भयो निराधारा ॥
त्यूं यह सुंदर दुष्ट-स्वभावहू ।

जानि तजो किन तीन-प्रकारा ॥ ४ ॥
सर्प डसै सु नाहि कछु तालक ।
बीछु लगै सु भलो करि मानौ ॥
सिंहहु खाय तु नाहि कछू डर ।
जो गज मारत तौ नहि हानौ ॥
आगि जरौ जल बूडि मरौ गिरि-
जाइ गिरौ कछु भै मत आनौ ॥
सुंदर और भले सबही यह ।
दुर्जन-संग भलो जिन जानौ ॥ ५ ॥

॥ इति दुष्टजनको अंग संपूर्ण ॥ १० ॥

अथ मनको अंग ॥ ११ ॥



॥ मनहर छंद ॥

हटकि हटकि मन राखत जु छिन छिन ।

---

२ चिंता ॥

सटकि सटकि चहुँ और अब जातु है ॥
लटकि लटकि ललचाय लोल[1] वार-वार ।
गटकि गटकि करि विष-फल खातु है ॥
झटकि झटकि वार तोरत करम हीन ।
भटकि भटकि कहू नेक न अघातु है ॥
पटकि पटकि शिर सुंदर जु मानि हारि ।
फिटकि फिटकि जाई सूधो कौन बातु है ॥ ९ ॥

पलहीमें मरी जाय । पलहीमें जीवतु है ।
पलहीमें परहाथ देखत बिकानो है ॥
पलहीमें फिरै नवखंडहु ब्रह्मांड सब ।
देख्यो अनदेख्यो सो तौ यातें नहि छानो है ॥
जातो नहि जानियत । आवतो न दीसै कछु ।
ऐसेसी बलाई अब तासूं पन्यो पानो है ॥
सुंदर कहत याकि गति हू न लखी परै ।

1 चपल.

मनकी प्रतीत कोऊ करै सो दिवानो है ॥
घेरीये तौ घेर्‍योहू न खावत है मेरो पूत ।
जोई परबोधिये सो । कान न धरतु है ॥
नीति न अनीति देखै । शुभ न अशुभ पेखै ।
पलहीमें होती अनहोती हू करतु है ॥
गुरुकी न साधुकी न लोक-वेदहूकी शंक ।
काहुकी न मानै न तौ काहुतें डरतु है ॥
सुंदर कहत ताहि । धीजिये सु कौन भांति ।
मनको स्वभाव कछु कह्यो न परतु है ॥ ३ ॥
काम जब जागै तब । गिनत न कोऊ शंक ।
जानै सब जोई करि देखत न मा-धी है ॥
क्रोध जब जागै तब । नेक न संभारि शकै ।
ऐसिविधि मूलकी अविद्या जिन साधी है ॥
लोभ जब जागै तब । तृपति न क्यूंही होई ।

२ प्रतति करनी ३ बेटी ॥

सुंदर कहत इन ऐसेहीमें खाधी है ॥
मोह मतवारो निशिदिनही फिरत रहै ।
मनसो न कहूं हम देख्यो अपराधी है ॥४॥
देखवेकूं दौरे तौ अटकि जाई वाही और ।
सुनवेकूं दौरे तौ रसिक शिर-ताज है ॥
सूंघवेकूं दौर तौ अघाय न सुगंध करि ।
खायवेकूं दौरे तौ न धापै महाराज है ॥
भोगहीकूं दौरे तौ तृपत नही होई क्यूंही ।
सुंदर कहत याही नेकही न लाज है ।
काहूको न कह्यो करै। आपुनीही टेक धरै।
मनसो न कोउ हम देख्यो दगाबाज है॥५॥
देखै न कुठौर ठौर कहत औरकी और ।
लीन जाइ होत हाड मांस औ रगतमें ॥
करत बुराई सर औसर न जाने कछु ।
धका आई देत राम-नामसूं लगतमें ॥

बहाये सुरासुर बहायें सब भेषी-जन ।
सुंद्र कहत दिन घालत भगतमें ॥
औरहू अनेक-अंतराईही करत रहै ।
मनसो न कोऊ है अधम या जगतमें ॥६॥

जिन ठगे शंकर विधाता इंद्र देव मुनि ।
आपनोहू अधिपति ठग्यो जिन चंद है ॥
और योगी जंगम संन्यासी शेख कौन गिनै ।
सबनिकूं ठगत ठगावै न सुछंद है ॥
तापेश्वर ऋषीश्वर । सब पचि पचि गये ।
काहूके न आवै हाथ । ऐसो यापैं बंद है ॥
सुंदर कहत बस कौन विधि कीजै तांहि ।
मनसो न कोऊ या जगतमांहि रंद है [४]॥७॥

रंककूं नचावै अभिलाष धन पायवेकी ।
निशिदिन सोच करि ऐसेही पचत है ॥

---

४ लज्जारहित ॥

राजाही नचावै सब भूमिहीको राज लेवे ।
औरहू नचावै जोई देहसूं रचत है ॥
देवता असुर पन्नग सकललोक ।
कीट पशु पक्षी कहु कैसेके बचत हैं ॥
सुंदर कहत काहू संतकी कही न जाय ।
मनके नचाए सबजगत नचत है ॥ ८ ॥

॥ इंदव छंद ॥

केतक द्यौंस[६] भये समुझावत ।
नेक न मानत है मन भोंडू ॥
भूलि रह्यो विषयासुखमें कछु ।
और न जानत है सठ दोंडू ॥
आंखि न कान न नाक बिना शिर ।
हाथ न पाव नहीं मुख पोंडू ॥
सुंदर ताहि गहै कहु क्यूंकरि ।
नीकसि जाइ बडो मन लोंडू ॥ ९ ॥

---

५ सर्प ॥ ६ दिवस ॥ ७ खराब ॥

दौरत है दशहू दिशकूं सठ ।
वायु लग्यो तबतें भयु बेंडा ॥
लाज न कान कछु नहि राखत ।
शीलस्वभावकी फोरत मेंडा ॥
सुंदर सीख कहा कहि दीजिय ।
भेदत बान न छेदत गेंडा ॥
लालच लागि रह्यो मन बीखर ।
बारह-बाट अठारह-पेंडा ॥ १० ॥

श्वान कहूं कि सियार कहूं कि बि-
लाट कहूं मनकी मति तैसी ॥
ढेड कहूं किधूँ डूम कहूं किधूँ ।
भांड कहूं किधूँ भंडइ जैसी ॥
चोर कहूं बटपार कहूं ठग ।
जार कहूं उपमा कहूँ कैसी ॥
सुंदूर और कहा कहिये अब ।
या मनकी गति दीसत ऐसी ॥ ११ ॥

कै बेर तूं मन रंक भयो सठ।
मागत भीख दशोदिश डूल्यो ॥
कै बेर तूं मन छत्र धर्यो शिर।
कामिनि संग हिंडोरन झूल्यो ॥
कै बेर तूं मन छीन भयो अति।
कै बेर तूं सुख पायके फूल्यो ॥
सुंदर कै बेर तोहि कह्यो मन।
कौन भली किहि मारग भूल्यो ॥ १२ ॥
इंद्रिनके सुख चाहत है मन।
लालच लागि भ्रमै सठ यूंही ॥
देखि मरीच भर्यो जल पूरन।
धावत है मृग मूरख ज्यूंही ॥
प्रेत पिशाच निशाचर डोलत।
भूख मरै नहि धावत क्यूंही ॥
वायु बधूरहि कौन गहै कर।
सुंदर दौरत है मन त्यूंही ॥ १३ ॥

वहै सबको शिरताज ततछन ।
जो अभि-अंतर ज्ञान विचारे ॥
जो कछु और विषैसुख वंछत ।
तौ यह देह-अमोलक हारे ॥
छांडि कुबुद्धि भजै भगवंतहि ।
आपु तरै पुनि औरहि तारै ॥
सुंदर तोहि कह्यो कितनी विर ।
तूं मन क्यूं नहि आप सँभारै ॥ १४ ॥
कौन स्वभाव पऱ्यो उठि दौरत ।
अमृत छांडि चचोरत हाडे ॥
ज्यूं भ्रमकी हथनी द्रग देखत ।
आतुर होइ परै गज खाडे ॥
वाद व्रथा भटकै निशि-वासर ।
एकहु सीख लगी नहि राडे ॥
सुंदर तोहि सदा समुझावत ।
रे मन तूं भ्रमवो कि न छाँडे ॥ १५ ॥

जो मन नारिकि और निहारत ।
तौ मन होतहि ताहिकु रूपा ॥
जो मन काहुसुँ क्रोध करै पुनि ।
तौ मन व्है तबही तद्रूपा ॥
जो मन मायहि माय रटै नित ।
तौ मन बूडत मायके कूपा ॥
सुंदर जो मन ब्रह्म-विचारत ।
तौ मन होतहि ब्रह्मस्वरूपा ॥ १६ ॥

॥ मनहर छंद ॥

कबहुक हँसि ऊठे । कबहुक रोइ देत ।
कबहु बकत कहुँ अंतहू न लहिये ॥
कबहुक खाई तौ अघात नहि काहूकरि ।
कबहुक कहै मेरे कछु नहि चहिये ॥
कबहू आकाश जाई कबहू पाताल जाई ।
सुंदर कहत ताहि कैसे करि गहिये ॥
कबहुक आय लगै । कबहुक उठि भगै ।

भूतकेसे चिन्ह करै ऐसो मन कहिये ॥१७॥
कबहू तौ पांखको परेवा के दिखावै मन ।
कबहूक धुरके चावर करि लेत है ॥
कवहू तौ गुटिका उछारत आकाश और।
कवहू तौ राते पीरे रंग स्याम स्वेत हैं॥
कवहु तौ आंबकू उगाई करि ठाढो करै।
कवहू तौ सीस-धर जुदे करि देत है ॥
बाजीगर ख्याल ऐसो सुंदर कहत मन।
सदाही भ्रमत रहै ऐसो कोऊ प्रेत है॥१८॥
कबहूक साध होत। कबहूक चोर होत।
कबहूक राजा होत। कबहूक रंक सो॥
कबहूक दीन होत। कबहू गुमानी होत॥
कबहूक सूधो होत। कबहूक बंक सो॥
कबहूक कामी होत। कबहूक जती होत।
कबहू निर्मळ होत। कबहूक पंक सो॥

---

८ चिखल ॥

मनको स्वरूप एसो सुंदर फटिक जैसो ।
कबहूक शूर होत कबहूक मयंक सो॥१९॥
हाथीकोसो कान किंधौं पीपरको पान किधौं
ध्वजाको उडान कहूं थिर न रहतु है ॥
पानीको सो घेर किधौं पौन उरंझेर किधौं ।
चक्रको सो फेर कोऊ कैसेके गहतु है ॥
रहटकी माल किधौं चरखाको ख्याल किधौं
फेरी खातो बाल कछु सुधि न लहतु है ॥
धूमके सो धाव ताकूं राखवेको चाव ऐसो ।
मनको स्वभाव सो तौ सुंदर कहतु है॥२०॥
सुख मानै दुःख मानै संपत्ति-विपत्ति मानै ।
हर्ष मानै शोक मानै । मानै रंक धन हैं॥
घाटि मानै बढि मानै । शुभहू अशुभ मानै।
लाभ मानै हानि मानै याहीतें कृपन है ॥
पाप मानै पुन्य मानै उत्तम-मध्यम मानै ॥

---

९ चंद्र ॥ १० के अथवा ॥ ११ चलन ॥

नीच मानै ऊच मानै मानै मेरो तन है ॥
स्वर्ग मानै नर्क मानै बंध मानै मोक्ष मानै।
सुंदर सकल मानै तातें नाम मन है ॥२१॥
जोई जोई देखैं कछु सोई सोई मन आहि।
जोई जोई सुनै सोई मनहीको धर्म है ॥
जोई जोई सूंघै जोई खावै जो सपर्श होई।
जोई जोई करै सोई मनहीको कर्म है ॥
जोई जोई ग्रहै जोई त्यागै जोई अनुरागै।
जहां जहां जाई सोई मनहीको शर्म है।
जोई जोई कहै सोई सकल सुंदर मन।
जोई जोई कल्पै सोई मनहीको धर्म है॥२२॥
एकहीं बिटप-विश्व ज्यूंको त्यूंही देखियत।
अतिहि सघन ताके पत्र फल फूल है ॥
आगले झरत पात नये नये होत जात।
ऐसे याही तरुको अनादी काल मूल है ॥
दश-चार-लोक लों पसरी रह्यो जहां तहां।

अध रु ऊरध पुनि सूक्षम रु स्थूल है ॥
कोऊ तौ कहत सत। कोऊ तौ कहै असत।
सुंदर कहत भ्रमहीको मन मूल है॥ २३ ॥
तोसो न कुपूत कोऊ कितहू न देखियत।
तो सो न सुपूत कोऊ देखियत और है।
तूंही आप भूलै महा नीचहूतें नीच होई।
तूंही आप जानै तो सकल-शिरमोर है॥
तूंही आप भ्रमै तब जगत भ्रमत देखे।
तेरे स्थित भये सब ठौरहीको ठौर है॥
तूंही जीवरूप तूंही ब्रह्म है आकाशवत।
सुंदर कहत मन तेरी सब-दौर है॥ २४ ॥
मनहीके भ्रमतें जगत यह पेखियत।
मनहीको भ्रम गये जगत बिलात है॥
मनहीको भ्रम जेवरीमें उपजत साप।
मनके विचारे साप जेवरी समात है॥
मनहीके भ्रमतें मरीचिकाकूं जल कहै।

मनहीके भ्रम सीप रूपोसो दिखात है ॥
सुंदर सकल यह दीसै मनहीको भ्रम ।
मनहीको भ्रम गये ब्रह्म होई जात है॥२५॥
मनही जगतरूप होई करि विसत-यो ।
मनही अलखरूप जगतसूं न्यारो है ॥
मनही सकल-घट-व्यापक अखंड एक ।
मनही सकल यह जगत पियारो है ॥
मनही आकाशवत हाथ न परत कछु ।
मनके न रूप-रेष-वृद्धि-हीन-वारो है ॥
सुंदर कहत परमारथ विचारै जब ।
मन मिटि जाई एकब्रह्म निज सारो है॥२६

इति मनको अंग संपूर्ण ॥ ११ ॥

अथ चाणकको अंग ॥ १२ ॥

॥ मनहर छंद ॥

जोई जोई छूटवेको करत उपाय अघ ।

सोई सोई हठकरि बंधन परतु है ॥
योग-यज्ञ जप-तप तीरथ-व्रतादि और ।
जंपापात लेत जाई हिमाले गरतु है ॥
कानहु फराई पुनि केशहु लुंचाइ अंग ।
विभूति लगाई शिर जटाहू धरतु है ॥
बिन ज्ञान पाय नहि छूटत हृदयग्रंथी ।
सुंदर कहत यूंही भ्रमीके मरतु है ॥ ? ॥

॥ सर्व लघुअक्षर ॥

जप तप करत धरत व्रत जत सत ।
मन वच क्रम भ्रम कसट सहत तन ॥
वलकल वसन असन फल पत्र जल ।
कसत रसन रस तजत वसत वन ॥
जरत मरत नर गरत परत सर ।

---

१ भविष्यकालमें सुखादिकनकी प्राप्तिके वास्ते पानीके खड्डेमें ऊंचेसें गिरिके मरे है । इत्यादि ॥ २ वृक्षकी त्वचा ॥ ३ भोजन ॥ ४ ताल ॥

कहत लहत हॅय[५] गज दल बल घन ॥
पचत पचत भव भय न टरत सठ ।
घट घट प्रगट रहत न लखत जन ॥ २ ॥
॥ पूर्ववत् ॥
योग करै यज्ञ करै वेद विधि त्याग करै ।
जप करै तप करै यूंही आयु खूटि है ॥
यम करै नैम करै तीरथहु व्रत करै ।
पुहुमी[६] अटन करै व्रथा श्वास टूटि है ॥
जीवेको यतन करै मनमें वासना धरै ।
पचि पचि यूंही मरै काल शिर खूटि है ॥
औरहू अनेकविधि कोटिकउपाय करै ।
सुंदर कहत बिन ज्ञान नहीं छूटि है ॥ ३ ॥
बुद्धिकारि हीन-नर रज-तम छाए रह्यो ।
बन बन फिरत उदास होई घरतें ॥
कठिन-तपस्या धरि मेघ शीत-घाम सहै ।

५ घोडा ॥ ६ पृथ्वी ॥

कंद-मूल खाई कोऊ कामनाके डरतें ॥
अतिही अज्ञान उर विविध-उपाय करै ।
निजरूप भूलिके वंधत जाई परतें ॥
सुंदर कहत आँधी-वोर कैसे दीखै मुख ।
हाथमांहि आरसी न फेरै मूढ करतें ॥४॥
मेघ सहै शीत सहै शीशपर घाम सहै ।
कठिन-तपस्या करि कंद-मूल खात है ॥
योग करै यज्ञ करै तीरथ रु व्रत करै ।
पुन्य नानाविधि करै मनमें सुहात है ॥
और देवी देवता उपासना अनेक करै ॥
आंबनकी हौंस कैसे आक डोडे जात है ।
सुंदर कहत एक रविके प्रकाश बिनु ।
जेंगनाकी ज्योती कहा रजनी बिलात है॥५॥
कोई फिरै नागे पाय गुदरी वनायकरि ।

७ खद्योतादिक खेचरनकी ज्योतितें रात्र निवृत्त होवै नहीं ॥

देहकी दिशा दिखाई आई लोक घूट्यो है॥
कोई दूधाहारी होई कोई फलाहारी होई।
कोई अधोमुख झूलै झूलि धूप घूट्यो है ॥
कोई नहि खाए लौन कोई मुख गहै मौन।
सुंदर कहत यूंही व्रथा भूस कूट्यो है ॥
प्रभुसूं तौ प्रीति नाहि ज्ञानसूं परिचै नाहिं।
देखो भाई आंधरेने ज्यूं बजार लूट्यो है॥६॥

॥ इंदव छंद ॥

आसन मारि सँवारि जटा नख।
उज्वल अंग विभूति चढाई ॥
या हमकूं कछु देंहि दया करि।
घेरि रहैं बहु लोग लुगाई ॥
कोउक उत्तम-भोजन ल्यावत।
कोउक ल्यावत पान मिठाई ॥
सुंदर लेकरि जात भयो सब।
मूरखलोकनि या विधि पाई ॥ ७॥

ऊरध-पाय अधो-मुख ह्वै करि ।
घूटत धूमहि देह झुलावै ॥
मेघहु शीतहु घाम सहै शिर ।
तीनहु काल महादुःख पावै ॥
हाथ कछू न परै कबहू कन ।
मूरख कूकस कूटि उडावै ॥
सुंदर वंछि विषैसुखकूं घर ।
वूडत है अरु झांझ ले गावै ॥ ८ ॥
गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो पुनि ।
खेह लगाइ जु देह सँवारी ॥
मेघ सहै शिर शीत सहै तन ।
धूप समै जु पँचागनि बारी ॥
भूख सहै रहि रूख तरै पर ।
सुंदरदास सहै दुःख भारी ॥
डासन छांडि जु कासन ऊपर ।

८ दामके तृण ॥

आसन मारि पै आस न मारी ॥९॥
जो कुछु कष्ट करै बहु भांतिनि ।
जात अज्ञान नहीं मन केरो ॥
ज्यूं तम पूरि रह्यो घर-भीतर ।
कैसहु दूर न होय अँधेरो ॥
लाठिनि मारिय ठेलि निकारिय ।
और उपाय करै बहुतेरो ॥
सुंदर शूर-प्रकाश भयो तब ।
तौ कितहू नहिं देखिय नेरो ॥ १० ॥
धार बह्यो बड धारि रह्यो जल ।
धार सह्यो गिरि-धार गऱ्यो है ॥
भार सँच्यो धन भारथमें करं-
भार लह्यो शिर भार पऱ्यो है ॥
भार तप्यो वहि मार गयो जम ।

---

१ एक राजा दूसरे राजाकूं करभार (खंडनी) देवै है ॥

मार दई मन तौ न मर्‍यो है ॥
सार तज्यो *षटसार पर्‍यो कहि।
सुंदर कारज कौन सर्‍यो है ॥ ११ ॥

कोउ भया पय-पान करै नित ।
कोउक खातहि अन्न-अलौना ॥
कोउक कष्ट करै निशि-बासर ।
कोउक बैठि जु साधत पौना ॥
कोउक वाद-विवाद करै अति ।
कोउक धारि रहै मुख मौना ॥
सुंदर एक अज्ञान गये बिनु ।
सिद्ध भये नहिं दीसत कौना ॥१२॥

॥ सवैया छंद ॥

कोउक अंग बिभूति लगावत।
कोउक होत निराट दिगंबर ॥
कोउक सेत कषायक वोढत ।

*षट्शास्त्रनका सार पढ़्यो ॥ १० जैनकी एक शाखावाले॥

कोउक काथ रँगै बहु अंबर[11] ॥
कोउक वल्कल शीस जटा नख।
कोउक वोढत है जु वगंबर ॥
सुंदर एक अज्ञान गये बिनु।
ए सब दीसत आहिं अडंबर ॥ १३ ॥

॥ इंदव छंद ॥

कोउक जात प्रयाग बनारसि।
कोउ गया जगँनाथहि धावै ॥
कोउ मथुरा बदरी हरिद्वार सु।
कोउ गँगा कुरुक्षेत्र नहावै ॥
कोउक पुष्कर व्है पँच-तीरथ।
दौरिहि दौरि जु द्वारिका आवै ॥
सुंदर वित्त गड्यो घरमांहि सु।
बाहिर ढूंढत क्यूंकरि पावै ॥ १४ ॥
आगे कछु नाहिं हाथ पर्‍यो पुनि।

---

११ वस्त्र ॥

पीछे बिहारि गयो निज भौना ॥
ज्यूं कोइ कामिनि कंतहि मारि च-
ली सँग औरहि देखि सलौना ॥
सोउ गयो तजिके ततकाल कु-
है न बनै जु रही मुख-मौना ॥
तैसहि सुंदर ज्ञान विना घर-
छांडि भये नर भांडके दौना ॥ १९ ॥
ज्यूं कोउ कोश कटयो नहिं मारग।
तेलक[12]ले घरमें पशु जोए ॥
ज्यूं वनियां गयु बीसके तीसकुं।
बीसहुमें दशहु नहि होए ॥
ज्यूं कोउ चोबा छबेकूं चल्यो पुनि।
होइ दुबे दुइ गांठके खोए ॥

१२ तेली ॥ १३ चोबा ब्राह्मण छबा होनेके-
वास्ते किसी औरदेशमें गया । तहांके लोक दूबा
कहेन लगे ॥

तैसहि सुंदर और क्रिया सब।
राम बिना निश्चै नर रोए ॥ १६ ॥

ज्यूं कोउ राम बिना नर-मूरख ।
औरनिके गुन जीभ भनैगी ॥
आन क्रिया गढके गडवा पुनि ।
होतहि बेरे कछू न बनैंगी ॥
ज्यूं हथ फेरि दिखावत चांवर।
अंत तु धूरिकि धूरि छिनैगी ॥
सुंदर भूल भई अतिसै करि।
मूतेकि भैंस पाॅडाहि जनैगी ॥ १७॥

होइ उदास विचार बिना नर ।
गेह तज्यो वन जाइ रह्यो है ॥
अंबर छांडि वगंबर ले करि—
के तपको तन कष्ट सह्यो है ॥
आस न मारि सुआस न व्है मुख।
मौन गही मन तौ न गह्यो है॥

सुंदर कौन कुबुद्धि लगी कहि ।
या भव-सागरमांहि बह्यो है ॥ १८ ॥

भेष धर्‍यो परि भेद न जानत ।
भेद लहै बिन खेदहि पैहैं ॥
भूखहि मारत नींद निवारत ।
अन्न तजै फल पत्र न खैहैं ॥
और उपाय अनेक करै पुनि ।
ताहित हाथ कछू नहि ऐहैं ॥
या नर-देह वृथा सठ खोवत ।
सुंदर राम बिना पछतैहैं ॥ १९ ॥

आपन आपन थान मुकाम स-
राहनकूं सब भाँति भली है ॥
यज्ञ व्रतादिक तीरथ दान पु-
रान कथा जु अनेक चली है ॥
कोटिक और उपाय जहांलगि ।
ते सुनिकें नर-बुद्धि छली है ॥

सुंदर ज्ञान बिना न कहूं सुख ।
भूलनकी बहुभांति गली हैं ॥ २० ॥
कोउक चाहत पुत्र धनादिक ।
कोउक चाहत बांझ जनायो ॥
कोउक चाहत धातु रसादिक ।
कोउक चाहत पार दिखायो ॥
कोउक चाहत जंत्रनि मंत्रनि ।
कोउक चाहत रोग गमायो ॥
सुंदर राम विना सबही भ्रम ।
देखहु या जग यूं डहकायो ॥ २१ ॥
काहेकुं तूं नर भेष बनावत ।
काहेकुं तूं दशहू दिश डूलैं ॥
काहेकुं तूं तन कष्ट करै अति ।
काहेकुं तूं मुखतैं कहि फूलै ॥
काहेकुं और उपाय करै अब ।
ज्ञान क्रिया करके मत भूलै ॥

सुंदर एक भजै भगवंतहि ।
तौ सुख-सागरमें नित झूलै ॥ २२ ॥
॥ इति चाणक को अंग संपूर्ण ॥ १२ ॥

—×—

अथ विपरीतज्ञानको अंग ॥ १३ ॥

॥ मनहर छंद ॥

एकब्रह्म मुखसूं बनायकरि कहत है ।
अंतह्करन तौ विकारनसूं भर्‍यो है ॥
जैसे ठग गोबरको कूपो भरि राखत है ।
सेर-पंच-घृत लेके ऊपर ज्यूं कर्‍यो है ॥
जैसे कोई भांडेमांहि प्याजकूं छिपाय राखे ।
चीथरा कपूरको ले मुख बांधि धर्‍यो है ॥
सुंदर कहत ऐसे ज्ञानी हैं जगतमांहि ।
तिनकूं तौ देखि करि मेरो मन डर्‍यो है१

१ कांदेकू ॥

देहसूं ममत्व पुनि गेहसूं ममत्व सुत ।
दारासूं ममत्व मन मायामें रहतु है ।
थिरता न लहै जैसे कंदुक[२] चौगानमांहि ।
कर्मनिके वश मार्‍यो धकाकूं वहतु है ॥
अंतहकरन सदा जगतसूं रचि रह्यो ।
मुखसूं बनाय बात ब्रह्मकी कहतु हैं ॥
सुंदर अधिक मोहि याहितें अचंबो आहि ।
भूमिपर पर्‍यो कोउ चंदकूं गहतु है ॥ २ ॥
मुखसूं कहत ज्ञान । भ्रमै मन इंद्रि प्रान ।
मारग के जलमें न प्रतिबिंब लहियें ॥
गांठमें न पैसा कोउ भयो रहै साउकार ।
बांनिनिमें महुर रुपैया गिनि लहिये ॥
स्वपनेमें पंचामृत जीमके तृपत्त भयो ।
जागेतें मरत भूख खायबेकूं चहिये ॥
सुंदर सुभट जैसे कायर मारत गाल ।

२ दृढ़ा । गेंद ॥ ३ बड़ाई ॥

राजा भोज सम कहा गांगोतेली कहिये ३

संसारके सुखनिसूं आशक्ति अनेकविधि ।
इंद्रिहु लोलुप मन कवहु न गह्यो है ॥
कहत है ऐसे मैं तौ एकब्रह्म जानत हूं ।
ताहितें छोडिके शुभकर्मनतें रह्यो है ॥
ब्रह्मकी न प्राप्ति पुनि कर्म सब छूटि गये ।
दोउनतें भ्रष्ट होई अधविच बह्यो है ॥
सुंदर कहत ताहि त्यागिये स्वपच जैसे ।
याहि भ्रांति ग्रंथमें वसिष्ठजीहू कह्यो है ४

ज्ञानीकीसी बात कहै मन तौ मलिन रहै ।
वासना अनेक भरि । नेकु न निवारी है ॥
जैसे कोउ आभूषन अधिक बनाई राखै ।
कलई ऊपर करि भीतर भंगारी है ॥
ज्यूंही मन आवै त्यूंही खेलत निशंक होइ ।
ज्ञान सुनि सीखि लियो । ग्रंथनि विचारीहै ॥

---

४ लालच ॥ ५ चंडाल ॥

सुंदर कहत वाके अटक न कोउ आहि ।
जोई वासूं मिलैं जाई ताहिकूं बिगारी है५
हंस स्वेत बक स्वेत देखिये समान दोउ ।
हंस मोती चुगै बक मछरीकूं खात है ॥
पिक अरु काक दोउ कैसेकरि जाने जाइ ।
पिक अंब-डारि काक करकँहि जात है ॥
सैंधौ अरु फटिक पाषान-सम देखियत ।
वह तौ कठोर वह जलमें समात है ॥
सुंदर कहत ज्ञानी बाहिर-भीतर शुद्ध ।
ताकी पटंतर और बातनिकी बात है ॥६॥

॥ इति विपरीतज्ञानको अंग संपूर्ण ॥ १३ ॥

॥ अथ वचनविवेकको अंग ॥ १४ ॥

॥ मनहर छंद ॥

जाके घर ताजी तुरकिनको तबेलो बांध्यो ।

६ कोकिला ॥ ७ करीर ॥ ८ अभिप्राय ॥

ताके आगे फेरि फेरि टटुवा दिखाइये ॥
जाके खासा मलमल सार्फंनके ढेर परे ।
ताके आगे आनि करि चौसंई रखाइये ॥
जाके पंचामृत खात खात सबदिन बीते ।
सुंदर कहत ताहि राबरी चखाइये ।
चतुर प्रवीन आगे मूरख उच्चार करै ।
सूरजके आगे जैसे जगनाँ लखाइये ॥१॥
एक वाणी रूपवंत भूषन बसन अंग ।
अधिक विराजमान कहियत ऐसी है ॥
एक वाणी फाटे टूटे अंबर उढाय आनि ।
ताहुमांहि विपरीत सुनियत जैसी है ॥
एक वाणी मृतकसी बहुत शृंगार किये ।
लोकनिकूं नीकी लगै संतनिकूं भैसी है ॥

१ ताके ॥ २ खादी ॥ ३ दुध । दही । धीउ शक्कर । मध । यह पंचअमृत हैं ॥ ४ खद्योत ॥ ५ भयकी ग्यांई ॥

सुंदर कहत वाणी-त्रिविध जगतमांहि ।
जानै कोई चतुर प्रवीन जाकी जैसी है॥२॥
राजाको कुंवर जो सुरूप कै कुरूप होई ।
ताकूं तौ शिलाम करि गोद ले खेलाइये ॥
और कोउ रैतको सुरूप होई शोभनीक ।
ताहूकूं तौ देखि करि निकट बुलाइये ॥
काहुको कुरूप कारो कूबरो व्है अंगहीन।
वाकी और देखि देखि माथोही हलाइये॥
सुंदर कहत वाके बापहीको प्यारो होई ।
यूंही जानि बानीको विवेक ऐसे पाइये ३
बोलिये तौ तब जब बोलवेकी सुद्धि होई।
न तौ मुख मौन गहि चुप होई रहिये ॥
जोरिये तौ तब जब जोरवेकी जान परै।
तुक छंद अरथ अनूप जामें लहिये ॥
गाइये तौ तब जब गायवेको कंठ होई ।
श्रवनके सुनतही मन जाइ गहिये ॥

तुक भंग छंद भंग अरथ न मिलै कछु ।
सुंदर कहत ऐसी बानी नहि कहिये॥ ४ ॥

एकनिके वचन सुनत अतिसुख होई ।
फूलसे झरत हैं अधिक मन-भावने ॥
एकनिके बचन तौ असि मानौ बरषत।
श्रवनके सुनत लगत अलखावने ॥
एकनिके वचन कटुक कहु विषरूप ।
करत मरम छेद दुःख उपजावने ॥
सुंदर कहत घट घटमें वचन भेद ।
उत्तम मध्यम अरु अधम सुहावने ॥ ५ ॥

काक अरु रासभ उलूक जब बोलत हैं ।
तिनके तौ वचन सुहात कहु कौनकूं ।
कोकिला रु सारी पुनि सूवा जब बोलत हैं ।
सब कोउ कान दे सुनत रवरौनकूं ॥

६ तलवार ॥ ७ गधा ॥ ८ घूवड ॥
९ मैना ॥ १० नाद ॥

ताहितें सुवचन विवेककरि बोलिये जु ।
यूंही आकबाक बकि तोरिये न पौनकूं ॥
सुंदर समुझि ऐसे वचन उच्चार करौ ।
नहि तौ समुझिकरि बैठौ ग्रहि मौनकूं॥६॥
प्रथम हिये विचार ढींमसो न दीजै डार ।
ताहितें सुवचन संभारिकरि बोलिये ॥
जानै न कुहेत हेत भावै तैसी कही देत ।
कहिये सु तव जब मनमांहि तोलिये ॥
सबहीकूं लागै दुःख कोउ नहि पावै सुख ।
बोलिके व्रथाही तातें छाती नाहि छोलिये ॥
सुंदर समुझिकरि कहिये सरस बात ।
तबही तौ वंदन-कपाट गहि खोलिये॥७॥
और तौ वचन ऐसे बोलत हैं पशु जैसे ।
तिनके तौ बोलवेमें ढंगहू न एक है ॥
कोऊ रात-दिवस बकतही रहत ऐसे ।

११ धातुका गड्ढा ॥ १२ मुख-दरवाज़ा ॥

जैसी विधि कूपमें बकत मानो भेक[13] है ॥
विवध-प्रकार करि बोलत जगत सब ।
घट घट प्रतिमुख वचन अनेक है ॥
सुंदर कहत तातें वचन विचारि लेहू ।
वचन तौ वहै जामें पाइये विवेक है ॥८॥
जैसे हंस नीरकूं तजत है असार जानि ।
सार जानि क्षीरकूं निरालो करि पीजिये ॥
जैसे दधि मथत मथत काढि लेत घ्रत ।
और वही सब छाछ छांडि दीजिये ॥
जैसे मधु-माक्षिका सुवासकूं भ्रमर लेत ।
तैसेही विचारकरि भिन्न भिन्न कीजिये ॥
सुंदर कहत तातें वचन अनेकभांति ।
वचनमें वचन विवेक करि लीजिये ॥९॥
प्रथमही गुरुदेव मुखतें उच्चार कऱ्यो ।
वेई तौ वचन आए लगे निज हिये हैं ॥

१३ देडका.

तिनको विवेक करि अंतहकरनमांहि ।
अतिही अमोल-नग भिन्न भिन्न किये हैं ॥
आपको दरिद्र गयो परउपकार हेत ।
नगही निगलिके उगलि नग लिये हैं ॥
सुंदर कहत यह बानी यूं प्रगट भई ।
और कोइ सुनि करि रंक जीव जिये हैं १०
वचनतें दूर मिलै वचन विरोध होई ।
वचनतें राग बढै । वचनतें दोष जू ॥
वचनतें ज्वाल उठै वचन शीतल होई ।
वचनतें मुदित वचनहीतें रोष जू ॥
वचनतें प्यारो लगै वचनतें दूर भगै ।
वचनतें मरि जाई वचनतें पोषै[१४] जू ॥
सुंदर कहत यह वचनको भेद ऐसो ।
वचनतें बंध होत वचनतें मोष जू ॥ ११ ॥
वचनतें गुरु-शिष्य बाप-पूत प्यारो होई ।

---

१४ पोषण ॥

वचनतें बहुविधि होत उतपात है ॥
वचनतें नारी अरु पुरुष सनेह अति ॥
वचनतें दोउ आप-आपमें रिसात हैं ॥
वचनतें सब आई राजाके हजूर होई ।
वचनतें चाकरहु छोडिके पलात है ॥
सुंदर सुवचन सुनत अतिसुख होई ।
कुवचन सुनतहि प्रीति घटि जात है १२
एक तौ वचन सुनि कूपमांहिपैं बहि जाय ।
करत बहुतविधि स्वर्गकी उमेद है ॥
एक है वचन दृढ ईश्वर उपासनाके ।
तिनमें तौ सकलही वासनाको छेद है ॥
एक है वचन तामें एकही अखंड-ब्रह्म ।
सुंदर कहत यूं बतावै अंतें वेद है ।
वचन तौ अनेक प्रकार सब देखियत ।
वचन-विवेक किये वचनमें भेद हैं ॥१३॥

---

१५ वेदांत ॥

वचनतें योग करै वचनतें यज्ञ करै।
वचनतें तप करि देहकूं दहतु है ॥
वचनतें बंधन करत हैं अनेकविधि।
वचनतें त्याग करि वचन रहतु है ॥
वचनतें उरझै रु सुरझै[१६] वचनहूतें।
वचनतें भांति-भांति संकट सहतु है ॥
वचनतें जीव भयो वचनतें शिव[१७] होई।
सुंदर वचन-भेद वेद यूं कहतु है ॥१४॥

॥ इति वचनविवेकको अंग संपूर्ण ॥ १४ ॥

अथ निर्गुणउपासनाको अंग ॥१५॥

॥ इंदव छंद ॥

ब्रह्म[१] कुलाल रचै वहु भांजन[२]।

---

१६ समझना ॥ १७ कल्याणरूप ब्रह्म ॥ १ ब्रह्मा ॥
२ अन्वयः—कर्मनिके वश ब्रह्मा बहु भांजन रचैहै॥ सो मेरेकूं नहीं भावे है ॥

कर्मनिके वश मोहि न भावै ॥
विष्णुहि संकट आय सहै प्रभु ।
काहुको रक्षक काहु सँतावै ॥
शंकर³ भूत पिशाचनिको पति ।
पा⁴नि कपाल⁵ लिये बिललावै ॥
या हित सुंदर त्रीगुन त्यागि सु ।
निर्गुन-एक-निरंजन ध्यावै ॥ १ ॥

॥ सवैया छंद ॥

कोटिक बात बनाये कहै कहाँ ॥
होत भये सबही मन रंजन ॥
शास्त्र सुमृति रु वेद पुरान ब-
खानत हैं अति लायके अंजन ॥
पानिमैं बूडत पानि गहै कित ।
पार पहूचत हैं मति भंजन ॥

३ महादेव ॥ ४ हाथ ॥ ५ ठीकरा ॥

सुंदर त्हांलगि [6]अंधकि जेवरि ।
जौलुँ न धाइय एक-निरंजन ॥ २ ॥

॥ इंदव छंद ॥

भंजन सो जु मनोमल भंजन ।
सज्जन सो जु कहै गति गू
गंजन सो जु इंद्री गहि गंजन ।
रंजन सो जु बुझावें अबूझै ॥
भंजन सो जु भऱ्यो रसमांहि वि-
द्वज्जन सो कितहू न अरूझै ॥
[11]व्यंजन सो जु वढे रुचि सुंदर ।
अंजन सो जु निरंजन सूझै ॥ ३ ॥

जा प्रभुतें उतपत्ति भई यह ।
सो प्रभु हैं उर इष्ट हमारे ॥
जो प्रभु है सबके शिर ऊपर ।

---

६ अंधारेकी ॥ ७ दमन ॥ ८ पात्र ॥ ९ पंडित ॥ १० नाराजी ॥ ११ भोजन ॥

ता प्रभुकूं शिरही हम धारे ॥
रूप न रेख अलेख अखंडित ।
भिन्न रहै सब-कारन सारे ॥
नाम निरंजन है तिनको पुनि ।
सुंदर ता प्रभुकी बलिहारे ॥ ४ ॥
जो उपजै बिनसै गुन धारत ।
सो यह जानहु अंजन माया ।
आव न जाय मरै नहिं जीवत ।
अच्युत एक निरंजन राया ॥
ज्यूं तरु तत्व रहै रस एकहि ।
आवत जात फिरै यह छाया ॥
सो परब्रह्म सदा शिर ऊपर ।
सुंदर ता प्रभुसूं मन लाया ॥ ५ ॥
जो उपज्यो कछु आहि जहांलग ।
सो सब नाश निरंतर होई ॥
रूप धऱ्यो सु रहै नहि निश्चल ।

तीनहु लोक गिनै कहाँ कोई ॥
राजस तामस सात्विक जे गुण ।
देखत काल ग्रसै पुनि वोई ॥
आपहि एक रहै जु निरंतर ।
सुंदरके मन मानत सोई ॥ ६ ॥

देवनिके शिर देव विराजित ।
ईश्वरके शिर ईश्वर कैये ॥
लालनिके शिर लाल निरंतर ।
खूबनिके शिर खूबहि लैये ॥
पाक[12]निके शिर पाक शिरोमणि ।
देखि बिचार उहै दृढ गैये ।
सुंदर एक सदा शिर ऊपर ।
और कछू हमकूं नाहि चैये ॥७॥

शेष महेश गनेश जहांलगि ।
विष्णु विरंचिहु[13]के शिर स्वामी ॥

१२ पवित्र ॥ १३ ब्रह्मा ॥

व्यापक ब्रह्म अखंड अनाद्यंत ।
बाहरि भीतर अंतरजामी ॥
वोर[१४] न छोर[१५] अनंत कहे गुन ।
या हित सुंदर है घन[१६]-नामी[१७] ॥
ऐसु प्रभू जिनके शिर ऊपर ।
क्यूं परि है तिनकुं काहि स्वामी ॥८॥

॥ इति निर्गुणउपासना को अंग संपूर्ण ॥ १९ ॥

——×——

अथ पतिव्रताको अंग ॥ १६ ॥

॥ इंदव छंद ॥

आनकि वोर निहारतही जस ।
जात पति-व्रत एक वृत्तीको ॥
होत अनादर ऐसहि भांति जु ।

---

१४ निरावरण ॥ १५ पार ॥ १६ आवार ॥
१७ बहुतनामवाला ॥

पीछे फिरै नाहि शूर सतीको ॥
नेकु[1]दिमें इरवो हुइ जात खि-
सै अध बिंदु जु योग यतीको ॥
राम हृदेतें गये जन सुंदर ।
एक रंती बिन पाव-रतीको ॥ १ ॥
जो हरिकूं तजि आन उपासत ।
सो मति-मंद[2] फजीतहि होई ॥
ज्यूं अपने भरतारहि छांडि भ-
ई व्यभिचारिनि कामिनिं कोई ॥
सुंदर ताहि न आदरमान फि-
रै विमुखी अपनी पत खोई ॥
बूडि मरै किन कूप मँझार क-
हा जग जीवत है सठ सोई ॥२॥
होइ अनन्य भजै भगवंतहि ।
और कछू उरमैं नहि राखै ॥

१ कांति प्रीति ॥ २ चिनोठी ॥ ३ अभिन्न ॥

देवि रु देव जहां लग है डर-
के तिनसूं वहि दीन न भाखै ॥
योगहु यज्ञ व्रतादि क्रिया तिन-
कूं तु नहीं स्वप्ने अभिलाखै ॥
सुंदर अमृतपान कियो तब ।
तौ कहु कौन हलाहल चाखै ॥ ३ ॥
एक सही सबके उर अंतर ।
ता प्रभुकूं कहु काहि न गावै ॥
संकटमांहि सहाय करै पुनि ।
सो अपनो पति क्यूं बिसरावै ॥
चार-पदारथ और जहां लगि ।
आठहु सिद्धि नवैं-निधि पावै ॥

४ जहर ॥ ५ धर्म । अर्थ । काम । मोक्ष ॥
६ अणिमा । महिमा । गरिमा । लघिमा । प्राप्ति । प्राकाम्य । ईशित्व । वशित्व । ७ पद्म । महापद्म । मकर । कच्छ । मुकुंद । कुंद । नंद । नील । खर्व ॥

सुंदर छार परौ तिनकै मुख ।
जो हरिकूं तजि आनकुँ ध्यावै ॥ ४ ॥

पूरन-काम सदा सुख-धाम नि-
रंजन राम सिरज्जनहारो ॥
सेवक होइ रह्यो सबको नित ।
कीटहि कुंजर देत अहारो ॥
भंजन दुःख दारिद्र निवारण ।
चिंत करै पुनि सांझ-सवारो ॥
ऐस प्रभू तजि आन उपासत ।
सुंदर है तिनको मुख कारो ॥ ५ ॥

॥ मनहर छंद ॥

पतिहीसूं प्रेम होइ । पतिहीसूं नेम होइ ।
पतिहीसूं क्षेम होई । पतिहीसूं रत है ॥
पतिही है यज्ञ योग । पतिही है रस भोग ।
पतिहीसूं मिटै सोग । पतिहीको यर्त है ॥

८ नियम ॥

पतिही है ज्ञान ध्यान। पतिही है पुन्य दान।
पतिही है तीर्थ स्नान । पतिहीको मत है ॥
पति बिनु पत नाही। पति बिनु गत नाही।
सुंदर सकलविधि । एक पति-व्रत है ॥६॥

जळको सनेही मीन । बिछुरत तजै प्रान ।
मीन विनु आहि जैसे । जीवत न लहीये ॥
स्वांत-बिंदुको सनेही । प्रगट जगतमांही ।
एक सीप दुसरो सु । चातकहु कहिये ॥
रविको सनेही पुनि कमळ सरोवरमें ।
शशीको सनेही हू चकोर जैसे रहीये ॥
तैसेही सुंदर एक प्रभुसूं सनेह जोर ।
और कछु देखि काहु-वोर नहीं वहीये ॥७॥

॥ इति पतिव्रताको अंग संपूर्ण ॥ ११ ॥

॥ अथ विरह उराहनेको अंग ॥१७॥

॥ मनहर छंद ॥

पीयको अंदेशो भारी । तोसूं कहूं सुन प्यारी ।
यारी तोरी गये सो तौ । अजहू न आए हैं ॥
मेरे तौ जीवन-प्रान । निशिदिन उहै ध्यान ।
मुखसूं न कहूं आन । नैन भर लाए हैं ॥
जबतें गए बिछोहि । कैल न परत मोहि ।
तातें हूं पूछत तोहि । किन बिरमाए है ।
सुंदर बिरहनीको । शोच सखी वार-वार ।
हमकुं बिसार अब । कौनके कहाए है ॥१॥
हमकूं तौ रैन-दिन । शंक मनमांहि रहै ।
उनकी तौ बातनिमें । ढंगहू न पाइये ॥
कबहु संदेसा सुनि । अधिक-उछाह होइ ।
कबहूक रोइ रोइ । आंसुनि बहाइये ॥

---

१ चैन ॥ रोकना ॥

औरनके रस बस । होइ रहै प्यारेलाल ।
आवनकी कही कही । हमकूं सुनाइये ॥
सुंदर कहत ताहि । काटिये सु कौन भांति ।
जोइ तरु आपने सु । हाथतें लगाइये ॥२॥
मोसूं कहै औरसीही । वासू कहे औरसीही ।
जाकूं कहै ताहीके । प्रतीत कैसे होत है ॥
काहूंसूं समास करै ॥ काहूंसूं उदास फिरै ।
काहूसूं तौ रसबस । एकमेक पोत है ॥
दगाबाजी दुवधा तौ मनकी न दूर होइ ।
काहूके अंधेरो घर । काहुके उद्योत है ॥
सुंदर कहत जाके । पीर¹ सो करै पुकार ।
जाके दुःख दूर गये । ताकूं भई वोत है॥३॥
हिये और जिये और । लिये और दिये और ।
किये और कौन सु । अनूप-पाटी पढे हैं ॥
मुख और बेन और । नैन और तन और ।

१ पीडा ॥

मन और काया सब। यंत्रमांहि कढे है ॥
हाथ और पाव और। शीसहू श्रवन और।
नख शिख रोम रोम। कलईसूं मढे हैं ॥
ऐसी तौ कठोरता न। सुनी नहिं देखी जग।
सुंदर कहत कोइ। वज्रहीके गढे है ॥ ४ ॥

इति विरह उराहनेको अंग संपूर्ण ॥ १७ ॥

॥ अथ शब्दसारको अंग ॥ १८ ॥

॥ मनहर छंद ॥

भुल्यो फिरै भ्रमतें कहत कछु और और।
करत न ताप दूरि। करत संतापकूं ॥
दक्ष[1] भयो रहै पुनि। दक्षप्रजापति जैसे।
देत पर-दीक्षणा[2] न। दीक्षा देत आपकूं ॥
सुंदर कहत ऐसे। जामें न युगति कछु।

---

१ चतुर ॥ २ परकूं शिक्षा ॥

और जाप जपैं न जपत निज-जापकूं ॥
बाल भयो ज्वान भयो। वय वीते वृद्ध भयो।
*वपुरूप होइके विसरी गयो आपकूं ॥ १ ॥

॥ इंद्व छंद ॥

पान उहै जु पीयूष[३] पिवै नित।
दान उहै जु दरिद्रहि भानै ॥
कान उहै सुनिये यश केशव।
मान उहै करिये सनमानै ॥
तान उहै सुरतान रिझावत।
जान उहै जगदीशहि जानै ॥
बान उहै मन बेधत सुंदर।
ज्ञान उहै उपजै न अज्ञानै ॥ २ ॥
शूर उहै मनकूं बस राखत।
कूर उहै मनमांहि लजै है ॥
त्याग उहै अनुराग नहीं कहुँ।

---

* शरीररूप ॥ ३ अमृत ॥

भाग उहै मन मोह तजै है ।
तंज्ञ उहै निज तत्त्वहि जानत ।
यज्ञ उहै जगदीश यजै है ॥
रक्त उहै हरिसूं रति सुंदर ।
भक्त उहै भगवंत भजै है ॥ ३ ॥
चाप उहै कसिये रिपु ऊपर ।
दाप उहै दलकारहि मारै ॥
छाप उहै हरि आप दई शिर ॥
थाप उहै थपि और न धारै ॥
जाप उहै जपिये अजपा नित ।
व्याप उहै निज व्याप विचारै ॥
बाप उहै सबको प्रभु सुंदर ।
पाप हरै अरु ताप निवारै ॥ ४ ॥
भौन उहै भय नाहि न जा मँहि ।
गौन उहै फिरि होइ न गौना ॥

४ ज्ञानी ॥ ५ धनुष्य ॥ ६ गमन ॥

वौंन उहै वमिये विषया-रस।
रौन उहै प्रभुसूं नहि रौना ॥
मौन उहै जु लिये हरि बोलत।
लौन उहै सब और अलौना ॥
सौन उहै गुरु संत मिलै जब।
सुंदर शंक रहैं नहि कौना। ॥ ५ ॥
कार उहै अविकार रहै नित।
सार उहै जु असारहि नाखै ॥
प्रीति उहै जु प्रतीति धरै उर।
नीति उहै जु अनीति न भाखै ॥
तंत उहै लगि अंत न टूटत।
संत उहै अपनो सत राखै ॥
नाद उहै सुनिं वाद तजै सब।
स्वाद उहै रस सुंदर चाखै ॥ ६ ॥
श्वास उहै जु उश्वास न छांडत।

---

७ वमन.

नाश उहै फिरि होइ न नाशा ॥
पास उहै सतपास लगै जम-
पास कटै प्रभुके नित पासा ॥
वास उहै ग्रहवास तजै बन-
वास सही तिहि ठोहर वासा ॥
दास उहै जु उदास रहै हरि-
दास सदा कहि सुंदरदासा ॥ ७ ॥
श्रोत्र उहै श्रुतिसार सुनै अरु ।
नैन उहै निजरूप निहारै ॥
नाक उहै हरि नाकहि राखत ।
जीभ उहै जगदीश उचारै ॥
हाथ उहै करिये हरिको कृत ।
पाव उहै प्रभुके पथ धारै ॥
सीस उहै करि स्याम-समर्पण ॥
सुंदर यूं सब-कारज सारै ॥ ८ ॥
सोवत सोवत सोइ गयो सठ ।

रोवत रोवत कै बेर रोयो ॥
गोवत गोवत गोइ धऱ्यो धन ।
खोवत खोवत तैं सब खोयो ॥
जोवत जोवत बीत गये दिन ।
बोवत बोवत तैं विष बोयो ॥
सुंदर सुंदर राम भज्यो नहिं ।
ढोवत ढोवत बोजहि ढोयो ॥ ९ ॥

देखत देखत देखत मारग ।
बूझत बूझत बूझत आयो ।
सूझत सूझत सूझ परी सब ।
गावत गावत गोविँद गायो ॥
साधत साधत साध भयो पुनि ।
तावत तावत कंचन तायो ॥
जागत जागत जागि पऱ्यो जब ।

८ संग्रह ॥ ९ भार वहना ॥

सुंदर सुंदर सुंदर पायो ॥ १० ॥

॥ इति शब्दसारको अंग संपूर्ण ॥ १८ ॥

अथ भक्तिज्ञानमिश्रितको अंग ॥१९॥

॥ इंदव छंद ॥

बैठत रामहि ऊठत रामहि ।
बोलत रामहि राम रह्यो है ॥
खावत रामहि पीवत रामहि ।
धामहि रामहि राम गह्यो है ॥
जागत रामहि सोवत रामहि ।
जोवत रामहि राम लह्यो है ॥
देतहु रामहि लेतहु रामहि ।
सुंदर रामहि राम रह्यो हैं ॥ १ ॥
श्रोत्रहु रामहि नेत्रहु रामहि ।
वक्तृहु रामहि रामहि गाजै ॥

शीसहु रामहि हाथहु रामहि ।
पावहु रामहि रामहि छाजै ॥
पेटहु रामहि पीठहु रामहि ।
रोमहु रामहि रामहि बाजै ॥
अंतर राम निरंतर रामहि ।
सुंदर रामहि राम विराजै ॥ २ ॥
भूमिहु रामहि आपहु रामहि ।
तेजहु रामहि वायुहि रामे ॥
व्योमहु रामहि चंदहु रामहि ।
सूरहु रामहि शीतहि घामे ॥
आदिहु रामहि अंतहु रामहि ।
मध्यहु रामहि पुर्ष रु बामे ॥
आजहु रामहि कालहु रामहि ।
सुंदर रामहि रामहि थामे ॥ ३ ॥
देखहु राम अदेखहु रामहि ।

---

१ स्त्री.

लेखहु राम अलेखहु रामे ॥
एकहु राम अनेकहु रामहि ।
शेषहु राम अशेषहु तामे ॥
मौनहु राम अमौनहु रामहि ।
गौनहु रामहि ठाम-कुठामे ॥
बाहिर रामहि भीतर रामहि ।
सुंदर रामहि है जग जामे ॥ ४ ॥

दूरहु राम निजीकहु रामहि ।
देशहु राम प्रदेशहु रामे ॥
पूरब रामहि पच्छिम रामहि ।
दच्छिन रामहि उत्तर धामे ॥
आगेंहु रामहि पीछेंहु रामहि ।
व्यापक रामहि है बन ग्रामे ॥
सुंदर राम दशों दिश पूरण ।
स्वर्गहु राम पतालहु तामें ॥ ५ ॥

आपहु राम उपावत रामहि ।

भंजन राम सँवारन वामे ॥
दृष्टहु राम अदृष्टहु रामहि ।
इष्टहु राम करै सब कामे ॥
पूर्णहु राम अपूर्णहु रामहि ।
रक्त न पीत न श्वेत न स्यामे ॥
शून्यहु राम अशून्यहु रामहि ।
सुंदर रामहि नाम अनामे ॥६॥

॥ इतिभक्तिज्ञानमिश्रितको अंग संपूर्ण ॥ १९ ॥

——०——

अथ विपर्ययको अंग ॥ २० ॥

॥ सवैया (इकतीस मात्रात्मक) ॥

१ श्रवणहु देखि सुनै पुनि नैनहु ।
जिव्हा सुँघै नाशिका बोल ॥

श्रोत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरणकी वृत्ति । ता वृत्तिरूप श्रवण करि गुरुके मुखसें महावाक्यके

अर्थकूं ग्रहण करिके। अंतर्मुखतातें देखे । कहिये प्रत्यक्-अभिन्न-ब्रह्मस्वरूपकूं साक्षात् अपरोक्ष जानै॥ नेत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरणकी वृत्ति। ता वृत्तिरूप चक्षु करि सुनै । कहिये ब्रह्म औ आत्माकी एकतारूप महावाक्यके अर्थकूं ग्रहण करै ॥

मधुरादिक षट्रसनतें विलक्षण स्वरूपानंदरूप रसकूं आस्वादन करनेवाली जो अंतःकरणकी वृत्ति। ता वृत्तिरूप जिह्वा करि।अंतःकरणरूप कमलकी निर्वासनिकता सुगंधिकूं सूंघै । कहिये अनुभव करै ॥ उपनिषद्रूप पुष्पनके ज्ञानरूप मकरंदकूं ग्रहण करनेवाली अंतःकरणकी वृत्तिरूप नाशिका करि बोलै । कहिये मनन करनेके वास्ते पूर्व अभ्यास किये शास्त्रनके शब्दनका सूक्ष्म उच्चारण करै ॥ अथवा निदिध्यासन करनेके वास्ते "सोहं । ॐ। ब्रह्मैवाहं । असंगोहं । निष्प्रपंचोहं" इत्यादिक शब्दनका मनमें सूक्ष्मजप करै ॥

२ गुदा खाय इंद्रिय जल पीवै ।
बिनही हाथ सुमेरहि तोल ॥

बाधितानुवृत्तियुक्त रागद्वेषादि वासनारूप **गुदा** करि **खाय** । कहिये प्रारब्धकर्मतें मिलेहुवे अनुकूल औ प्रतिकूल सुख औ दुःखका अनुभव करै ॥ भोक्ता । भोग्य । औ भोगकूं मिथ्या जानिके जो कामनाका जय है । तिसरूप लिंग **इंद्रिय** करि "मैं अकर्त्ता । अभोक्ता । औ आत्मा हूं" इस निश्चयरूप **जलकूं पीवै ॥**

स्थूल औ सूक्ष्म-प्रपंच (कार्य)रूप शिखरवाला मूलाज्ञानरूप जो **सुमेर** पर्वत है । ताकूं **हाथ बिनहीं तोलै** । कहिये स्वरूपसें विवेचन करिके मिथ्या जानै ॥

३ ऊंचे पाव मुंडि नीचेकूं ।
तीनलोकमें विचरत डोल ॥

"मैं सर्वत्र व्यापक हूं" ऐसा जो अंतःकरण-

का निश्चय। औ वैराग्यविवेकादिकरि ब्रह्मरूप प्रदेशमे गमनरूप जो निश्चय है। तिन दोनूं निश्चयरूप पगनकूं ऊंचे। कहिये मुख्य राखिके। ज्ञान हुवे पीछे बी व्यवहारकालमें बाधित हुवा जो अहंकार फुरता है। सो सर्वसंघातमें मुख्य होनेतें तिसरूप मुंडी नीचेकूं। कहिये अमुख्य राखिके। तीनलोकमें विचरत डोल। कहिये जहां जहां गति होवे तहां तहां स्वच्छंद हुवा विचरै॥

४ सुंदरदास कहै सुन ज्ञानी।
भली भांति या अर्थहि खोल ॥१॥

सुंदरदासजी कहै हैं की हे ज्ञानी! इस सवैयेके अर्थकूं सुनि। भलेप्रकार करि खोलो॥ जैसे किसी अनेकपदार्थनसहित ग्रहके द्वारकूं ताला लगा होवे। ताकूं खोलेतें वे सर्वपदार्थ प्रगट दृष्टिमें आवैं हैं। तैसे याके खोलनेसे मोक्षोपयोगी पदार्थ दृष्ट आवेंगे॥ यामें यह रहस्य है:—इस

पद्यमें मुक्तपुरुषके लक्षण कहे हैं । सोही मुमुक्षुके साधन हैं । यातें तिस अर्थकूं प्रगट करनेतें मुक्तकूं प्रसन्नता । औ मुमुक्षुकूं उक्तसाधनोंकी प्राप्तितें परमलाभ होवैगा ॥ १ ॥

१ अंधा तीनलोककूं देखै ।
बैरा सुनै बहुतविधि नाद ॥

"मैं आत्मा हूं" इस निश्चयकरि अहंता औ ममतारूप दोनेत्रनके संबंधतें रहित ज्ञानीरूप जो अंधा । सो जागृत् । स्वप्न । औ सुषुप्तिरूप तीनलोककूं ब्रह्मचेतनरूपकरि प्रकाशे । अथवा लोकशब्दका अर्थ प्रकाश होनेतें बाह्य सूर्यादिकप्रकाशकूं औ मध्य नेत्रादिकइंद्रियनके प्रकाशकूं । औ आंतर बुद्धिरूप प्रकाशकूं । अंतःकरणवृत्तिउपहित साक्षिरूप करि देखै । कहिये प्रकाशै है ॥

श्रोत्रेंद्रियके संबंधतें रहित जो ज्ञानीरूप बैरा ।

सो लौकिक औ शास्त्रीय भेदकरि नानाप्रकारके शब्दनका। बहुत विधि नाद सुने है।

२ नकटा बास कमलकी लेवैं।
गुंगा करै बहूत संवाद ॥

नासिकाइंद्रियके संबंधतें रहित ज्ञानीरूप जो नकटा सो कमलादिक अनेकपदार्थनकी बास लेवै है ॥

वाकूइंद्रियके संब्रंधतें रहित ज्ञानीरूप जो गुंगा। सो नानाप्रकारके लौकिक औ वैदिकशब्दनकरि बहुत संवाद करै है ॥

३ ठुंठा पकरि उठावै पर्वत।
पंगू करै निरत अल्हाद ॥

हस्तइंद्रियके संबंधतें रहित ज्ञानीरूप जो ठुंठा सो महान्कृत्यरूप पर्वत पकरिके उठावै। कहिये आरंभ करिके ताकी समाप्ति करै है ॥

पादेंद्रियके संबंधतें रहित ज्ञानीरूप जो पंगू।

सो यथाइच्छा पृथिवीपर निरत । कहिये गमन करि अति आल्हादकूं पावै ॥

४ जो को याको अर्थ विचारै ॥
सुंदर सोई पावै स्वाद ॥ २ ॥

सुंदरदासजी कहे हैं की । या सवैयेके अर्थकूं जो कोई मुमुक्षुपुरुष विचारै । सोई जीवन्मुक्तिरूप स्वाद पावै । कहिये श्रेष्ठसुखका अनुभव करै॥२॥

१ कुंजरकूं कीरी गिलि बैठी ।
सिंहहि खाय अघानो स्याल ॥

अनंतवासनाकरि युक्त मनरूप जो हस्ति । ताकूं सूक्ष्मविचारवाली अंतर्मुखबुद्धिरूप कीरी गिली बेठी । कहिये स्थिर भई ॥

अहंकारादि जडसंघातका औ आत्माका परस्पर अतिप्रबलअध्यासरूप जो सिंह । ताकूं प्रथम अविवेककरि जीवभाव पाया हुवा आत्मारूप स्याल । खाय अघानो । कहिये गुरुकी कृपासें

अपनेमें उक्तअध्यासका लयकरिके परमानंदकूं पाया ॥

२ मछरी अग्निमांहि सुख पायो ।
जळमें बहुत हुती बेहाळ ॥

जिज्ञासावाली साभासबुद्धिरूप जो मछरी। तानें संचितकर्मरूप तृणके दाहक ब्रह्मज्ञानरूप अ-ग्निमांहि सुख पायो। कहिये निरतिशयानंदकूं पाया। सो प्रथम अज्ञानकालमें संसाररूपी जळमें बहुत बेहाळ हूती। कहिये दुःखी थी ॥

३ पंगु चढ्यो पर्वतके ऊपर ।
मृतकहि देखि डरानो काल ॥

स्वर्गादिकलोकमें औ इसलोकमें गमन औ आगमनकी इच्छारूप चरणनतें। रहित तीव्रवै-राग्यवान् मुमुक्षुरूप जो पंगू। सो प्रपंचतें पर चि-दाकाशरूप पर्वतके ऊपर चढ्यो। कहिये स्थि-त भयो ॥

देहेंद्रियादिसंघातके अभिमानतें रहित । दग्ध-पटवत् देहाभिमानतें सहित । औ अध्यासकी नि-वृत्तिवाले जीवन्मुक्तरूप जो मृतक। ताकूं देखिके काल डरानो । कहिये भयभीत हुवा ॥ इहां श्रुति प्रमाण हैः—“परमात्माके भयकरि मृत्यु भी दौ-डता है” औ ज्ञानी ब्रह्मरूप होनेतें कालका भी काल है । यातें कालकूं ज्ञानीका भय संभवे है ॥

४ जो को अनुभवि होय सु जानै ।
सुंदर ऐसा उलटा ख्याल ॥ ३ ॥

सुंदरदासजी कहे हैं की। जो कोई अनुभ-वी । कहिये ज्ञानी होय सु यह अज्ञानीजनोंकी दृष्टि करि विपरीत औ आश्चर्यकारक ऐसा उल-टा ख्याल । कहिये विषय जानै ॥ ३ ॥

१ बूंदहिमांहि समुद्र समानो ।
राईमांहि समानो मेर ॥

भ्रांतिकरि भिन्नभासमान जीवरूपी बूंदहि-

मांहि । ब्रह्मरूप **समुद्र समानो** कहिये एकताकूं प्राप्त भयो ॥

"मैं ब्रह्म हूं" ऐसी सूक्ष्मवृत्तिरूप **राईमांहि** । शरीररूप शिखरसहित अज्ञानरूप **मेरु** (पर्वत) **समानो** । कहिये मिथ्यापनेके निश्चयरूप अथवा तीनकालमें अभावनिश्चयरूप बाधको विषय भयो ॥

२ पानीमांहि तुंबिका डूबी ।
पाहन तरत न लागी बेर ॥

संसारसमुद्रके चौराशीलक्षयोनिजन्य दुःखरूप **पानीमांहि** देहादिअभिमानवाली अज्ञानीकी बुद्धि-रूप **तुंबिका** । जन्मादिकके प्रवाहमें **डूबी** । कहिये ड्रब गई ॥

शुद्धस्वरूपके अहंकाररूप जो **पाहन** । कहिये पथ्थर है । ताका "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा आकार है। औ अज्ञानीकूं अतिभारी लगे है । सो पूर्वोक्त

जलके ऊपर सालिग्रामकी न्याई तरत बेर न लागी। कहिये जा क्षणमें वह शुद्धअहंकार उदय हुवा। तिसी क्षणमें जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति भई॥

३ तीनलोकमें भया तमासा।
सूरज कियो सकल अंधेर॥

"अहं ब्रह्मास्मि" निश्चयरूप तत्त्वज्ञाननें सर्वजगतका अभाव किया। ताका **तीनलोकमें तमासा** कहिये आश्चर्य **भया**। यामें हेतुयुक्त रहस्य कहै हैं:—जब ज्ञानरूप **सूरज** उदय होवै है। तब कारणसहित सर्वजगत (जो अज्ञानीकी दृष्टिमें प्रत्यक्ष सत्य भासै है। औ ज्ञानीकी दृष्टिमें असत्य भासै है। तिस)का अभाव होवै है। सोई **सकल अंधेरा कियो** ऐसे सिद्ध होवै है। इहां श्रीमद्भगवद्गीताका प्रमाण कहै हैः—"जो सर्वभूतनकी रात्रिरूप ब्रह्म है। तामें ज्ञानी जागै है। औ जिस जगतमें भूत(प्राणी) जागते हैं। सो ज्ञा-

नीकी रात्रि है ॥" ऐसे दूसरेअध्यायमें कह्या है ॥

४ मूरख होय सु अर्थहि पावै ।
सुंदर कहै शब्दमें फेर ॥ ४ ॥

ज्ञानी संसारतें विमुख होवै है । यातें तिस मार्गमें सो मूरख कहिये है । ऐसा जो होय सु उक्त अर्थकूं पावै ॥ सुंदरदासजी कहै हैं की ऐसे शब्दमें फेर है । अर्थमें नहीं ॥ ४ ॥

१ मछरी बगलाकूं गहि खायो ।
मूषा खायो कारो-साप ॥

निष्कामउपासनायुक्त बुद्धिरूप मछरीनें अपनेसें विरोधी चित्तके विक्षेपनामक दोषरूप बगलाकूं अभ्यासके बलतें गहि खायो कहिये नाश कियो ॥

पापरूप वस्त्रनकूं कतरनेवाला शुद्धमनरूप जो मूषा है । तिसनें अपनेसें विरोधी चित्तके मलना-

मक दोषरूप कारो—साप खायो ॥ कहिये नाश कियो ॥

२ सूवे पकरि बिलारी खाई ।
ताके मुवे गयो संताप ॥

जाकी विवेकरूप चंचू है । शम औ दमरूप दोपाद हैं । उपरति औ तितिक्षारूप दोपक्ष हैं । श्रद्धा औ समाधानरूप दोनेत्र हैं । वैराग्यरूप पेट है । औ मुमुक्षुतारूप पुच्छ है । ऐसे अंतःकरणरूप सूवेनें इसलोक औ परलोककी इच्छारूप बिलारी पकरि खाई । कहिये निवृत्ति करी । ताके मुवे संताप गयो कहिये तिस इच्छाके नाश हुवे । ज्ञानके प्रतिबंधक संसारके क्लेशकी निवृत्ति भई ॥

३ बेटी अपनी मैया खाई ।
बेटे अपनो खायो बाप ॥

अंतःकरणकी वृत्तिरूप परिणामकूं प्राप्त भई जो अविद्या । तिसकरि ब्रह्मविद्याकी उत्पत्ति होवै

है। ऐसे ब्रह्मविद्याकी माता अविद्या औ पुत्री विद्या सिद्ध होवै है । तिस विद्यातें अविद्याका नाश होवै है । ऐसे अपनी मैया बेटी खाई ॥

ज्ञान हुवे पीछे इच्छानुसार निर्विकल्पअभ्यासकरि मनका निग्रह होवै है ॥ तदनंतर मनकी अनंतवासनाका क्षय होवै है । वासनाक्षयतें मनका नाश होवै है ॥ मनोनाश कहिये रजोगुण औ तमोगुणरहित मन होवै है । ऐसे वासनाक्षयरूप बेटे मनरूप अपनो बाप खायो ॥

४ सुंदर कहै सुनौ हो संतो ।
तिनकूं कोउ न लाग्यो पाप ॥ ५ ॥

सुंदरदासजी कहै हैं। हो संतो सुनो ! मछरीनें बगलाकूं खायो। मूसेनें कारोसाप खायो। सूवेनें बिलारी खाई । बेटीनें अपनी माता खाई। औ बेटेनें अपनो बाप खायो। तातें तिनकूं कोउ पाप न लाग्यो ॥ ५ ॥

१ देवमांहितें देवल प्रगट्यो ।
देवलमांही प्रगट्यो देव ॥

सर्वका अधिष्ठान औ कूटस्थआत्मारूप देव-मांहितें देहरूप देवल प्रगट्यो । कहिये साक्षीविषे स्वप्नकी न्यांई भ्रांतिसें प्रतीत भयो ॥

तिस देहरूप देवलमांहि सत्शास्त्र औ सद्गुरुके बोधतें (पूर्व अज्ञानकालमें जो प्रगट नहीं था सो) आत्मारूप देव प्रगट्यो । कहिये स्वस्वरूप-करि अपरोक्ष भयो ॥

२ शिष्य गुरुहि उपदेशन लाग्यो ।
राजा करै रंककी सेव ॥

पूर्व अविवेककालमें प्रबलमनरूप गुरुकी शिक्षाकूं माननेवाला साभासअंतःकरणसहित विशिष्टचेतनरूप जो जीव है ॥ सो जीवरूप शिष्य विवेककालमें ब्रह्मविद्याकूं पायके । तिस मनः-

रूप गुरुहि उपदेशन लाग्यो ॥ कहिये शिक्षा करिके सूधेमार्गमें प्रवृत्ति करावने लाग्यो ॥

पूर्व अज्ञानकालमें अपने अधिष्ठानकूटस्थकूं आप दबायके । अवस्थासहित तीनदेहरूप नगरीनका अभिमानरूप राज्यके करनेवाला जो अहंकाररूप राजा । सो जीवभावरूप कंगालताकूं पाया हुवा आत्मारूप रंककी । ज्ञानकालमें ब्रह्मभावकूं प्राप्त हुवा जो आत्मा । ताके वश हुवा "मैं देहादिक हूं" इस आकारकूं छोडिके "मैं ब्रह्म हूं" इस आकारकी धारणारूप सेव करै है ॥

३ वंध्यापुत्र पंगु इक जायो ।
ताकूं घर खोवनकी टेव ॥

राजसी औ तामसी वृत्तिरूप आसुरीसंपदातें रहित सात्विकीबुद्धिरूप वंध्याने ज्ञानरूप इक पंगुपुत्र जायो कहिये बहिर्मुखवृत्तिरूप पगनतें रहित पुत्र उत्पन्न कियो ॥ सो कैसो है ? जाकी

उक्तबुद्धिरूप माता है । शुद्धअहंकाररूप पिता है । रागादि वृत्तिरूप भगिनिआं हैं । कर्मरूप भाई हैं। जगतरूप दादा है। औ अज्ञानरूप परदादा है। ताकूं इस संघातरूप घर खोवनकी टेव पडी है । अर्थात् ज्ञान हुवे पीछे और कुछ रहै नहीं ॥

४ सुंदर कहत सु पंडित ज्ञाता ।
जो को याको जानै भेव ॥ ६ ॥

सुंदरदासजी कहत हैं की । जो कोई याको भेव कहिये अभिप्राय जानै । सो पुरुष पंडित ज्ञाता कहिये श्रोत्रिय औ ब्रह्मनिष्ठ है ॥ ६ ॥

१ कमलमांहितें पानी उपज्यो ।
पानिमांहितें निपज्यों सूर ॥

च्यारिसाधनरूप पंखुरीसहित अंतःकरणरूप कमलमांहितें तत्त्वंपदके अर्थके शोधनरूप शुद्धतावाला । श्रवणरूप वेगवाला । मननरूप लहरीवाला । औ असंभावनासहित । विपरीतभावनारूप मल-

का नाश करनेवाला । निदिध्यासनरूप पानी उपज्यो । कहिये उत्पन्न भया ॥

तिस निदिध्यासनरूप पानिमांहितें स्वस्वरूपके अनुभवरूप सूर निपज्यो । कहिये सूर्य उत्पन्न भयो॥

२ सूरमांहि सीतलता उपजी ।
सीतलतामें सुख भरपूर ॥

तिस ज्ञानरूप सूर (सूर्य) मांहितें कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप शीतलता उपजी । औ शीतलतामें सुख भरपूर । कहिये तिसतें परिपूर्ण ब्रह्मानंदसुखकी प्राप्ति होवै है ॥

३ ता सुखको क्षय होय न कबहू ।
सदा एकरस निकट न दूर ॥

ता ब्रह्मरूप नित्य औ निरतिशयसुखको क्षय कबहु न होय । कहिये तिस सुखका किसी कालमें नाश नहीं होवै । काहेतें यह ब्रह्मसुख सदा एकरस है । औ सर्वका अपना आप है । तातें

निकट कहिये नजदीक औ न दूर। कहिये देशकालके अंतरायवाला नहीं है॥

४ सुंदर कहत सत्य यह यूंही।
यामैं रती न जानहु कूर॥ ७॥

सुंदरदासजी कहत हैं की यह वार्ता यूंही। कहिये उक्तरीतिसैं सत्य है। यामैं रती कहिये रंचमात्र भी कूर। कहिये असत्य न जानहु॥७॥

१ हंस चढ्यो ब्रह्माके ऊपर।
गरुड चढ्यो पुनि हरिकी पीठ॥

सात्विकी वृत्तिसहित मनरूप हंस। रजोगुणरूप ब्रह्माके ऊपर चढ्यो। कहिये ताकूं जीत लियो॥

पुनि निर्गुणब्रह्मके अभ्यासयुक्त मनरूप गरुड। सो सत्वगुणरूप हरि (विष्णु) की पीठ पर चढ्यो। कहिये तिसकूं जीति लियो। अर्थात् निर्गुणस्थितिकूं प्राप्त भयो॥

२ बैल चढ्यो है शिवके ऊपर ।
सो हम दीठो अपनी दीठ ॥

रजोगुणकी वृत्तिसहित मनरूप बैल । तमोगुणरूप शिवके ऊपर चढ्यो है । कहिये ताकूं जीत कियो है । सो हमने अपनी दीठ (दृष्टिकरि) दीठो (देख्यो) ॥ सो ऐसेः—रजोगुणकी वृद्धितें तमोगुणका पराजय होवै है । इत्यादिक अभ्यासकालमें हमने अनुभव किया है ॥

३ देव चढ्यो पातीके ऊपर ।
जर्व चढ्या दायनि पर नीठ ॥

स्वप्रकाश आत्मचैतन्यरूप देव । देहादिअनात्मसंघातरूप पाती (तुलसीपत्रादिक) के ऊपर चढ्यो ॥ याका अर्थ यह हैः—जैसे पूजनकालमें पत्रादिसामग्रीतें देवकी मूर्त्तिका आच्छादन होइ जावै है । तातें सो देखनेमें नही आवै है । पूजनसमाप्ति पीछे जब पत्रादिसामग्रीकूं उतारिके नीचे

पृथिवीपर डाल देवैं । तब देव स्पष्ट देखिये है ॥ तैसे अज्ञानकालमें देहादिअनात्मसंघातके अभिमानतें आत्माकूं आवरण होवै हैं । तातें सो अप्रसिद्ध रहै है । औ ज्ञानकालमें जब आवरण निवृत्त होई जावै है । तब स्वप्रकाशआत्माका स्वस्वरूपकरि आविर्भाव होवै है ॥

विवेकयुक्त मनरूप जर्ख (एकजातका जंगली जानवर होवे है जाकी पीठपर चढीके डाकिनी स्वारी करै है सो) विषयाकारवृत्तिरूप डायनि । कहिये डाकिनीके पर नीठ । कहिये अछीतरहसें चढ्यो । कहिये ज्ञानकी सहायतासें प्रबल होयके तिस वृत्तिकूं जीति लिनी ॥

४ सुंदर एक अचंबा हूवा ।
पानीमांही जरै अगीठ ॥ ८ ॥

सुंदरदासजी कहै हैं की एक अचंबा (आश्चर्य) हूवा । सो कहै हैं:-दैवीसंपत्तिके बलतें

शीतलअंतःकरणरूप पानीमांहि अगीठ। कहिये इसलोकके औ परलोकके शुभाशुभकर्मके फलकी दाहक औ ब्रह्मानंदकी प्रकाशक। ब्रह्मज्ञानरूप अग्नि जरै है। कहिये होवै है ॥ ८ ॥

१ कपरा धोबीकूं गहि धोवै।
माटी बपरी घडै कुँभार ॥

चिदाभाससहित मनरूप कपरा (वस्त्र) जो पूर्व अज्ञानदशामें पुण्यरूप धोबीसें पापरूप मल दूर करनेके वास्ते धोयाजाता था। सो अब ज्ञानदशामें आप धोबीकूं गहि (पकरिके) धोवै। कहिये "मैं अकर्ता हूं औ असंग हूं" ऐसे शुद्ध निश्चयतें पापपुण्यतें निर्लेप रहै है॥

आत्मोक सन्मुख भई अंतरवृत्तिबुद्धिरूप माटी। जो पूर्व अविद्याकालमें बाह्यवृत्तिमय मनरूप कुंभारके बस भई। तिसकरी अनात्माकार होनेरूप आ- वडाती थी। सो अब विद्यादशामें बपरी कहिं

स्वरूपाकार होनेरूप कार्यमें प्राप्त होयके मनरूप कुंभारकूं अनात्मपदार्थनसें विमुखकरि घडै है। कहिये अपनेमें अंतर्भाव करै है ॥

२ सूई बिचारी दर्जिहि मांवै ।
सोना तावै पकरि सुनार ॥

बुद्धिमें जो सूक्ष्मविचार होवै है। सो बुद्धिकी वृत्तिरूप परिमाणकूं पावै है। सो वृत्ति भी सूक्ष्म होवै है। यातें ताकूं सूई कही है ॥ सो बिचारी कहिये गरीबरी है। काहेतें जो जिसऔर इसकूं लेजावै उसऔर ये चली जावै है ॥ जैसे अज्ञानकालमें जब देहाभिमान होवै है। औ तिसकरि विषयनमें वासना होवै है। तब मानो तिसी धागेके बलकरि "मैं देह हूं औ मैं कर्त्ताभोक्तासंसारी जीव हू" इसी तरफ चली जावै है। तहां चलावनेवाला चिदाभाससहित अहंकार है। सोई मानो दर्जि है। तिसके वश होय रहे है ॥ सो ज्ञानकालमें

जब स्वरूपका साक्षात्कार होवे है । तब तिसके बलतें तिस चिदाभाससहित अहंकार (जीव) रूप दर्जिहि ब्रह्मसें मिलाय देवै है । सोई मानो सींवै है ।

बुद्धिउपहित जो साक्षीआत्मा है । सो स्वभावतेंही अतिशुद्ध है । तातें सोही मानो सोना है॥ सो पूर्व संसारदशामें अज्ञानके वशतें चिदाभासरूप सुनारके आधीन था । तिसके कर्तृत्व औ भोक्तृत्वादिक धर्म अपनेमैं आरोप करि लेताथा । त्रिविधतापयुक्त संसाररूप अग्निमें तपता था । औ अनेक दुःखनकूं सहता था । सो ज्ञानरूप अग्निमें पापपुण्य। सुखदुःख औ गमनआगमनरूप मलकूं जलावनेके वास्ते चिदाभासरूप सुनारकूं पकारि । कहिये अपनेमें कल्पित जानिके तावैं । कहिये शुद्धताके निश्चयतें अधिष्ठानरूप आपमें समावेश करै है ॥

३ लकरी बढईकूं गहि छीले।
खाल सु बैठी धमै लुहार ॥

भागत्यागलक्षणाकरि लक्ष्यका ज्ञान होवै है। सो लक्ष्य। शुद्धचेतनकूं कहे हैं ॥ तिसका विवेचन करनेवाली जो बुद्धि है। सोई मानौ लकरी है ॥ औ जो मायाकरि सर्वप्राणीनके अंतःकरणमें प्रेरणा करै है। औ तिनके कर्मानुसार फलभोग देवै है। ऐसा जो मायाउपाधिवाला ब्रह्मचेतन (ईश्वर) है। सोई मानौ बढई (सुतार) है। ताकूं गहि। कहिये कूटस्थआत्मासैं अभिन्ननिश्चय करिके छीलै। कहिये मिथ्यामायाउपाधितैं रहित करै है ॥

जो सर्वपदार्थमें ब्रह्मभावकरि निरंतरस्मरण होवै है। तिस (स्मरण)के प्रवाहतैं सर्ववृत्तिनका निरोध होवै है। ता (निरोध)कूं राजयोगमें प्राणायाम कहै हैं ॥ तिस (प्राणायाम) युक्त जो बुद्धि है। सोई मानौ खाल कहिये धमनी है। औ

उक्तप्राणायामके अभ्यासमें प्रवृत्ति करावनेवाला जो मन है । सोई मानौ लुहार है॥ तिस (लुहार)कूं सु कहिये वे खाल बैठी कहिये स्थित भई हुई धमै । कहिये वश करै है ॥

४ सुंदरदास कहै सो ज्ञानी ।
जो को याको करै विचार ॥ ९ ॥

सुंदरदासजी कहै है की। जो कोई या (विपर्ययकथनके सिद्धांतरूप अर्थ)को यथार्थ विचार करै । कहिये विचारद्वारा निश्चय करै । सो पुरुष ज्ञानी है ॥ ९ ॥

१ जा घरमांहि बहुतसुख पायो ।
ता घरमांहि बसै अब कौन ॥

अज्ञानकालमें इस शरीरविषे तादात्म्यअध्यास होवै है यातें यह (शरीर) सुखरूप भासै है । तातें तब सोई मानो ग्रह है । ऐसे जा घर (शरीर) मांही संसारसंबंधी बहुत-विषय-सुख पायो । ता

घरमांही विवेकयुक्त ज्ञान हुवे पीछे अब कौन बसै। कहिये तामें अब तादात्म्यअध्यास कोन करै? भाव यह हैः—जौलौं तादात्म्यअध्यास है तौलौं शरीरमें सुख भासै है। औ ज्ञान हुवे पीछे भासै नही॥

२ लागी सबै मिठाई खारी।
मीठो लग्यो एक वह लौन॥

इसलोकसंबंधी जो माला। चंदन। औ स्त्री-आदिकसुख है। औ परलोकसंबंधी जो अप्सरा औ अमृतपानादिसुख है। तिस (सुख) के भोगरूप मानो मिठाई है। सो भोगरूप (मिठाई) सबै विवेक औ वैराग्य करिके खारी लागी। कहिये विरस प्रतीत भई॥

जब जिज्ञासा होवै नहीं। तब ब्रह्मस्वरूप अप्रिय भासैं हैं। औ भावबिना रसवाला पदार्थ भी विरस प्रतीत होवैं है। यातें यद्यपि ब्रह्मस्वरूप मधुर-

रसवाला सर्वकूं प्रिय है तथापि अज्ञानकालमें क्षार-रसवाला कहिये अप्रिय भासै है। सोई मानौ लौन हैं। सो ज्ञानकालमें वह एकही ब्रह्मरूप लौन मीठो लग्यो। कहिये परमानंदरूप प्रतीत भयो॥

३ पर्वत उडै रूइ स्थिर बैठी।
ऐसो कोइक बाज्यो पौन॥

अज्ञानकालमें शरीरके विषे जो अहंकार होवै है। औ तिसकरि बहिर्मुख मन होवै हैं सो देह-अहंकार अथवा बहिर्मुखमनही मानौ पर्वत है। सो जिसकरि उडै कहिये निवृत्त होवे है। औ अज्ञानकालमें अभिमानतें रहित जो वृत्ति होवै है। अथवा जो अंतर्मुखवृत्ति होवै है सो वृत्तिही मानौ रूइ है। सो जिसकरि स्थिर बैठी। ऐसो कोइक पौन कहिये। आत्मज्ञानरूप पवन बाज्यो कहिये चलने लग्यो॥

४ सुंदर कहै न मानै कोई ।
तातें पकरी रहिये मौन ॥ १० ॥

सुंदरदासजी कहै हैं की। यह आश्चर्य करनेवाली बात कोई अज्ञानी । जन मानै नहीं ॥ तातें मौन पकरी रहिये । कहिये अनधिकारीके पास यह गोप्यअनुभव खोलिये नही ॥ १० ॥

१ रजनीमांहि दिवस हम देख्यो ।
दिवसमांहि देखी हम रात ।

अज्ञानकालमें परब्रह्मही मानो रात्रि है । काहेतें । जो अज्ञानी होवै है । सो कदै भी अपनेकूं ब्रह्मरूप मानै नहीं ॥ किंतु ब्रह्मतें भिन्न मानै है । औ जो कोई कहै की । "तूं आत्मा ब्रह्मरूप है" तो सो सुनिके ताकूं बडा भय लगै है । औ कहै है की । "मैं तौ कर्त्ताभोक्ता । सुखीदुखी । पापपुण्यवान जीव हूं । औ ईश्वरका दास हूं । मैं आत्मा हूं यह कैसे कह्या जाव ?" यही मानो

तिस रात्रिमें भय है। औ जो "मैं आत्मा ब्रह्म-रूप होवौं। तौ सो अपना स्वरूप मेरेकूं भासना चाहिये। सो तौ भासै नहीं है। तातें मैं आत्मा ब्रह्मरूप नहीं हूं" यही मानौ रात्रिमें आवरण है। ऐसी परब्रह्मरूप **रजनीमांहि** ज्ञानकालमें **हम दिवस देख्यो**। काहेतें ज्ञानी अपनेकूं ब्रह्मरूप मानै है॥ औ "अहं ब्रह्मास्मि" कहेतें कछु डरै नही। औ अपना शुद्धसच्चिदानंदरूप आत्मस्वरूप जैसा है तैसा देखै हैं। ऐसे तिस रात्रिकूं हम दिवस देख्यो है। कहिये जान्यो है॥

ज्ञानीकूं परब्रह्म जैसा है तैसा भासै है। तामें पूर्वोक्तभय अथवा आवरण कछु नहीं होवे है तातें सो परब्रह्मही मानो **दिवस** है। ता **मांहि** अज्ञानकालमें जगतरूप कार्यसहित अविद्या प्रतीत होती थी। तैसेही ज्ञानकालमें भी प्रतीत होवै है। परंतु इतना भेद है:—अज्ञानकालमें सत्यतापूर्वक

प्रतीत होतीथी। तैसे ज्ञानकालमें प्रतीत होवै नहीं॥ किंतु दग्धपटकी न्यांई बाधितानुवृत्तिकरि प्रतीत होवै है। ऐसे हम राम देखी है॥

२ तेल भऱ्यो संपूरणं तामें
दीपक जरै जरै नहिं बात ॥

देश। काल। औ वस्तुके परिच्छेदतें रहित जो ब्रह्म है। सो संपूर्णव्यापक है। यही मानों संपूरणतेल भऱ्यो है। तामें माया औ अविद्या उपहित औ साक्षीचेतन है। सोही मानो दीपक है। सो जरै है। कहिये तिस माया औ अविद्याके कार्यरूप कज्जलकूं प्रकाशै है। वे माया औ अविद्यास्वरूपसे जड औ परप्रकाश होनेतें सोही मानों बात कहिये बत्ती है। सो जरै नहिं। कहिये नाश होवै नहीं। काहेतें। सामान्यचेतन तिसका विरोधी नहीं है॥

३ पुरुष एक पानीमें प्रगटयो।

ता निगुराकी कैसी जात ॥

जब विक्षेपरहित शांत अंतःकरण होवै । है तब एकाग्रअंतरमुखवृत्ति होवे है । तिस वृत्तिका स्वरूपही मानो पानी है । ता **पानीमें एक** कहिये। सजातीय विजातीय औ स्वगतभेदरहित पुरुष जो सर्वशरीरनरूप पुरिनमें रहे है । औ अस्ति। भाति । प्रियरूप है । ऐसो ब्रह्मस्वरूप **प्रगट्यो** । कहिये जो पूर्व अज्ञानकृत आवरणतें ढंप्यो थो । सो सद्गुण औ सत्शास्त्रके अनुग्रहतें आविर्भावकूं पायो ॥ (अपरोक्षअनुभवको विषय भयो ॥)

उक्त परब्रह्मरूप जो पुरुष है ॥ ताकूंही इहां निगुरा कहे हैं । काहेतें। आप स्वतः जाननेवाला है । औ ज्ञानरूप है ॥ ताकूं गुरुकी अपेक्षा बनै नहीं ॥ अथवा जो सत्वादिकतीनगुणनतें वा रूपादिकचौवीसगुणनतें रहित है । तातें निर्गुण है ॥ **ता (निर्गुणरूप) निगुराकी कैसी जात** कहैं ?

कोई भी जात कही जावे नहीं । काहेतें । अनेकनके मांही जो एकधर्म रहै है । सो जाति कहिये है । जैसें सर्वब्राह्मणनके शरीरनमें एक ब्राह्मणत्व जाति है । औ जैसे सर्वघटनमें एक घटत्वजाति है । तिनकूं ब्राह्मणपना औ घटपना कहै हैं । सोही ब्राह्मणादिकनमांही जाति है । ताके सजातीय विजातीय औ स्वगत ऐसे तीनभेद हैं ॥ अथवा जैसै सत्वादिकतीनगुणनकी वा रूपादिकचौवीसगुणनकी गुणत्वजाति है । तैसें परब्रह्मकी कोई भी जाति नहीं है । जहां जातिं है । तहां द्वैतता सिद्ध होवै है ॥ "ब्रह्म तौ अद्वैत है" ऐसे श्रुति कहै है । यातें ब्रह्मकी कोई जाति कही जावे नहीं । तातें तिसकी केसी जात कहैं ?

४ सुंदर सोही लहै अर्थकूं ।
जो नित करै पराई तात ॥ ११ ॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की । जो मुमुक्षुपुरुष

नित कहिये निरंतर दीर्घकालपर्यंत पराई कहिये। सर्वतें पर श्रेष्ठब्रह्मस्वरूपकी तात करै। कहिये श्रवणादिअभ्यासद्वारा तत्पर होयके चिताकूं करै। अथवा अपने स्वरूपतें अन्य समष्टिव्यष्टिरूप स्थूल सूक्ष्म औ कारण प्रपंचकी सदा असतजडदुःखादिरूप चिताकूं करै। सोहि पुरुष ब्रह्म औ आत्माकी एकताके निश्चय (ज्ञान) रूप अर्थकूं लहै अथवा जन्ममरणादिबंधकी निवृत्तिरूप औ परमानंदकी प्राप्तिरूप अर्थ (मोक्ष) कूं लहै कहिये प्राप्त होवै ॥ ११ ॥

१ उनयो मेघ बढ्यो चहुं दिशिमें।
वर्षन् लग्यो अखंडितधार ॥

ब्रह्मानंदसमुद्रमें मग्न भया हुवा जगतमें विचरनेवाला जो आत्मज्ञानी है। ताकूंही इहां मेघ कह्या है। सो आनंदरूप जलकरि उनयो (उमग्यो) कहिये भर्यो है। जाकी स्वरूपाकारतारूप

बादलकी घटा छाई रही है औ जो चैतन्यरूप आकाशमें शरीररूप पर्वतकी शिखरपर स्थित है। सो परिपूर्णब्रह्मभावरूप चहूंदिशिमें बढ्यो कहिये रमने लाग्यो। औ तेलकी धाराकी न्यांई निरंतर प्रवाहवाली जो अखंडित आनंदयुक्त अनेकवृत्ति है। सोई मानो जलकी अनेक धार हैं। तिनकरि वर्षन् लग्यो। कहिये व्यापकब्रह्मको अनुभव करने लग्यो ॥

२ बूड्यो मेरु नदी सब सूकी।
डर लाग्यो निशिदिन एक तार ॥

अहंकारादि जो जगत है। ताकूं इहां मेरु कहै है। सो बूड्यो। कहिये तीनकालमें अभावनिश्चयतावृत्तिरूप बाधको विषय भयो ॥ औ बाह्य बाधितविषयाकार होनेवाली जो मनकी अनेकवृत्तिआं है। सोई मानो सब नदी है। सो सूकी। कहिये विषयनमें अभिनिवेशभूत वासनारूप जलतें

रहित भई ॥ ताको निशादिन (रात्रदिवस) तिन नदीनके उर कहिये बीचमें । प्रथमवृत्तिके अंत । औ द्वितीयवृत्तिके आदिक्षणकी मध्यावस्थामें केवलस्वरूपाकार होनेरूप इक तार (प्रवाह) लाग्यो ॥

३ कांसा पर्‍यो बीजळी ऊपर ।
कीनो सब कुटुंब संहार ॥

ज्ञान हुवे पीछे जो परवैराग्य होवै है। सोई मानौ कांसा है। सो सूक्ष्म राजसी औ तामसी स्वभाववाली चंचलबुद्धिरूप बिजली ऊपर पर्‍यो॥ तिसने रागद्वेषक्रोधादि आसुरी संपदारूप सब कुटुंबको संहार कीनो। कहिये नाश कियो॥

४ सुंदर अर्थ अनूपम याको ।
पंडित होय सु करै विचार ॥ १२ ॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की । या (कथन) को जो अर्थ है । सो अनुपम कहिये सर्वोत्कृष्ट होनेतें

उपमारहित है । तातें जो पुरुष पंडित कहिये स्वरूपाकार अंतःकरणवाला ज्ञानी होय सु याके अर्थका बिचार करै । औरपुरुष विचार करी शकै नही ॥ १२ ॥

१ वाडीमांही माळी निपज्यो ।
हालीमांही निपज्यो षेत ॥

यह जो सृष्टि है । सोई मानो वाडी है ता वाडीमांही चेतनपरमात्मारूप माळी निपज्यो है कहिये अज्ञानदशाके पक्षमें जीवभावकूं ग्रहण करिके जगतमें अपने जन्मादिकनकूं मानि रह्यो है । अथवा सो चैतनपरमात्माही । ज्ञानकालमें विचार-द्वारा सर्व जगतमें परिपूर्ण प्रतीत भयो ॥

अज्ञानदशाके पक्षमें मनरूप काष्ठके हलकरि शुभाशुभकर्मरूप बीज बोवनेके वास्ते प्रवृत्तिरूप षेतीकूं करनेवाला जो क्षेत्रज्ञसाक्षीचेतन है । सोई मानो हलका खेडनेवाला हाली (कृषीकार) है ।

तामांही शरीररूप षेत (क्षेत्र) निगज्यो। कहिये नानाप्रकारके अनुकूल औ प्रतिकूल जो विषय हैं। सो सब मानौ तामें अन्नके वृक्ष हैं। तिसतें जो सुख दुःखरूप फल उत्पन्न होवै हैं। सोई मांनौ अनाज के कन हैं। ऐसा जो क्षेत्र हैं। सो "मैं कर्त्ता भोक्ता हूं" इत्यांदिभ्रमकरि उत्पन्न भयो ॥ अथवा ज्ञानदशाके पक्षमें अपनी उपाधिभूत जो मन है। सोई मानौ हल है। तिसतेंही प्रवृत्ति औ निवृत्ति रूप खेती होवै है। तिसका प्रकाशक जो साक्षी आत्मा है। सोई मानौ कृषीकार है॥ तामें क्षेत्रकी न्यांई सर्वजगतका आधार जों परमेश्वर है। सो अभिन्न होयके प्रतीत भयो ॥

२ हंसहि उलटि श्याम रंग लायो।
भ्रमर उलटिकरि हूवो श्वेत ॥

चिदाभासरूप जो जीव है सोई मानौ हंसहि है॥ काहेतें हंसपक्षीका श्वेतरंग होवै है। तैसे इहां

जो विषयमें आसक्ति है। अथवा जो जगतके व्यवहारकी प्रवृत्तिमें उत्साह है। सो यद्यपि विवेकदृष्टिसें सर्वथा त्याज्य है। तथापि अविवेकदृष्टिसें नीके लगै है। तातें सोई मांनौ जीवरूप हंसका श्वेतरंग है॥ सो उलटिके कहिये विषयनमें वैराग्य औ जगतके व्यवहारकी प्रवृत्तिमें उपरति जो अज्ञानीकी दृष्टिसें श्यामरंग ह। सो लायो। कहिये। वैराग्य औ उपरतियुक्त कियो॥

मनरूप जो भ्रमर है। सो उलटिकरि कहिये निष्कामकर्म औ उपासनाद्वारा मलविक्षेपदोषरूप श्यामताकूं छोडिकरि शुद्धता औ एकाग्रतारूप श्वेत हुवो

३ शशियर उलटि राहुकुं ग्रास्यो।
सूर उलटि करि ग्रास्यो केत॥

ज्ञानके प्रकाशयुक्त जो मन है। सोई मानौं

शशियर (चंद्र) है ॥ तिसनैं अज्ञानकृत आवरणरूप राहुकूं उलटि ग्रास्यो कहिये नाश कियो॥

ज्ञानरूपही मानौ सूर (सूर्य) है। तिसने उलटि कहिये प्रतिदिन घटिका दोघटिका वा यातैं भी अधिककाल ब्रह्मका जो नियमसैं अभ्यास होवै है। तिसतैं उत्तमभूमिकामें स्थितिकूं पायकरि। दुष्ट-दुःखकी हेतु जो अज्ञानकृत विक्षेपकी प्रतीति होवै है। सोई मानौ केत (केतु) है। ताकूं ग्रास्यो कहिये दूर कियो ॥

४ सुंदर सुगराकुं तजि भाग्यो।
निगुरासैंती बांध्यो हेत ॥ १३ ॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की। जो सगुणवस्तु है। सोई इहां सुगरा है। ताकूं पूर्वोक्त ज्ञानी तजिके भाग्यो। कहिये दूर रह्यो। औ जो निर्गुणवस्तु है। सोई मानौ निगुरा है। ता सैंती तानैं हेत बांध्यो कहिये ऐक्यभावरूप प्रेम कियो ॥ १३ ॥

१ अग्नि मथन करि लकरी काढी ।
सो वह लकरि प्राण आधार ॥

अध्यात्म । अधिभूत । औ अधिदैव । यह तीन जो ताप हैं । तिनकरि सर्वअज्ञजीव जलैं हैं । सो जलावनेवाली यह देहादिसृष्टि है । सोई मानौ अग्नि है । ताकूं मथन कहिये " यह सर्वजगत मिथ्या है " इत्यादि निश्चयतें । विवेचन करि लकरी काढी । कहिये जैसे अग्निका आधार काष्ट है । तैसे इससृष्टिरूप अग्निका आधार संवित् (चेतन) है । सोई मानौ लकरी है । ताकूं यथार्थ जानी । सोई मानौ काढी है ॥ सो वह लकरी प्राणका आधार है । कहिये प्राणादिसर्वप्रपंचका अधिष्ठान है ॥

२ पानी मथि करि घीउ निकास्यो ।
सो घृत खायो बारंबार ॥

यह असार नामरूपात्मक जो जगत है । सोई

मानौ जल है । ताकूं मथनकरि कहिये विवेचन करि अस्ति भाति औ प्रियरूप ब्रह्मानंदही मानौ घीउ निकास्यो ॥ अथवा मनरूप जो जल है । ताकूं मथन करि । कहिये साधनचतुष्टयसंपन्नकरि । ब्रह्मानंदरूप मोक्षही मानौ घीउ निकास्यो ॥ अथवा सत्‌शास्त्ररूपही मानौ पानी है । ताकूं मथिकरि कहिये विचारकरि ज्ञानरूप माखनद्वारा ब्रह्मानंदरूप घीउ निकास्यो । कहिये प्रगट कियो सो घृत वारंवार खायो । कहिये विचारदशामें अपनो आप जानिके अनुभव कियो ॥

३ दूध दहीकी इच्छा भागी ।
जाकूं मथत सकलसंसार ॥

जाकूं सकलसंसार (संसारीजन) मथत है । कहिये चाहकरि खोजते हैं । ऐसे जो परलोकके भोग हैं । सोई मानौ दूध है । औ इसलोकके

जो भोग हैं। सोई मानौ दही है। तिनकी इच्छा भागी। कहिये भंग हो गई ॥

४ सुंदर अब तो भये सुखारे।
चिंता रही न एक लगार ॥ १४ ॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की अब तो हम सुखारे कहिये परमआनंदित भये। औ एक लगार कहिये किंचित् भी चिंता न रही। अर्थात् सर्व जन्मादिअनर्थतें छूटे. ॥ १४ ॥

१ पात्रमांहि झोली गहि राखै।
योगी भिक्षा मागन जाइ ॥

साभासअंतःकरणसहित आत्मरूप जो ज्ञानी-जीव है। सोई मानौ योगी है ॥ औ हृदयरूप पात्र है। ता मांहि बुद्धिरूप झोलीकूं गहि। कहिये एकाग्रकरिके राखै। कहिये अंतर्मुख करै॥ औ निजानंदका जो आविर्भाव है। सोई मानौ

भिक्षा है । सो विचाररूप पगनकरि मागन जाइ । कहिये स्वरूपाकार होवै है ॥

२ जागै जगत सोवही गोरख ।
ऐसा शब्द सुनावै आइ ॥

अनंतसंसारीजीवनका जो समूह हैं । ताकू इहां जगत कहिये है। सो जागै। कहिये कछुक कर्तव्य मानिके तामें प्रवृत्ति करैं हैं॥ औ गो कहिये इंद्रिय हैं। ताकूं साक्षिताकरि रख । कहिये प्रकाशनेवाला जो आत्मस्वरूप है । ताकूं इहां गोरख कहैं हैं । सो सोवेही कहिये सर्वकर्तव्यरहित असंगब्रह्मरूप होनेतें स्वमहिमामें ज्यूंका त्यूं विराजै है ॥ औ जो शब्दानुविद्धसविकल्पसमाधि है । तामें आइके "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा शब्द सुनावै है। कहिये स्वरुपमें स्थिति करनेके वास्ते बहिर्मुखनकूं तिस वाक्यार्थका अभ्यास करावै है ॥

३ भिक्षा फिरै बहुत गुरु ताकूं ।
सो वही भिक्षा चेले खाइ ॥

त्रिपुटीमानरहित अखंडब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्तिका जो स्थिति (निर्विकल्पसमाधि) है । सो इहां भिक्षा कही है । ताकूं कहिये तो वृत्तिकी स्थितिके अर्थ पूर्वोक्त ज्ञानीरूप गुरु बहुत फिरै है । कहिये तिसके अभ्यासकी प्रबलतापूर्वक पुनः-पुनः प्रवर्त्तै है । सो वह भिक्षा मनरुप चेलेने खाइ ॥ सो प्रकार यह हैः—जब मनकी वृत्ति स्थिरतामें लगै है । तब सो एकाग्र होवै है ॥ औ ब्रह्मानंदअनुभवक्षणमें तिस वृत्तिकूं अपनेमें लय करि लेवै है ॥ भाव यह हैः—निर्विकल्पसमाधिकालमें वृत्तिकी प्रतीति होवै नहीं ॥

४ सुंदर योगी युग युग जीवै ।
ता अवधूतकि दूर बलाइ ॥ १९ ॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की ऐसा जो योगी है।

सो जीवभावकूं छोडिके अमरआत्मारूप होनेते युग युग कहिये तीनूंकालमें जीव है। कहिये अविनाशीब्रह्मरुपसें अवस्थित होवै है ॥ औ ता ब्रह्मभूत अवधूत योगीकी बलाइ। कहिये जन्मादिअनर्थरूप आधिव्याधि दूर कहिये निवृत्त भई है ॥ १९ ॥

१ परधन हरै करै पर निंदा।
परतियकूं राखै घरमांहि ॥

पर कहिये जो संतमहात्मापुरुष हैं। तिनके ज्ञान वैराग्यादिकशुभगुणरूप धनकूं हरै। कहिये ग्रहण करिके अपने चित्तरूप भंडारमें राखै।

पर कहिये जो अहंकारादि जगतरूप अनर्थ हैं। तिनकी निंदा करै। कहिये तिनके असत्। जड। औ दुःखतादिकस्वरुपका कथन करै।

पर कहिये जो सत् पुरुष हैं। तिनकी ज्ञानयुक्त जो श्रेष्ठ बुद्धि है। अथवा जो ब्रह्माकारबुद्धि

है। सोई मानो तिन (सत्पुरुषन)की तिय (स्त्री) है। ताकूं हृदयरुप घरमांहि राखै। कहिये स्थित करै ॥

२ मांस खाय मदिरा पुनि पीवै।
ताहि मुक्तिको संशय नाहिं ॥

जैसे शरीरमें मांस संपूर्ण रहे है। तैसे ब्रह्म सर्वात्मा। औ सर्वत्रपरिपूर्ण है। तिस स्वरुपका जो आनंद है। सोई मानौ मांस है ताकूं खाय कहिये अनुभव करै ॥

परिपूर्णस्वरुपानंदकूं सहायता करनेवाले जो ज्ञानविचारादिक हैं। ताकूंही इहां मदिरा कहें हैं। सो पुनि कहिये फिरि पीवै। कहिये स्मरण करै। जाके अमलसें मदिरामदांधकी न्यांई देहकी भी स्मृति रहै नही ॥

ऐसे उक्त परधन जो हरै है। परनिंदा करै है। परकी स्त्रीकूं घरमें राखै है। मांस खावै है। औ

मंदिरा पीवै है। ताहि मुक्तिको संशय नाहिं। कहिये सो मोक्षरुपही है ॥

३ अकर्म गहै कर्म सब त्यागै।
ताकी संगत पाप नसांहि ॥

देहेंद्रियादिकार लौकिक आ वैदिककर्म करै। परंतु "मैं आत्मा अकर्ता हूं" इस निश्चयरुप **अकर्मता गहै** कहिये ग्रहण करै है ॥ अथवा जो अक्रियब्रह्म है। ताकूं **गहै** कहिये "सोई मैं हूं" ऐसे निश्चयरुप अकर्मता ग्रहण करै है ॥ औ "मैं पापी हूं। पुण्यवान् हूं" इसप्रकारके कर्मके अभिमानकूं छोडै ॥ अथवा मायाका कार्य जो देहादिजगत है ताकूं दृढ मिथ्या निश्चय करै है। सोई मानौं **सब कर्म त्यागै** है ॥

उक्तप्रकारकरि जिसने अकर्मताका ग्रहण औ सबकर्मका त्याग किया है। **ताकी संगत** करि **पाप नसांहि** कहिये नाश होवे है ॥

४ ऐसी करै सु संत कहावै ।
सुंदर और उपजि मरि जांहि ॥१६॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की । जो ज्ञानीपुरुष ऐसी रेहेणी करै सु सर्वजनकरि वा शास्त्रकरि संत कहावै । औ जो और अज्ञानीपुरुष हैं सो वारंवार उपजिके मरि जांहि । कहिये जन्म धरिके मरणकूं पावैं हैं ॥ १६ ॥

१ निर्दय होइ तरै पशु घातिक ।
दयावंत बूडै भवमांहि ॥

जो पुरुष निर्दय कहिये अडिगमनवाला होइ । औ इंद्रियसमूह वा रागद्वेषादिकनके संमूहरूप पशुनका घातिक कहिये जीतनेवाला होई ॥ अथवा जो पुरुष सर्वदेहादिक अनात्मवस्तुसमूहतारुप पशुका घातिक कहिये ज्ञानद्वारा मिथ्यापनेका निश्चय करनेवाला । वा तीनकालअभावका

निश्चय करनेवाला होवे। सो पुरुष जन्मादिकअनर्थ-रूप संसारसागरकूं तरै है। कहिये उल्लंघन करे है ॥

जो पुरुष दयावंत। कहिये इंद्रियनकूं निग्रह करनेमें वा रागादिक जीतनेमें वा सकलअनात्माके बाध करनेमें सिथिल (असमर्थ) होवे है। सो पुरुष। भव-सागरमांहि बूडै। कहिये जन्मादि-अनर्थकूं पावे हैं ॥

२ लोभी लगे सबनकूं प्यारो।
निर्लोभीकूं ठोहर न

जो पुरुष ब्रह्मानंदके लाभमेंलोभी। कहिये तिसीके परायण अभ्यासी होवे। सो पुरुष सबनकूं प्यारो कहिये परमेश्वरकी न्यांई पूजनीय लगै ॥

जो पुरुष निर्लोभी। कहिये उक्तलोभीतें विप-रीत होवै ताकूं ब्रह्मानंदरूप ठोहर कहिये स्थान नांहि मिलै ॥ अर्थात् ताकूं परमानंदकी प्राप्ति होवे नही ॥

३ मिथ्यावादी मिलै ब्रह्मकूं ।
सत्य कहै ते यमपुरी जांहि ॥

माया । अविद्या आ तिनके कार्य जो स्थूल-सूक्ष्मप्रपंच है । ताकूं मिथ्या(असत्) कथनका जो वादी होवै । सो ब्रह्मकूं मिलै । कहिये प्राप्त होवै है । औ जो उक्त मायादिनकूं सत्य कहै । ते यमपुरि जांहि । कहिये नरकादिकदुःखनका अनुभव करै है ॥

४ सुंदर धूपमांहि शीतलता ।
जरत रहै सो बैठे छांहिं ॥ १७ ॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की श्रवणादि साधनके अभ्यासरुप धूपमांहि । वा ज्ञानरुप प्रकाशमें शीतलता कहिये शांति होवै है ॥ जो पुरुष श्रवणादिसाधनके अनभ्यासरुप छांहि कहिये छायामें अथवा मूलाऽज्ञानरुप अप्रकाशस्वरुप छायामें बैठे । कहिये आलसी होयके स्थित हौवे। सो पु-

रुष त्रिविधतारुप अग्निमें जरत रहै । कहिये ज-
लताही रहै है ॥ १७ ॥

१ बढई चरखा भलो सँवाऱ्यो ।
फिरने लाग्यो नीकी भात ॥

सर्वज्ञ औ सर्वशक्तिमान जो ईश्वर है । ताकूंहीं इहां बढई कहिये सुतार कहैं हैं । काहेतें जैसे सुतार काष्ठविषे अनेकभांतिके आकार करै है । तातें सो तिन आकारनका कर्ता है ॥ जो कार्यका कर्ता होवै । सो तो कार्यकूं औ ताके उपादानकूं जानिके करै है ॥ इहां रहटीआ कार्य है । औ काष्ठ उपादान है । तिन दोनूंकूं सुतार जानै है । तैसे ईश्वररुप सुतार मायाके विषे अनेकरचना करै है । तातें सो तिस रचनाका कर्ता है । औ तिस रचनारुप कार्यकूं औ ताके उपादान मायाकूं जानै है । यातें सर्वज्ञ है ॥ औ सर्व रचना करनेमें अद्भुतसामर्थ्यवाला होनतें सर्वशक्तिमान है ॥ तिस ईश्व-

रने मनुष्यशरीररुप कार्य उत्पन्न किया है । सोई मानौ चरखा कहिये रहाटीआ है ॥ और सर्वशरीरनतें मनुष्शरीर भलो संवाऱ्यो । कहिये उत्तम बनाया है ॥ सो नीकीभांत कहिये अछीतरहसें फिरने लाग्यो ॥ सो ऐसेः—पूर्वजन्मके शुभकर्मनतें अंतःकरणमें उत्तमसंस्कार हूवे हैं । तिनतें सत्संगादिककी प्राप्ति हुई है । औ सत्संगादिकरि ज्ञानके साधनोमें प्रवृत्ति भई है । तातें पुनः पुनः सोई अभ्यास लग्यो है ॥ तिस

२ वहु सासूकूं कहि समुझावै ।
तू मेरे ढिग बैठी कात ॥

अभ्यासवाली जो बुद्धि है । सो विवेकरुप पुत्रकूं जनै है तां पुत्रकी परिपक्कअवस्था हुवेतें ताका अद्वैतश्रुतिके साथ लग्न करै है। सोई मानौ वहु कहिये पुत्रकी पत्नी है ॥ सो पूर्वोक्तअभ्यासयुक्त बुद्धिरुप अपनी सासूकं ऐसे काहि समु-

झावै है:—"तूं मेरे ढिग (पास) बैठी कात ।" कहिये लक्ष्यमें स्थित होयके स्वरुपका अनुसंधान कर ॥

३ ताको तार न टूट कबहू ।
पूनी घटै नहीं ादन

स्वरुपके अनुसंधानरुप जो स्मरण । ताको प्रवाहही मानौ तार है । सो कबहूं न टूटै । कहिये तो स्मरणका कदै भी भंग होवै नही । औ पूनी (रुइकी पूनी) कहिये जो स्वरुपाकारवृत्ति है । सो रात दिन घटै नहीं । कहिये अंतरायसहित होवै नहीं । किंतु एकरस रहै है ॥

४ सुंदर विधिसूं बनै झु
खासा निपजै ऊंची जात ॥ १८ ॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की । विधिसूं कहिये श्रवण। मनन औ निदिध्यासनादिक ज्ञानके साधनों करि । स्वरुपके साक्षात्काररुप झुलाहा कहिये

कपडा बनै । तब सो खामा निपजै । कहिये सर्व अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरुप शोभा- दायक होवे। याकूंही मुक्ति कहैं है ॥ सो मुक्ति दो प्रकारकी है:—एक जीवन्मुक्ति । दूसरी विदेह- मुक्ति ॥ शरीरसहितकूं बंधभ्रमका जो अभाव होवै है सो जीवन्मुक्ति कहिये है । औ ज्ञानतें अज्ञा- नकी निवृत्ति होयके प्रारब्धभोगतें अनंतर स्थूलसूक्ष्म शरीराकार अज्ञानका जो चेतनमें लय होवै है। सो विदेहमुक्ति कहिये है ॥ तिनमें विदेहमुक्ति तौ ज्ञा- नीकूं अवश्य होवै है। तैसेही भ्रमके नाश क्षणमें जी- वन्मुक्ति भी संभवै है । परंतु जो शरीरके प्रारब्ध अधिकभोगके हेतु होवैं । तौ प्रवृत्ति के बलतें जी- वन्मुक्तिका आनंद प्राप्त होवै नहीं । सो भोगनकी न्यूनतातें निवृत्तिके बलकरि जीवन्मुक्तिके आनंदरुप ऊंची जात कहिये उत्कृष्टप्रकारका बन्या है॥१॥

१ माइ बाप तजि धी उमडानी ।
हरषत चली खसमके पास ॥

इहां अविद्याकूं माइ (माता) कहैं हैं । औ जीवकूं बाप (पिता) कहैं हैं । ताकूं तजि (त्याग करिके) कहिये अविद्या औ जीवका बाध करिके धी (तिनकी पुत्री) कहिये जो संस्कारवाली बुद्धिकी वृत्ति है । सो उमडानी (मदोन्मत्त) भई । कहिये ध्येयाकार होने लगी । औ प्रत्यक्‌अभिन्न जो परमात्मा है । सोई मानौं खसम (पति) है। ताके पास । कहिये तदाकार होनेकूं हरषत चली । अर्थात् परमात्माकूं अभिमुख भई ॥

२ बहू बिचारी बडिं बखतावर ।
जाके कहे चलति है सास ॥

विवेकरहित जो बुद्धि है । सोई मानौं सास (सासू) है सो काहेंते तिसीतें विवेककी उत्पत्ति हुई है । तातें सो तिसकी माता है ॥ विवेकयुक्त

बुद्धिकी वृत्ति हैं। सोई मानौं तिस विवेककी बहु (स्त्री) है॥ सो शिचारी कहिये शांतिवाली है॥ औ बडि बख्तावर कहिये स्वाधीन है। पराधीन नहीं॥ यातें पूर्वोक्तसासूका कह्या नहीं मानैं है! किंतु जाके कहे वे सास चलती है॥ अर्थात् विवेकयुक्त बुद्धिकी वृत्तिमें अविवेकताका प्रवेश होवै नहीं॥

३ भाई खरो भलो हितकारी।
सब कुटुंबको कीनो नास॥

पूर्वोक्तविवेककूं सहायताकरनेवाला जो तत्त्वज्ञान है। सोई मानों भाई (भ्राता) है॥ सो खरो कहिये निश्चित है। भलो कहिये श्रेष्ठ है। औ हितकारी कहिये मुक्तिरूप कल्याणकूं करनेवालो है॥ तिसने अविद्याको। औ ताके कार्य बुद्धि। बुद्धिवृत्ति। औ देहादिरूप सब कुटुंबको नास कीनो। कहिये बाध कियो है॥

४ ऐसी विधि घर बस्यो हमारो ।
कहि समुझावै सुंदरदास ॥ १९ ॥

सुंदरदासजी कहि समुझावै है की। ऐसी विधि कहिये इस प्रकारकरि हमारो स्वस्वरूपरूपी घर बस्यो। अर्थात् सत्‌रूपकरि अवशेष रह्यो ॥ १९ ॥

१ घर घर फिरै कुँवारी कन्या ।
जने जनेसूं करती संग ॥

आत्मजिज्ञासावाली जो बुद्धि है। सोई मानौ कुँवारी कन्या (कुमारिका) है। सो अनेकसत्पुरुष अथवा ज्ञानके अष्टसाधनरूप जने जनेसूं संग कहिये प्रीति करती घर घर फिरै हैं। कहिये अनेकशास्त्रनमें अथवा तीनशरीरनमें तीनअवस्थामें औ पंचकोशनमें विचार करनेकूं प्रवर्ते हैं ॥

२ वेस्या सो तौ भई पतिव्रता ।
एक पुरुषके लागी अंग ॥

जो ब्रह्माकारबुद्धिकी वृत्ति है । सोई मानौं वेस्या है ॥ जैसे वेस्या व्यभिचारिनी होवै है । यातें एक पुरुषके आश्रय रहै नहीं । तैसे वृत्ति भी अस्थिर होवे है । तातें एक विषयके आकार रहै नहीं ॥ ऐसे अज्ञानकालमें यद्यपि वृत्तिका चांचल्य देखिये है । तथापि ज्ञान हुवे पीछे सो वृत्ति एकाग्र होवै है ॥ जैसे वैस्याकूं भी किसी एक पुरुषके ऊपर प्यार होइ जावै । तौ और सबपुरुषनका आश्रय छोडिके तिसीके साथ लगी रहे है है । तैसे वृत्ति भी जब ब्रह्माकार होवै है तब फिर विषयनमें प्रवृत्त नहीं होवे है । किंतु एक स्वरूपमेंही स्थित रहै है ॥ ऐसे वेस्याका औ वृत्तिका सादृश्य होनेतें वृत्तिकुं वेस्या कही है ॥ फिर जैसे वेस्या किसी एक पुरुषके वश होवै है । तब ताका पा-

तिव्रत्य भी सिद्ध होवै है। तैसेही वृत्ति भी जब ब्रह्माकार होवै है तब ताकी एकाग्रता भी सिद्ध होवै है। इस हेतुतैंही मूलमें सो तौ पतिव्रता भई। औ एक पुरुषके अंग लागी। ऐसे कह्या है ॥

३ कलियुगमांही सतयुग थाप्यो।
पापी उदय धर्मकी भंग ॥

रजोगुण औ तमोगुणकी वृत्तिरूप मलिनधर्म-वाला जो मन है। सोई मानौ कलियुग है ॥ काहेतें। कलियुगमें मलीनताकी वृद्धि होवै है। तैसेही मलीनतायुक्त मन होनेतें कलियुगका औ मनका सादृश्य कह्या है ॥ तामांही विवेक। वैराग्य। क्षमा। धैर्य। उदारतादि वृत्तिरूप श्रेष्ठधर्मरूपही मानौ सतयुग थाप्यो ॥ काहेतें सतयुगमें श्रेष्ठधर्मनकी वृद्धि होवै है। तातें श्रेष्ठधर्मरूपही सतयुग कह्या है। तामें पापीका उदय होवै है ॥ काहेतें। जो नाश करनेवाला होवै है सो पापी कहिये है ॥ सर्व-

अविद्याका औ ताके कार्यका नाश करनेवाला ज्ञान है। तातें ताकूंही पापी कहैं हैं॥ ता ज्ञानरूप पापीकी पूर्वोक्त श्रेष्ठधर्मरूप सतयुगमें वृद्धि होवै है॥ औ धर्मको भंग होवै है॥ काहेतें। जातें रक्षा होवै सो धर्म कहिये है॥ अविद्या औ ताके कार्यका रक्षक अविवेक है। ताका तिस सतयुगमें नाश होवै है॥

४ सुंदर कहत अर्थ सो पावै।
जो नीके करि भजै अनंग ॥ २० ॥

सुंदरदासजी कहत हैं की। जो पुरुष नीके करि (अछी तरहसें) अनंग (कामदेव)कूं भजै। सो याका अर्थ पावै॥ याका भाव यह है:—जाका अंग नहीं है ताकूं अनंग कहै हैं॥ ऐसा कामदेवकी न्यांई निरयवयव जो ब्रह्म है ताकूं भजै। कहिये जो निर्गुणउपासना करै। सो अछी तरहसें मोक्षरूप अर्थकं पावै॥ २०॥

१ विप्र रसोई करने लाग्यो ।
चोका भीतर बैठो आइ ॥

जो शुद्धअंतःकरणवाला जिज्ञासुजीव है । सोई मानौ विप्र (ब्राह्मण) है ॥ सो मोक्ष संपादन-रूप रसोई करने लाग्यो । तब विवेकादि चारि-साधनरूप चोकाके भीतर आइके बैठो । कहिये साधनसंपन्न भयो ॥

२ लकरीमांही चुला दीयो ।
रोटी ऊपर तवा चढाइ ॥

नानाप्रकारके जो अनेककर्म हैं । सोई मानो अनेक लकरीआं हैं ॥ तामांही ब्रह्मोपदेशरूप चूला दीयो । तिसने ज्ञानरूप अग्निकरि कर्मरूप लकरीआं जलाय डाली ॥ तब प्रारब्धफलकी भो-ग्यतारूप रोटीके ऊपर कर्मवशात् होनेके निश्च-यरूप तवाकूं चढाइ दियो ॥ अर्थात् जब ब्रह्मो-पदेशजन्य ज्ञानतें सबकर्मनका नाश होवै है । तब

तब तिस ज्ञानीका ऐसा निश्चय होवै हैः—"मैं अ-कर्त्ता हू । अभोक्ता हूं । जो शेषप्रारब्धकर्म रहे हैं। सो जौलौं भोगनका आयतन शरीर है तौलौं यथा-वत् भोग देहू । ताकी चिंता मेरेकूं कर्तव्य नहीं ॥

३ खिचरीमांहि हंडिआं रांधी ।
मालन आक धतूरा खाइ ॥

वैराग्यरूप जल। बोधरूप चावल । औ उपशम रूप मुंग। इन तीनूंकी मिश्रतारूपही मानौंखिचरी है । तामांहि हंडिआं कहिये भोगनविषे दीनता। सत्यताकी भ्रांति । औ प्रतीति आदि धर्मयुक्त स-माष्टि । व्याष्टि । स्थूल । सूक्ष्म प्रपंचरूप जो माया है । सो रांधी कहिये आश्रित करी ॥ औ अनेक-रागद्वेषादि दुर्वासनारूप जो महाउपकटुक—आक औ धतूरा हैं । तिनका सालन (शाक) बना-इके खाइ । कहिये जीतिके—

४ सुंदर जीमत अतिसुख पायो ।
अबके भोजन कियो अघाई ॥ २१ ॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की । कार्यसहित अज्ञान की निवृत्तिरूप रसोई । वासनाकी निवृत्तिरूप शाकसहित जीमत । कहिये अनुभवकरिके अतिसुख पायो । कहिये परमानंदकी प्राप्ति भई ॥ औ अबके कहिये इस मनुष्यशरीरमैंही ईश्वर । श्रुति । गुरु औ स्वअंतःकरण । इन सर्वकी कृपासैं ज्ञान पायके अघाई । कहिये संसारके भोगनकी तृष्णा करि रहिततारूप तृप्तिकूं पायके । जीवन्मुक्तिके विलक्षणआनंदका जो अनुभव है । तद्रूप भोजन कियो ॥ याका भाव यह है:—

पूर्व अज्ञानकालमैं और अनेकदेह प्राप्त हुवे थे । तिनमैं विषयानंदका अनुभव तौ बहुत किया है । परंतु स्वरूपानंदका अनुभव कदै भी हुवा नहीं है ॥ काहेतें तिसकालमैं मूलाऽज्ञानरूप प्रतिबंध

था। औ पश्चात् विदेहमोक्षमें भी सर्वदुःखनकी निवृत्तिपूर्वक निरावरण। परिपूर्ण। आनंदस्वरूप-करि अवस्थिति होवै हैं। परंतु अस्तिव्यवहारकी हेतु जो वृत्ति है। ताका अभाव होने तें जीवन्मुक्तिके विलक्षणआनंदका अनुभव नहीं होवै है। यातें ज्ञानयुक्त देहमेंही जीवन्मुक्तिके विलक्षणआनंद-रूप विद्यानंदका अनुभव होनेकूं शक्य है ॥ तातें सुखेच्छु विद्वान्करि विषयानंदकूं त्यागिके। ब्रह्मवि-चारद्वारा पूर्वोक्तआनंदका अनुभव अवश्य क-र्त्तव्य है ॥ यद्यपि सुषुप्त्यादिकमें भी आनंद तौ है। तथापि सो निरावरण। परिपूर्ण। औ सवृत्तिक नहीं हैं ॥ तातें विलक्षण सुखका हेतु नहीं है ॥ जो नि-रावरण। परिपूर्ण। औ सवृत्तिक होवै सो विलक्षण-आनंद कहिये है ॥ इस लक्षणकी यह पदकृति है:—सुषुप्तिमें जो आनंद है। सो आवरणसहित है। औ विषयमें जो आनंद है सो निरावरण तौ है।

तथापि विषयकी प्राप्तिक्षणमें जब अंतरमुखवृत्ति होवै है । तब तामें स्वरूपानंदका प्रतिबिंब पडै है। यातें परिपूर्ण नहीं। किंतु एकदेशवृत्ति होनेतें परिच्छिन्न है ॥ तैसेही पूर्णानंद तौ अज्ञानीका स्वरूप भी है ॥ तथापि सो निरावरण औ अभिमुख वृत्तिसहित नहीं ॥ औ जो विदेहमुक्तिमें निरावरण पूर्णानंद है । सो सवृत्तिक नही । किंतु अवृत्तिक है॥ यातें निरावरण । परिपूर्ण । औ सवृत्तिक आनंदरूप विलक्षणानंदका लक्षण कीये कहूं भी अतिव्याप्ति-आदि दोष नहीं हैं ॥ २१ ॥

१ बैल उलटी नायककूं लाद्यो ।
वस्तु मांहि भरि गूण अपार ।

साभासअंतःकरणविशिष्टचेतनरूप जो जीव है सोई मानौं बैल (बलीवर्द) है ॥ काहेतें कर्तृत्व, भोक्तृत्व । राग । द्वेष इत्यादिक जो अंतःकरणके धर्म हैं ॥ तैसेही प्राण । इंद्रिय । औ देहके जो

धर्म हैं। तिसरूप भारकूं अज्ञानकालमें उठाता था। यातें ताकूं बैल कह्या ॥ तिसने उलटि कहिये विचारद्वारा निजस्वरूपकूं जानिके पूर्व अविवेककालमें तादात्म्यअध्यास करि। जीवकूं अपने वश करिके वर्तावनेहारा जो स्थूलसूक्ष्मसंघात है। सोई मानौ नायक है ॥ ताकूं लाद्यो। कहिये अज्ञानकालमें अध्यासकरि अंतःकरण। प्राण। औ इंद्रियनके धर्म जो जीवने अपने मानि लिये थे। सो ज्ञानकालमें यथायोग्य संघातके जानि लिये ॥

सर्वका अधिष्ठान जो ब्रह्म है। सोई मानौ वस्तु है ॥ तामांहि अपार (अगणित) गुण भरे। कहिये अपने अपने जाति। संबंध। औ क्रिया आदिक धर्मरूप जो पदार्थ हैं। सो जिनमें भरे हैं। औ जो अहंकारादिअनात्मरूप कपडेकी बनी है। सोई मानौ थेलियां हैं। सो पूर्वोक्त ब्रह्मरूप वस्तुमें जैसे

साक्षीमें स्वप्नके पदार्थ अध्यस्तहैं। तैसे अध्यस्त जाने ॥

२ भली भांतिका सौदा कीया।
आय दिशांतर या संसार ॥

या संसारही मानो दिशांतर है। काहेतें। यह जो संसाररूप देश है। सो ब्रह्मरूप देशसें भिन्न है। तातें देशांतर कह्या है ॥ यामें आयके भली भांतिका सौदा कीया ॥ सो सौदा यह है:-जब ज्ञानकी प्राप्ति होवै है। तब सर्वअनर्थकी निवृत्ति। औ परमानंदकी प्राप्ति होवै है। याकूंही मुक्ति अथवा मोक्ष कहे हैं ॥ सोई मानो एक व्यापार है ॥ तिसके निमित्ततें सर्वअनात्मरूप धनका त्याग किया। औ परमानंदरूप माल अपना करि लिया ॥

३ नायिकिनी पुनि हर्षन लागी।
मोहि मिल्यो नीको भरतार ॥

दृढनिश्चयस्वरूप जो बुद्धि है। सोई मानो नायिकिनी है ॥ सो पुनि हर्षन लागी। कहिये

फिरि आनंदकूं प्राप्त भई॥ औ मुखसें कहने लगी कि । मोहि नीको (श्रेष्ठ) भरतार (पति) मिल्यो ॥ इहां वेदांतसिद्धांतरूप पति कह्यो है। सो निश्चयस्वरूप बुद्धिकूं प्राप्त भयो ॥ मूलमें जो पुनि शब्द है । ताका अर्थ यह है:—निश्चयस्वरूप बुद्धिरूप जो नायिकिनी है । सो प्रथम जब द्वैतसिद्धांतके आधीन भई थी । तब तिसी पतिकरि आनंदित होइ रहीथी । ताकूं जब अद्वैतसिद्धांतरूप पतिकी प्राप्ति भई । तब पूर्वपतिका त्याग करिके फिरि आनंदवान भई.

४ पूंजी जाइ सांइकूं सौंपी ।
सुंदर शिरतें डार्‌यो भार ॥ २२ ॥

तिस अद्वैतसिद्धांतरूप सांइ (पति) कूं तिसके पास जाइके । अनंतवासनारूप पुंजी सौंपी दीनी ॥ जातें जाका जीवन होवै सो ताकी पूंजी कहिये है ॥ अनंतकर्मनकी वासना बिना

बुद्धिकी स्थिति होवै नहीं । तातें सो बुद्धिकी पूंजी कहिये जीवन है ॥ सो अद्वैतसिद्धांतरूप ज्ञानकी प्राप्ति भयेतें बुद्धि सर्ववासनका त्याग करै है ॥ काहतें । ज्ञानकरि सर्वकर्मनका नाश होवै है । कर्मनके नाश भये तज्जन्य वासनाका भी नाश होवै है । सोई मानौ सोंपना है ॥ पतिकूं अपनी पूंजी देनेका कारण दिखावैं हैं:—जौलौं बुद्धिमें अनंतवासना भरीथी । तौलौं सो अपने चिदाभासरूप शिरपर बडो बोजो थो । सो भार शिरतें डाऱ्यो । कहिये चिदाभासरू। जीवकूं अपने स्वरूपके ज्ञान-द्वारा सर्ववासनातें मुक्त कियो । ऐसें सुंदरदासजी कहै हैं ॥ २२ ॥

१ बनियां एक बनजकूं आयो ।
परे तावरा भारी भैठ ॥

जीवरूपही मानो एक बनियां है । सो इस संसाररूप प्रदेशमें नानाप्रकारके कर्मफलनके भो-

गरूप बनज करनेकूं आयो। कहिये मनुष्यदेह धारण कियो ॥ तिस प्रदेशमें त्रिविधतापरूप तावरा (धूप) परै था। ताके बलतें भारी भैठ कहिये। अतिशय तपने लग्यो ॥

२ भली वस्तु कछु लीनी दीनी।
खैंचि गठरियां बांधी पेठ ॥

साधनसहित जो ज्ञानरूप वस्तु है। सो भली कहिये अत्युत्तम है ॥ सो सद्गुरु औ सत्शास्त्ररूप और व्यापारीनतें लीनी। अर्थात् ज्ञान पाया ॥ इहां कछु शब्दका अर्थ ऐसे हैः—उक्त सद्गुरु औ सत्शास्त्ररूप औरव्यापारीनतें नां ज्ञानरूप वस्तु लीजिये हैं सो तिन द्वारा तत्त्वमस्यादिमहावाक्यजन्य उपदेशकरि अनुभवमात्र करिये है ॥ कछु और वस्तुकी न्याई इस वस्तुका ग्रहण नहीं हैं। काहेतें। आकारवाले पदार्थका सम्यकूतातें स्थूलशरीर करि ग्रहण होवै है। औ निराकारपदार्थका

सौ सूक्ष्म शरीरके तिसके अनुभव मात्रका ग्रहण होवे हैं। तातें सो कछु कहिये थोडा कह्या है॥ तैसही कछु वस्तु दीनी। सो वस्तु यह है:—तन मन औ धनरूपही मानौ द्रव्य " । तिस द्रव्यरूप कछु वस्तु सद्गुरु औ सत्शास्त्ररूप व्यापारीनकूं दीनी ॥ अर्थात् तन मन औ धनका अर्पन किया॥ इहां कछु शब्दका उपरकी न्यांईही अर्थ है ॥ काहेतें वास्तव करि तन। मन। औ धनका अर्पन नहीं होवे है। किंतु यह मिथ्या वस्तु होनेतें ताके अर्पनका व्यवहार होवे है। तातें कछु कह्या है॥

उक्तवस्तु लेके तार्को षट्प्रमाणरूप रस्सीकरि खैंचि गठरियां बांधो। कहिये अबाधित-अर्थकूं विषय करनेवाला जो स्मृतिसें भिन्न ज्ञान (प्रमा) है। ताका निश्चय किया ॥ मूलमें जो ऐठ शब्द है। ताका अर्थ यह है:—ऐठ कहिये अछि तरहसें विचार करिके प्रमाज्ञानका अंगीकार

किया है। औ मूलमें जो "गठरीयां" शब्द है। सो बहुवाचक है। तातें तिस वस्तुकी अनेकगठ-रीयां कही चाहिये। सो कहैं हैं:—प्रमाके करण जो षट्प्रमाण हैं। सोई मानौ षट्बंधन हैं ॥ तिनमें एक एक प्रमाणरूप बंधनकार एक एक गठरी बांधी गई है ॥ काहेतें। जैसे चार्वाक जो हैं। सो एक प्रत्यक्षप्रमाणकरि प्रमा सिद्ध करै हैं ॥ कणाद औ सुगत मतके अनुसारी। प्रत्यक्ष औ अनुमान इन दोप्रमाणकरि प्रमा सिद्ध करै है ॥ सांख्यशास्त्रका कर्त्ता कपिल प्रत्यक्ष। अनुमान। औ शब्द इन तीनप्रमाणकरि प्रमा सिद्ध करै है ॥ न्यायशास्त्रका कर्त्ता जो गौतम है। सो प्रत्यक्ष। अनुमान। शाब्दी। औ उपमान इन चारिप्रमाणकरि प्रमा सिद्ध करै है ॥ पूर्वमीमांसाका एकदेशी जो भट्टका शिष्य प्रभाकर है। सो प्रत्यक्ष। अनुमान। शाब्दी। उपमान। औ अर्थापत्ति इन पंचप्रमाणकरि प्रमा सिद्ध

करै है ॥ औ पूर्वमीमांसक जो भट्ट है। सो प्रत्यक्ष। अनुमान। शाब्दी। उपमान। अर्थापत्ति। औ अनुपलब्धि। इन षट्प्रमाणकरि प्रमा सिद्ध करै है ॥ तैसे पूर्वमीमांसक भट्टकी न्याई जो षट्प्रमाणकरि प्रमाकी सिद्धता है। सो वेदांतशास्त्रमें भी अंगीकार करी है ॥ ऐसे एक एक प्रमाणकरि जो प्रमाकी सिद्धता है सोई मानौ भिन्न गठरियां हैं ॥

७ सौदा किया चल्यो पुनि घरकूं।
लेखा कियो वारि तर बैठ ॥

उक्त ज्ञानरूप वस्तुका जीवरूप व्यापारीने मोक्षरूप लाभ होनेके वास्ते उक्तरीतिसें सौदा किया। तब पुनि कहिये फिरि अपने पूर्वस्थानरूप घरकूं चल्यो। अर्थात् सच्चिदानंदलक्षणवाला जो ब्रह्मस्वरूप है ताका श्रवण। मनन। औ निदिध्यासन करने लाग्यो ॥ औ वारि कहिये जो ब्रह्मानंदरूप पानी है। ताके तर कहिये। निमग्नत्वरूप

तलेमें बैठके लेखा कियो ॥ सो लेखा यह हैः— श्रवण । मनन । औ निदिध्यासनकरि जब परमानंदरूप मोक्ष होवै है । तब वह ज्ञानी विचार करै है की पूर्वोक्त वस्तुका जो मैंने लेनदेन किया। सो न तौ लेन है । न कछु देन है ॥ मैं जो तन। मन । औ धनरूप वस्तु दीनी तामें कछु वस्तुतता नहीं है । तैसेंही जो ज्ञानरूप वस्तु लीनी। सो मेरेसें कछु अन्य नहीं थी। तातें विचार कियेतें न कछु दिया है । न कछु लिया है ॥

४ सुंदर शाह खुशी अति हूवो ।
बैल गयो पूंजीमें पैठ ॥ २३ ॥

सुंदरदासजी कहै हैं की । शाह जो पूर्वोक्त जीवरूप बनिया हैं । सो अति खुशी । कहिये निरंतिशयआनंदवान हूवो। काहेतें देहादिकभारका उठानेवाला जो अहंकाररूप बैल था । सो आ-

त्मधनरूप **पूंजीमें पैठ गयो** ॥ अर्थात् शरीरत्रयके अभिमानरूप अनर्थकी निवृत्ति भई ॥ २३ ॥

१ पहराइत घर घुसे शाहके ।
रक्षा करने लागे चोर ॥

जीवरूप शाह कहिये साहुकार है । ता शाहके अंतःकरणरूप घरमें । पहराइत (पहारा करनेवाला) जो प्रवृत्तिका परिवार कामक्रोधादिक सिपाई हैं । वे आत्मधनकी चोरी करनेके वास्ते घुसे। काहेतें । जौलौं अज्ञानजन्य कामक्रोधादिक अंतःकरणमें रहें हैं। तौलौं वही चोकी करनेवाले सिपांई आत्मवस्तु औरनिसीकूं लेने देवै नहीं है । किंतु आप तिस अंतःकरणरूप ग्रहमें पैठिके वे आत्मधन अपने स्वाधीन करी ताकूं आवरणरूप पेटीमें छिपाई देवै हैं । औ शीलक्षमादिक जो निवृत्तिका परिवार है । सोई मानो चोर हैं. काहेतें । वे आत्मवस्तुकूं उक्त चोकीवालेंसें लेकरिके अपने

स्वाधीनं रखनेकूं चाहते हैं। सो आत्मधनयुक्त अंतःकरणरूप ग्रहकी रक्षा करने लागे ॥ अर्थात् पूर्वोक्त दुर्गुणकूं अंतःकरणतैं निकासिके आत्माकूं अज्ञानकृत आवरणतैं रहित करने लगे ॥

२ कोटवाल काठहुकरि बांध्यो।
छूटै नहीं सांझ अरु भोर।

इस बातकी जीवरूप साहुकारकूं खबर होतेही। सो अहंकाररूप कोटवालके पास फिरियाद कररनेकूं गयो। औ कहने लग्यो की। मेरे धनकी रक्षा करनेवाले जो कामक्रोधादिक हैं। वे सब मिलिके मेरे घरमें चोरी करने लगे॥ औ जो शीलक्षमादिक इस धनकी चोरी करनेवाले हैं। सो रक्षा करने लगे। तिन दोनूंपक्षनमें अतिकलह हुवा है। सो कैसे निवृत्त होवैगा? औ तिस कलहकी शांतिके वास्ते मेरेकूं क्या कर्तव्य है? सो कृपा करिके कहि दीजिये॥ तब वे कोटवाल बोला की

शीलक्षमादिक चोरनकूं निकासि देहु औ कामक्रोधादिकपहराइतनकी रक्षा करहु ॥ काहेतें । शीलक्षमादिकनके स्वाधीन जो आत्मधन होवैगा। तौ इस धनकरि नानाप्रकारके विषयसुख तेरसें भोग्या नहीं जावैगा । औ यह धन कामक्रोधादिकनके स्वाधीन रहैगा । तो वे सब विषयसुख भोगे जावैंगे ॥ यह बात सुनिके वे जीवरूप साहुकार किसी साधुरूप वकीलकूं पुछने लग्यो की । अब मेरेकूं क्या कर्तव्य है ? तब वे साधु निःपक्षपात बुद्धिकरि कहने लगे की । कामक्रोधादिकनकूं अपने घरतें निकासि देहु औ शीलक्षमादिकनका अंगीकार करहु ॥क्यूं की । वे तेरे शत्रुहैं । औ यह तेरे मित्र हैं। वे तेरी पूंजीका नाश करैंगे औ यह तेरी पूंजीकी रक्षा करैंगे॥ औ अहंकाररूप कोटवाल है । सो कामक्रोधादिनका पक्ष करै है। काहेतें । तिनकी उत्पत्ति अहंकारतें हुई है । तातें यह

पक्षपात करनेवाला जे कोटवाल है। ताकूंही शिक्षा करनी चाहिये ॥ यह बात सूनतेही साहुकार क्रोधायमान होयके तिस मिथ्या अहंकाररुप कोटवालकूं सत्यतारुप काठहुकरि बांध्यो। कहिये काष्ठके बंधनमें डालि दियो ॥ औ ताके उपर सतसंगरूप पहरा करनेवाला ऐसा मजबूतजमादार रखा की। वे तहांसें सांझ अरु भोर (प्रातःकाल) आदि किसी समयमें छूटै नहीं ॥

३ राजा गाम छोडिके भाग्यो।
हूवो सकल जगतमें सोर ॥

यह बात सुनिके देहादिसंगातके अभिमानरूप गाम (नगरी)कूं छोडिके मूलाज्ञानरूप राजा भाग्यो ॥ ताको सकल जगतमें सोर हूवो। काहेतें वो अज्ञान फिर कितहुं देखनेमें आयो नहीं ॥

४ परजा सुखी भई नगरीमें।
सुंदर कोई जुलुम न जोर ॥ २४ ॥

ऐसे उक्तप्रकारकरि चोरनकी न्यांई धन चोरनेकूं पहराइत घरमें घुसे। औ धनकी चोरी करनेवाले रक्षा करने लगे। औ गामका कोटवाल साहुकारके हाथसें बंधनकूं पाया। सो बात सुनिके तहांका राजा गांव छोडिके भाग गया। तब तिस नगरीमें सब श्रेष्ठगुणनरूप परजा सुखी भई। सुंदरदासजी कहैं हैं की। न कोई जुलुम हुवा। न किसीका किसीके ऊपर जोर चल्या ॥ २४ ॥

१ राजा फिरै विपतिको मार्‍यो।
घर घर टुकडा मागै भीख ॥

चेतनके प्रतिबिंबयुक्त जो मन है। ताकूं इहां राजा कहैं हैं॥ सो आशा। तृष्णा। अभिलाषा। औ कामनादिभेदकरि भिन्न इच्छारूप विपत्ति(दुःख)को मार्‍यो चौदहभुंवनरूप भिन्न भिन्न ग्रहनमें। अथवा दशइंद्रियनरूप प्रतिग्रहमें। अथवा राज्यादिपदवीरूप घरघरमें फिरै। कहिये

भटके हैं । औ परिच्छिन्नविषयभोगरूप टुकडाकी भीख मागै है ॥

२ पाव पियादो निशिदिन डोलै ।
घोडा चालि शकै नहि वीख ॥

शुभ औ अशुभ जो मनोभाव हैं । सोई मानौ दोपाव हैं । तिनके अनुसार नानाप्रकारकी वृत्तिरूप गतिकरी निशि (स्वप्नमें) दिन (जाग्रतमें) पाव पियादो डोलै है ॥ अर्थात् स्थूलशरीररूप घोडाकी सहायता नहीं मिलै है। काहेतें । मनमें जो नानाप्रकारके संकल्पविकल्परूप भाव उत्पन्न होवैं हैं । सो यद्यपि पूर्वकर्मानुसार होवैं हैं । तथापि सो सर्व फलके देनेवाले नहीं होवे हैं । मनोर्थमात्र होवे हैं ॥ जैसे किसी भिक्षुकके मनमें ऐसा भाव होवै की । "नगरीका अधार्मिराजा मर जावै । औ ताका राज्य मेरेकूं प्राप्त होवे । तौ में

धर्मन्याय करूं।" यामें राजाके मरनेकी जो इच्छा है सो अशुभ है। औ धर्मन्यायकी इच्छा है सो शुभ है॥ परंतु सो दोनूं होनेकूं अशक्य हैं। काहेतें। यह दोनूं मनोर्थमात्र हैं॥ जो क्रियाका होना है सो फलरूप है। सुखदुःखके भोगकूं कर्मका फल कहैं हैं॥ सो कर्मफलरूप भोग यद्यपि शरीरकरि होवै है। तथापि कर्मफल देनेवाले मनोर्थनतें सो भोग होवै है॥ फलरहित मनोर्थनसें भोगरूप क्रिया होवै नहीं॥ औ मनमें तौ जाग्रत औ स्वप्न इन दोनूं अवस्थामें अंतरायरहित अनंतसंकल्पविकल्प होवै हैं। सो सब शरीरकी क्रियाके हेतु नहीं हैं॥ ऐसे ज्ञान बिना भटकतही फिरता है॥ औ उक्त स्थूलशरीररूप जो घोडा है। सो निष्फलमनोर्थनके बलकरि क्रियारुप वीख (चाल) चालि नहिं शकै है। अर्थात् मनकी न्यांई शरीरकी गति नहीं होवै है॥

३ आक अरंडकि लकरी चूशै ।
छांडै बहुत रस भरे ईख ॥

पूर्वोक्त नानामनोर्थजन्य जो वासना है । सो फलदायक नहीं होनेतें रससहित हैं । तातेंही तिनकूं आक औ अरंडकि लकरीयां कही हैं ॥ सो चूशै है । कहिये मनोराज्य करै है । औ ईश्वरकी उपासनादि ज्ञानके साधनरुप बहुत रस भरे ईख (गंडा)कूं छांडै है । कहिये त्यागै है ॥

४ सुंदर कोउ जगतमें विरलो ।
या मूरखकूं लावै सीख ॥ २९ ॥

सुंदरदासजी कहै हैं की । इस जगतमें ऐसो कोउ विरलो सत्पुरुष है । जो या अज्ञानीरुप मूरखकूं सीख (शिक्षा) लावै । अर्थ यह है:- पूर्वोक्त अस्थिरमनवालेकूं बोध होना कठिन है । काहेतें । चंचलमनवालेकूं उपासनादिक्रमतें साधनद्वारा ज्ञान होनेका संभव है । ताकूं साधन

विना ज्ञान होवे नहीं। ऐसे जानिकें जो सत्पुरुष प्रथम साधन करावे औ पीछे बोध करें। ऐसा अद्भुतकृत्य ब्रह्मनिष्ठ औ श्रोत्रियसें होवैहै। औरसें होवे नहीं। सो मिलना कठिनहै। तातें ऐसे अज्ञानीकूं बोध करनेवाला पुरुष विरला कह्या है ॥२९॥

१ पानी जरै पुकारै निशिदिन।
ताकूं अग्नि बुझावे आइ ॥

अंतःकरण जो है सो स्वभावतंही स्वच्छ है। यातें ताकूं इहां **पानी** कह्या है ॥ सो अंतःकरण संसारके त्रिविधतापतें **जरै** है। तातें **निशिदिन** कहिये निरंतर "मैं दुःखी। कंगाल। संसारीजीव हूं" ऐसे **पुकारै** है॥अर्थात् अंतरमें निश्चय करी जहां तहां कथन करै है॥ **ताकूं** कहिये तिस तपायमान अंतःकरणरूप जलकूं ज्ञानरूप **अग्नि बुझावै आइ**। कहिये तिन त्रिविधतापनकूं बाध करिके शांत करै है॥ औ

२ मैं शीतल तूं तपत भया क्यूं ।
वारंवार कहै समुझाइ ॥

सो ज्ञानरुप अग्नि पूर्वोक्त अंतःकरणरुप जलकूं वारंवार समुझाइके कहै है की । मेरी उत्पत्ति तुझतें हुई है । सो मैं तो शीतल (शांत) हूं । तूं क्यूं तपत भया है ? भाव यह है:—प्रथम जब मंदज्ञान होवै है । तब विचार उत्पन्न होवै है । सो ज्ञान तिस विचारकरि बहिर्मुखमनकूं बोध करै है॥

३ मेरी झपट तोहि जो लागै ।
तौ तूं भी शीतल व्है जाइ ॥

यह जो संसार है सो मिथ्या है । औ तामें जो तीनताप हैं । सो भी मिथ्या हैं । औ सर्वत्रपरिपूर्ण जो ब्रह्म है सो सत्य है । सोई मेरा रुप होनेतें मेरेविषे संसार औ ताके तीनताप जेवरी में सर्प शुक्तिमें रजत । औ मरुथलमें जलकी न्यांई

मिथ्या प्रतीत होवैं हैं । ऐसी संशय विपरीतभाव नारहित मेरी दृढतारूप झपट । श्रवण मनन औ निदिध्यासनादिकरि जो तोहि लागै । तौ तूं (अंतःकरण) भी पूर्वोक्त त्रिविधतापजन्य विक्षेपके नाशकरि शीतल (शांत) व्है जाइ ॥

४ कबहू झरनी फेरि न उपजै ।

सुंदर सुखमें रहै समाइ ॥ २६ ॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की । एक बेर जो ज्ञानाऽग्निकरि अंतःकरणरूप जलकी तपत निवृत्त भई। तौ फेरि सो झरनी (तपत) कबहू न उपजै । अर्थात् ज्ञान हुवे पीछे अपने निजस्वरूप आत्मासैं विमुख होयके विषयनकी तृष्णा होवै नहीं । काहेतें अंतःकरण ब्रह्मसुखमैं समाइ रहै है ॥२६॥

१ खशम पऱ्यो जोरूके पीछे ।

कह्यो न मानै भुंडी रांड ॥

चिदाभाससहित अंतःकरणरुप जो जीव है। ताकूंही इहां खशम कह्या ह। सो बुद्धिरुप जोरूके पीछे पऱ्यो ॥ ता जोरुने शुभाशुभकर्मनके बलकरि अनंतचौराशीलक्षयोनिमें भटकायो। औ तिन योनिजन्य अनंत—यातना (पीडा) सहंन करवाई। ऐसें अगणितदुःख सहन करते हुवे कदाचित् काकतालीयन्यायवत्। शुभाशुभकर्मनकरि मनुष्यशरीरकी प्राप्ति हुई। तामें किसी उत्तमसंस्कारनके लिये सत्संगादिकनकी प्राप्ति भई। तिस क्षणमें बुद्धिकी अवस्था यत्किंचित् फिरी। तब ताकूं सो जीव कहने लगा की। तेंने मेरी बहुत दुर्दशा करी। अब मेरेतें ऐसा दुःख सहन नहीं होवैं है। तातें अब तूं ज्ञानमें प्रवृत्त होयके अनंतकर्मनकी वासनका त्याग करहु। जातें मेरा जन्ममरण निवृत्त होवै। इत्यादिक वाक्यनकरि विचारपूर्वक आर्तजन अपनी बुद्धिकूं बहुत कहि समुझावैं है॥ परंतु

वासनाके वश भई भुंडी (भ्रष्ट) रांड(रंडा) कह्यो नहीं मानै है ॥ अर्थात् निरंतर सत्संगमें प्रवृत्त होयके ज्ञानवान नहीं होवै है ॥ काहेतें । ज्ञानके प्रतिबंधक जो अशुभकर्मजन्य वासना हैं। सो तिस शरीरमें ज्ञानकी प्राप्तिका असंभव होनेतें बुद्धिकूं सत्संगादिकनमें प्रवृत्ति करावने नहीं देवै हैं ॥ औ

२ जित तित फिरै भटकती यूंही ।
तें तौ कियो जगतमें भांड ॥

जित तित कहिये जिस किस विषयमें यूंही भटकती फिरै है । जैसे व्यभिचारिनी स्त्री । कामातुर भई हुई स्पर्शविषयके अर्थ जहां तहां भटकती फिरै है । औ ताकाही निरंतर ध्यान लग्या रहै है । सो जौलौं पति ताके आधीन होवै तौलौं सो कृत्य निर्भयतातें होवै है ॥ परंतु जब पतिकूं तिस बातकी कछु खबर होवै है । तब ताकूं यद्यपि भय तौ होवै है । तथापि वासनाके बलतें सो व्य-

सन शीघ्र छूटै नहीं है ॥ सो देखिके ताका पति बहुतयुक्तिओंकरि समुझावै है । परंतु सो जब समुझे नहीं तब कोपायमान होयके कहै की रांड तें तो मेरेकूं जगतमें भांड (फजीहत) कियो है ॥ तैसे जीवरुप खशम भी अपनी बुद्धिरुप जोरुकूं। व्यभिचारिनी देखिके क्रोधायमान होय कहै है की । इस जगतमें तेनें मेरेकूं ऐसा फजीहत कन्या है की । जानें मेरी परिपूर्णतारुप प्रतिष्ठा । अद्वैतरुप नाम । औ अखंडानंदरुप धन आदिकनफाका अभावकी न्यांई होई गया है ॥

३ तौ हू भूख न भागी तेरी ।
तूं गिल बैठी सारी मांड ॥

ऐसे मेरी प्रभुतारुप सारी मांड (बडाई) तूं गिल बैठी । तौ हू तेरी तृष्णारुप भूख न भागी (नाश भई नहीं) । अर्थात् ब्रह्मतें जीव किया तौ भी तेरी तृप्ति भई नहीं है । अब क्या

पथ्थरकी न्यांई जड करनेकूं चाहती है ? ऐसे अतितीक्ष्णवचन कहे है ॥

४ सुंदर कहै सीख सुनि मेरी।
अब तूं घर घर फिरवो छांड ॥ २७॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की। हे बुद्धि । अब मेरी सीख (शिक्षा) सुनिके, कहिये इस मनुष्य जन्मविषे ज्ञानकूं पायके अब तूं अनेकविषयरुप वा अनेकयोनिरुप घर घरमें फिरवो छांड ॥ अर्थात् ज्ञान हुवे पीछे विषयवासनाके अभाव हूवे जन्ममरणकी निवृत्ति होवै है। ऐसें कह्या ॥२७॥

१ पंथीमांहि पंथ चलि आयो ।
सो वह पंथ लख्यो नहि जाहि ॥

मोक्षरुप प्रदेशके ज्ञानरुप मार्गमें गमन करनेवाला जो मुमुक्षुजीव है। ताकूं इहां पंथी कहैं

हैं। तामांहि ज्ञानरूप पंथ (मार्ग) चलि आयो ॥ अर्थात् गुरुशास्त्रादिअवांतरसाधनद्वारा अंतः-करणकी चरमावृत्तिरुप करि प्रगट भयो ॥ सो वह पंथ लख्यो नांहि जांहि (जावै)॥ यहां यहरहस्य हैः—जैसे बिजलीकी गति। मनकी गति। औ पक्षीकी गति। विचक्षणपुरुषकरि जानी जावै है। यातैं लक्ष्य है ॥ जलमें जो छोटीमच्छरी होवै हैं। ताकी गति यद्यपि औरकोई जानी शकै नहीं। तातें अलक्ष्य कहिये है। तथापि मच्छरीरूपधारी योगीकरि जानीजीव है। यातैं लक्ष्य है॥ योगीकी गति यद्यपि औरनसें जानी जावै नहीं। तथापि सो अन्ययोगीकरि जानी जावै है। तातैं सो दुर्लक्ष्य है। तैसे ज्ञानकी गति विचक्षणनरकरि। वा योगीकरि वा अन्यज्ञानीकरि साक्षात् जानी जावै नहीं। यातैं यह अलक्ष्य है ॥ तातैं ज्ञानीकी गति (पंथ)रूप ज्ञान लखनेमें आवै नहीं ॥

२ वाही पंथ चल्यो उठि पंथी ।
निर्भय देश पहूच्यो आइ ॥

उक्त मुमुक्षुजीवरूप जो पंथी है। सो उठि कहिये अज्ञानरूप पूर्वस्थानतें उठिके। वाही ज्ञानरूप पंथमें चल्यो॥ अर्थात् ज्ञानी होयके विचरने लग्यो॥ ऐसे विचरते जब शेषकर्मनका क्षय होय गया। तब विदेहमोक्षरूप जो निर्भय देश है। तहां आइ पहूच्यो। अर्थात् ब्रह्मतें अभिन्न भयो॥

३ तहां दुकाल परै नहि कबहू ।
सदा सुभिक्ष रह्यो ठहराइ ॥

तहां कबहू जन्ममरणादिदुःखरूप दुकाल परै नहि। काहेतें। सदाही परमानंदरुप सुभिक्ष (सुकाल) ठहराइ रह्यो है॥

४ सुंदर दुःखि न कोऊ दीसै ।
अक्षय सुखमें रहे समाइ ॥२८॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की। तिस विदेहमुक्तिरुप स्थितिमें कोऊ दुःखि न दीसै। काहेतें। जो जो पुरुष ज्ञानरुप मार्गकरि विदेहमुक्त भये हैं। वे सर्व उपाधिरहित ब्रह्मरुप होयके स्थित हैं। सो ब्रह्मस्वरुप अक्षयसुखरुप होनेतें। तहां दुःखका लेश भी नहीं है। तामैं समाइ रहे है ॥ २८॥

१ एक अहेडी बनमें आयो।
खेलन लाग्यो भली शिकार ॥

एक उतमसंस्कारयुक्त अधिकारीपुरुषरुप अहेडी (शिकारी)। संसाररुप बनमें आयो। कहिये कर्मवशतें नरदेहकूं प्राप्त भयो। सो बंधनिवृत्तिरुप भली (अछी) शिकार खेलन लाग्यो ॥

२ करमें धनुष कमरमें तिरकश।
सावज घेरे वारंवार ॥

ता शिकारीनें अंतःकरणकी वृत्तिरुप कर

(हाथ)में। गुरुमुखद्वारा श्रवण किये हुवे महावाक्यके अर्थरुप धनुष धारण करिके। औ हृदयरुप कमरमें अनेकयुक्ति औ विचाररुप बाणयुक्त अंतःकरणरुप तिरकस (भाथा) बांधिके। वारंवार श्रवणादि सहकारीद्वारा। सावज (मारनेलायक जानवर) घेरे। कहिये रोके॥

३ मार्‍यो सिंह व्याघ्र पुनि मार्‍यो।
मारी बहुत मृगनकी डार॥

ज्ञानरुप युद्धकरि मूलाऽज्ञानरुप सिंह मार्‍यो। देहादि अहंकाररुप व्याघ्र (वाघ) मार्‍यो। पुनि कामक्रोधादि बहुत मृगनकी डार (पंक्ति) मारी। कहिये बाधित कीनी॥

४ ऐसे सकल मारि घर लायो।
सुंदर राजहि कियो जुहार॥ २९॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की। ऐसे सकल प्र-

पंचरुप शिकारकूं मारि (बाध करिके) घर लायो। कहिये पूर्व अज्ञानदशामें अधिष्ठानब्रह्मतें भिन्न प्रपंचकूं जानतोथो। सो अब बाधितानुवृत्ति करि अधिष्ठानमें कल्पित अनुभव करने लग्यो। औ ब्रह्मरुप राजाहि (राजाकूं) जुहार कियो। कहिये अपनो आपकरि जान्यो। तातें मुक्तिरुप मौज मिली ॥ २९ ॥

१ शुकके वचन अमृतमय ऐसे।
कोकिल धारि रहौ मनमांहि ॥

यह विपर्ययआदिक जो मेरी काव्य है। ताका तात्पर्य यद्यपि अद्वैतसिद्धांतमें है। तातें वेदांतीनकूं तौ अतिप्रिय लगैगी। तथापि और कवि चतुर) यथार्थअर्थ जाननेमें समर्थ नहीं होनेतें। यथाबुद्धि यामें प्रवृत्त होवैगे। सो दिखावे हैः—(इहांसें तीनसवयेमें विपर्ययता नहीं है)

कोई कवि तौ शुक (पोपट) के न्यांई होवै

है॥ जैसे शुकपक्षी जितना शब्द सीखै है । उतनाही बोलै है। अधिक बोलि शकै नहीं॥ तैसे यह कवि पढे हुवे विषयका वर्णन करै। अधिक युक्ति करि कहि शकै नहीं॥ परंतु सो श्रेष्ठ है। काहेतें श्रद्धायुक्त जितना सीखै है। उतना दृढग्रहण करिके सोई कथन करै है ॥ तामें संशय औ विपर्यय कछु नहीं होवै। ऐसे ताके वचन भी अमृतमय लगै है ॥ इस कथनतें श्रद्धावान्‌पुरुषके स्वभावका सूचन किया ॥

कोई कवि तौ कोकिलाकी न्यांई होवै है॥ जैसे कोकिल पक्षी किसी अर्थवाला शब्द बोलै नहीं। औ किसीसें सीखै भी नहीं। परंतु ताका शब्द स्वभाविकही ऐसा लगै है की। मानौ सुनतेही रहिये। कदै तृप्ति होवै नहीं॥ तैसे यह कवि बिनाही पढै तैं। स्वभाविक ऐसा विषय कथन करै है की। सो किसीसें विरुद्ध होवै नहीं॥ यद्यपि यु-

क्ति औ प्रमाणादिकरि रहित होवै । तथापि ईश्वरादिविषयक होनेतें । ताका कोई द्वेष वा निषेध करै नहीं ॥ तातें सो भी प्रथमकविकी न्यांई श्रेष्ठहीं है । ऐसे मनमांहि धारि रहो ॥ इस कथनतें निःपक्षपातस्वभाववाले पुरुषका सूचन किया ॥

२ सारो सुनै भागवत कबहु ।
सारस तौ उपजावै नाहि ॥

कोई कवि तौ सारो (एक जातके पक्षी) की न्यांई होवै है । जैसे सारो पक्षी कछु बोलै नहीं है । परंतु श्रेष्ठगायनादिनादकूं सुनै है । तिस नादमें मृगनकी न्यांई तल्लीन होइ जावै है । औ मधुरनाद सुननेके वास्तेही विचरता रहै हैं । ताकूं ऐसा नाद कबहूक सुननेमें आवै है ॥ तिस नादजन्य रहस्यका विस्मरण कबहु होवै नहीं ॥ तैसे यह कवि बहुत वक्ता तौ नहीं होवै है । परंतु श्रेष्ठभगवत्कथादिकनकूं सुनै है ॥ तिस भगवत्-

कथामें तल्लीन होई जावै है। औ सो मधुरकथा सुननेके वास्तेही विचरता रहै है॥ ताकूं ऐसी भागवत (भगवतसंबंधी) कथा कबहूक सुननेमें आवै है॥ तिस कथाके रहस्यकूं कबहु भूलै नहीं। इस कथनतें रहस्याभिलाषी भाविकपुरुषके स्वभावका सूचन किया॥

कोई कवि तौ सारसकी न्यांई होवै है ॥ जैसे सारस पक्षी जो है। सो औरसबपक्षीनतें श्रेष्ठ औ चतुर है॥ याकी बानी अतिमधुर होवै है॥ परंतु तिस कथनकी वासना अंतरमें रहै नहीं॥ तैसे यह कवि औरसबकविनतें श्रेष्ठ औ चतुर है॥ परंतु तिन विषयनकी अंतरमें वासना रहै नहीं॥ अर्थात् ज्ञानी होवै है। सो तौ कछु शंका औ तर्कादिक उपजावै नाहि॥ इस कथनतें ज्ञानीके स्वभावका सूचन किया॥

३ हंस चुगै मुक्ताफल अर्थहि ।
सुंदर मानसरोवर तांहि ॥

कोई कवि तौ हंसकी न्यांई होवै है ॥ जैसे हंस पक्षी जो है । सो भी सारसकी न्यांई और सबपक्षीनतें श्रेष्ठ औ चतुर है ॥ याकी बानी अति मधुर होवै है। स्मरणशक्ति भी उत्तम होवै है। ताकी चंचूमें और एक ऐसा गुन होवैं है की । जलमें मिल्या हुवा दूध जलतें भिन्नकरिके पान करी लेवैं है ॥ औ निरंतर मानसरोवरमें वासकरिके तामांहितें मुक्ताफलनकूं चुगै है॥ तैसे यह कवि जो है सो भी उक्त (सारस्वत) कविकी न्यांई श्रेष्ठ औ चतुर है । याका बोलना अतिनम्र होवै है । श्रवण किया विषय विस्मरण होवै नहीं । ताकी बुद्धिमें और एक ऐसा गुन होवै हैं । की सारासारविवेककरि सारवस्तुका ग्रहण करै । औ असारका त्याग करै है ॥ औ निरंतर सतसं-

गमें वासकरिके सच्छास्त्रके सुंदर अर्थहि (कूं) धारण करै है ॥ इस कथनतें मुमुक्षुपुरुषके स्वभावका सूचन किया है ॥

४ काक कवीश्वर नीके जेते ।
सो सब दौरि करंकहि जांहि ॥३०॥

कोई कवि तौ काककी न्यांई होवै है ॥ जैसे काक पक्षी जो है सो और सब पक्षीनतें अधम होवै है । निरंतर बकताही रहै है । याका स्वर अतिकटुक होवै हैं सो सुनिके क्रोध उत्पन्न होवै है । काहुकू भी अच्छा लगैं नहीं हैं ॥ ऐसे जेते होवैं सो सब दौरि करंकहि । कहिये करंक नामके वृक्षके ऊपर जांहिके स्थित होवै हैं ॥ तैसे यह कवि जो है । सो ओरसबकविनतें अधम होवै है ॥ यद्यपि अनेकविषयनकरि निरंतर बकताहि रहै हैं । तथापि सो सो श्रेष्ठविषयतें रहित होनेतें विरस हैं ॥ सो सुनिके उत्तमपुरुषकूं क्रोध उत्पन्न

होवै है। कोई सत्पुरुष सराहै नहीं ॥ सो यद्यपि बडाचपल औ चंचलवक्ता होनेतें विषयीपुरुषनकूं तौ अति नीके लगैं हैं ॥ औ विषयीपुरुष याकूं कवीश्वर कहै है ॥ तथापि सो कवि नहिं है। किंतु कुकवि है ॥ इस कथनतें विषयी। द्वेषी। औ दोषदर्शीपुरुषनके स्वभावका सूचन किया है ॥

इस कथनका भाव यह हैः—यह विपर्ययआदिक जो मेरी काव्य हैं सो वांचिके। सुनिके वा पढिके। अर्थ ग्रहण करनेवाला कोई एक कवि (चतुर) निकलेगा ॥ सब कविनतें याका अर्थ नहीं होवैगा ॥ जैसे जो शुककी न्यांई कवि है। सो श्रद्धावान होनेतें जितना गुरुमुखद्वारा पढैगा । तितनाही ग्रहण करि लेवैगा ॥ कोकिलाकी न्यांई जो कवि है। सो पक्षपातरहित होनेतें न अपेक्षा करैगा। न तौ उपेक्षा करैगा। सारोकी न्यांई जो कवि है सो तौ रहस्याभिलाषी होनेतें यह सुनतेंही यामें लीन

होई जायगा ॥ सारसकी न्यांई जो कवि है सो ज्ञानी होनेतें सम्यक्प्रकारतें अंगीकार करिके अंतरमें वासनाहित रहैगा ॥ हंसकी न्यांई जो कवि है सो मुमुक्षु होनेतें विवेकबुद्धिकरि सारासारविचार करैगा ॥ औ जो काककी न्यांई कवि है। सो सो विषयी औ द्वेषी होनेतें शीघ्रही दोषकूं ग्रहण करैगा॥३०॥

१ नष्ट होय द्विज भ्रष्ट क्रिया करि ।
कष्ट किये नहि पावै ठौर ॥

जीवरूपही मानौ द्विज कहिये। जो ब्राह्मण है। सो अपने स्वरूपके विस्मरणरूप **भ्रष्ट क्रियाकरि नष्ट होय** । कहिये अपने सर्वाधिष्ठानपनेकूं छोडिके संसारी (जीव) भावकूं प्राप्त होवै है ॥ सो पीछे अनेकबहिरंगसाधनरूप **कष्टकूं किये** भी **ठौर** कहिये "मैं कर्त्ताभोक्तासंसारी हूं" इस भावकूं छोडिके ब्रह्मस्वरूप करि स्थितिकूं पावै नहिं॥

२ महिमा सकल गई तिनकेरी ।
रहत पगनतर सब शिरमोर ॥

तिनकेरी कहिये जीवरूप ब्राह्मणकी परमेश्वररूपकरि ब्रह्मादिककी स्तुति । औ पूजाकी विषयतारूप जो पूर्व महिमा थी । सो सकल गई । काहेतें । वास्तवपरमात्मा होनेतें सब शिरमोर । कहिये सर्वका शिरोमणिरूप है । सो पगनतर रहत । कहिये सर्वदेवआदिनके पादके तले दीनकी न्यांई पूजक होयके स्थित भयो है ॥

३ जित तित फिरै नहीं कछु आदर ।
तिनकूं कोउ न घालौ कोर ॥

जित तित कहिये चोराशीलक्षयोनिरुप पराये (पंचभूतनके) ग्रहनमें फिरै है । परंतु कहूं भी स्वरूपस्थितिजन्य स्वतंत्रतारूप कछु आदर मिलै नहीं । औ तिनकूं कोउ इष्टदेवादिक भी

स्वकर्मरूप श्रमविना कोर कहिये एक कवल भी घालै। कहिये माग्यो न देवै ॥

४ सुंदरदास कही समुझावै ।
ऐसी कोउ करौ मति और ॥ ३१ ॥

सुंदरदासजी कहीके समुझावै हैं की। ऐसी कहिये स्वरूपके विस्मरणरूप भ्रष्ट क्रिया। और कोउ पुरुष भी मति करौ। किंतु विचारआदिक जिस किस प्रकारकरि सदा स्वरूपमेंही रत रहौ ॥ ३१ ॥

१ शास्त्र रु वेद पुराण पढै किन ।
पुनि व्याकरण पढै जे कोइ ॥

अब इस अंगकी समाप्तिमें। पूर्वोक्त ज्ञानविषे जो असमर्थ होय। ताकूं परमेश्वरकी उपासनारूप साधन कर्त्तव्य है। ऐसे दिखावते हुये अपनी (दादूजीकी) संप्रदायके इष्ट जो रामचंद्र हैं।

ताके स्मरणपूर्वक गोप्यअर्थकरि शिरोमणिसिद्धांतकूं दिखावै हैं:—

सांख्य। योग। न्याय। वैशेषिक। मीमांसा। औ वेदांत। यह जो षट्शास्त्र हैं। रु कहिये अरु। ऋग्। यजु। साम। औ अथर्वण। ये चारि जो वेद हैं। ब्रह्म। पद्म। वैष्णव। शैव। भागवत नारदीय। मार्कंडेय। आग्नेय। भविष्य। ब्रह्मवैवर्त्त। लैंग। वाराह। स्कंध। वामन। कौर्म्य। मात्स्य। गारुड। औ ब्रह्मांड यह जो अष्टादश पुराण हैं। तिनकूं कोई पुरुष। किन कहिये क्यूं न पढै! पुनि पाणिनीआदिक जो नव व्याकरण हैं। तिनकूं जे कोइ पढै।

२ संध्या करै गहै षट्कर्मांहि।
गुन अरु काल विचारै सोइ ॥

प्रातःकाल। मध्यान्हकाल। औ सायंकालरूप तीनसमयमें संध्या गायत्रीकूं करै। औ स्नान।

जप। होम। आदिक षट्कर्मनिहं गहै। कहिये जो आचरै।

सोइ देश। काल। कर्म। आगम। औ आहारादिककी सात्विकता। राजसता औ तामसतामें उपयोगी सत्वादि गुननकूं। अरु काल कहिये। कालकरि उपलक्षित देशादिककूं। अथवा शांत। घोर। औ मूलवृत्तिरूप गुण औ कर्ममें उपयोगी औ अनुपयोगी शुभाशुभकालकूं जो विचारै॥

३ सीरा काम तबै बनि आवै।
मनमें सब तजि राखै दोइ॥

यद्यपि यह पूर्वोक्त आचार भी श्रेष्ठ है। औ परंपराकरि ज्ञानद्वारा मोक्षका कारण है। तथापि सो साक्षात् मोक्षका। वा ज्ञानका साधन नही होनेतें। तिसतें पूर्ण कार्य होवै नहीं॥ औ सीरा कहिये अतिशय करि श्रेष्ठ काम तब बनि आवै। कहिये सिद्ध होवै। जब मनमें सब पूर्वोक्तसा-

धनमें आग्रह तजि । कहिये छोडिके "राम" इन दोइ अक्षरनकूं हृदयमें राखै । कहिये तदाकार होयके रहै । यह मोक्षसाधनकी प्रीतिका निकट-द्वार है ॥

४ सुंदरदास कहै सुन पंडित ।
राम नाम बिनु मुक्ति न होई ॥३२॥

सुंदरदासजी कहैं हैं की । हे पंडित! सुन। सर्व शास्त्रनका सिद्धांत यह हैः—राम नाम बिनु मुक्ति न होई ॥ याका गोप्यअर्थ यह हैः—ब्रह्म औ आत्माकी एकताके जाननेवाला योगी । तदाकारवृत्ति करि जिस सत्यआनंदचिदात्माविषे रमते हैं । चिद्रूप परब्रह्म राम कहिये हैं ॥ तिस रामके नाम कहिये प्रसिद्धिअर्थ यह जो साक्षात्कार । तिस विना मुक्ति होवै नहीं । यातें रामके साक्षात्कारअर्थ रामकूं भजै ॥ ३२ ॥

॥ श्लोक ॥

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि ।
यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः ॥
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या ।
जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

पीवत रस विपरीत यह ।
तांहि होत निज ज्ञान ।
बहुरि जन्म होवै नहीं ।
रहत सु पूर्ण प्रमान ॥ १ ॥

इति रहस्यार्थदीपिकासहित विपर्ययको अंग
संपूर्ण ॥ २० ॥

॥अथ स्वरूप विस्मरणको अंग॥२१॥



॥ इंदव छंद ॥

जा घटकी उनहार है जैसिहि ।
ता घट चेतन तैसोहि दीसै ॥
हाथिकि देहमैं हाथिसौं मानत ।
चींटिकि देहमें चींटि करीसै ॥
सिंहकि देहमें सिंहसौं मानत ।
कीसकि देहमैं मानत कीसै ॥
जैसी उपाधि भई जहाँ सुंदर ।
तैसोहि होइ रह्यो नख शीसै ॥ १ ॥
जैसेंहि पावक काठकें योगतें ।
काठसो होइ रह्यो इक ठौरा ॥
दीरघकाठमें दीरघ लागत ।
चौरसकाठमें लागत चौरा ॥

---

१ कद ॥ २ बंदरकी ॥

आपनौं रूप प्रकाश करै जब ।
जारि करै तब औरको औरा ॥
तैसेंहि सुंदर चेतन आपहि ।
आपकूं जानत नाहिन बौरा ॥ २ ॥

॥ मनहर छंद ॥ प्रश्न ॥

अजर अमर अविगत अविनाशी अज ।
कहत सकल जन । श्रुति अवगाहेतें[3] ॥
निर्गुण निर्मल अति । शुद्ध निरबंध नित ।
ऐसेंहि कहत और ग्रंथनके थाहेतें ॥
व्यापक अखंड एक-रस परिपूरण है ।
सुंदर सकल रमि । रह्यो ब्रह्म ताहेतें ॥
सहज सदा उद्योत । याहितें अचंबा होत ।
आपहीकूं आप भूलि । गयो सो तौ काहेतें ३

॥ उत्तर ॥

जैसे मीन मांसकूं निगलि जात लोभ लगि ।

---

३ अर्थके जाननेतें ॥ ४ विचारनेतें ॥

लोहको कंटक नहि। जानत उमाहेतें ॥
जैसे कपि गागरमें। मूठ बांधि राखै सठ।
छांडि नहि देत सो तौ। स्वादहीके चाहेतें॥
जैसे शुक नारियर। चंचू मारि लटकत।
सुंदर सहत दुःख। देत याहि लाहेतें॥
देहको संयोग पाई। इंद्रिनके वश पऱ्यो।
आपहीकूं आप भूलि। गयो सुख चाहेतें॥४॥

॥ इंद्रव छंद ॥

ज्यूं कोइ मद्य पिये अति छाकत।
नाहि कछू सुधि है भ्रम ऐसो ॥
ज्यूं कोइ खाइ रहै ठग-मूरिहि।
जानै नहीं कछु कारन तैसो ॥
ज्यूं कोइ बालक शंक उपावत।
कंपि उठै अरु आनत भैसो ॥
तैसेहि सुंदर आपकूं भूलि स।

---

५ कफीवस्तुके चूरणकी मूरी (संपुट) ॥

देखहु चेतन मानत कैसो ॥ ५ ॥
ज्यूं कोइ कूपमें झांकि अलापँत ।
ऐसिहि भांति सु कूप अलापै ॥
ज्यूं जल हालत है लगि पौन क-
है भ्रमतें प्रतिबिंबहि कांपै ॥
देहके प्रानके औ मनके कृत ।
मानत है सब मोहिकूं व्यापै ॥
सुंदर पेच पऱ्यो अतिसै करि ।
भूलि गयो भ्रमते ब्रह्म आपै ॥ ६ ॥
ज्यूं द्विज कोउक छांडि महात्म्य ।
शूद्र भयो करि आपकूं मान्यो ॥
ज्यूं कोउ भूपति सोवत सैज सु ।
रंक भयो सुपने महि जान्यो ॥
ज्यूं कोउ रूपकि राशि अत्यंत कु-
रूप कहै भ्रम मैचकं आन्यो ॥

६ बोले ॥ ७ उन्मत्त ॥

तैसेहि सुंदर देहसो होयके ।
या ब्रह्म आपहि आप भूलान्यो ॥ ७ ॥
एकहि व्यापक वस्तु निरंतर ।
विश्व नहीं यह ब्रह्म विलासै ॥
ज्यूं नट मंत्रनसूं दृग बांधत ।
है कछु औरहि औरहि भासै ॥
ज्यूं रजनीमहि वूझ परै नहि ।
जौं लगि सूरज नाहि प्रकासै ॥
त्यूं यह आपहि आप न जानत ।
सुंदर व्है रह्यो सुंदरदासै ॥ ८ ॥

॥ मनहर छंद ॥

इंद्रिनकूं प्रेरी पुनि । इंद्रिनके पीछे पऱ्यो ।
आपनी अविद्या करि । आप तन गह्यो है ॥
जोइ जोइ देहकूं । संकट आई परै कछु ।
सोई सोई मानै आप । यातें दुःख सह्यो है ॥
भ्रमत भ्रमत कहूं । भ्रमको न आवै अंत ।

चिरकाल बीत्यो पै। स्वरूपकूं न लह्यो है॥
सुंदर कहत देखौ। भ्रमकी प्रबलताई।
भूतनमें भूत मिलि। भूत होइ रह्यो है॥९॥

जैसे शुक नलिका न। छांडि देत पगनतें।
जानै काहू और मोहि। बांधि लटकायो है॥
जैसे कपि गुंजनको। ढेर करि मानै आग।
आगे धरि तापै कछु शीत न गमायो है॥
जैसे कोऊ कारजकूं जात हुतो पूरवकूं।
भ्रमतें उलटि फिरि। पछिमकूं आयो है॥
तैसेहि सुंदर सब। आपहीकूं भ्रम भयो।
आपहीकूं भूलि करि। आपही बंधायो है॥१०॥

जैसे कोऊ कामनीके। हिये पर चूसे बाल।
सुपनेमें कहै मेरो। पुत्र कहूं गयो है॥
जैसे काहू पुरुषके। कंठ हुती मणि सोही।
ढूंढत फिरत कछु। ऐसो भ्रम भयो है॥

---

८ बालक॥

जैसे कोऊ बायु करि । बावरो बकत डोलै ।
औरहीकी और कहै । सुधि भूलि गयो है ॥
तैसेहि सुंदर निज । रूपकूं बिसारि देत ।
ऐसो भ्रम आपहीकूं । आप करि लयो है ११
दिन दिन छिन छिन । होइ जात भिन्न भिन्न ।
देहके संयोग पराधीन सो रहतु है ॥
शीत लगै घाम लगै । भूख लगै प्यास लगै ।
शोक मोह मानि अति खेदकूं लहतु है ॥
अंध भयो पंगु भयो । मूकहु बधिर भयो ।
ऐसे मानि मानि भ्रम-नदीमें बहतु है ॥
सुंदर अधिक मोहि । याहितें अचंबा आहि ।
भूलिके स्वरूपकूं । अनाथ सो कहतु है ॥१२॥
जैसे कोइ कहै मैं तौ । स्वपनेमें ऊंठ भयो ।
जागि करि देखै वही । मनुष्य स्वरूप है ॥
जैसे कोई राजा पुनि । सोवत भीखारी होई ।
आंख उघरै तौ महा-भूपनको भूप है ॥

जैसै कोउ भ्रमहुतें । कहै मेरो शिर कहां ।
भ्रमके गयेतें जानै शिर तद्रूप है ॥
तैसेही सुंदर यह भ्रम करि भूल्यो आप ।
भ्रमके गयेतें यह । आतमा अनूप है॥१३॥
जैसे काहू पोसतीकी । पाग परी भूमि पर ।
हाथ लेके कहै एक पाग मैं तौ पाई है ॥
जैसें शेखसल्ली मनोरथनको कीयो घर ।
कहै मेरो घर गयो । गागरी गिराई है ॥
जैसे काहू भूत लग्यो। बकत है आक बाक।
शुद्धि सब दूर भई। औरै मति आई है ॥
तैसेही सुंदर यह । भ्रमकारि भूलो आप ।
भ्रमके गयेतें एक आतमा सदाई है ॥१४॥
आपही चेतन यह। इंद्रिनि चेतन करि ।
आपही मगन होई। आनंद बढायो है ॥
जैसे नर शीतकाल। सोवत निहाली वोढ।

१ अफीमी ॥

आपही तपत होई । आप सुख पायो है ॥
जैसे बाल लकरीकूं । घोरा करि डाक चढै ।
आप असवार होई । आपही कुदायो है ॥
तैसेही सुंदर यह । जडको संयोग पाय ।
आप सुख मानि मानि । आपही भूलायो है१९

कहूं भूल्यो काम-रत । कहूं भूल्यो साधी जत ।
कहूं भूल्यो ग्रहमध्य । कहूं वनवासी है ॥
कहूं भूल्यो नीच मानि कहूं भूल्यो ऊंच मानि
कहूं भूल्यो मोह बांधि । कहूं तौ उदासी है ॥
कहूं भूल्यो मौन धरि । कहूं बकवाद करि ।
कहूं भूल्यो मक्के जाइ । कहूं भूल्यो कासी है ॥
कहत सुंदर अहंकारहूतें भूल्यो आप ।
एक आवै रौन अरु । दूजे आवै हासी है२०

मैं बहुत दुःख पायो । मैं बहुत सुख पायो ।
मैं अनंत पुण्य किये । मेरे अति पाप है ॥
मैं कुलीन विद्यावंत । पंडित प्रवीन महा ।

मैं तौ मूढ अकुलीन । मेरो नीचबाप है ॥
मैं हूं राजा मेरी आण ।फिरै चहुं चक्रमांहि ।
मै सो रंक द्रव्यहीन । मोहि तौ संताप है ॥
सुंदर कहत अहंकारहीतें जीव भयो ।
अहंकार गये यह । एकब्रह्म आप है ॥१७॥

देहही सु पुष्ट लगै । देहही दूबरी लगै ।
देहहीकूं शीत लगै । देहहीकूं तावरो[10] ॥
देहहीकूं तीर लगै । देहहीकूं तोप लगै ।
देहकूं कृपान[11] लगै । देहहीकूं घांवरो[12] ॥
देहही सुरूप लगै । देहही कुरूप लगै !
देहही यौवन लगै । देह वृद्ध दांवरो[13] ॥
देहहीसूं बांधी हेत । आपविषे मानि लेत ।
सुंदर कहत ऐसो । बुद्धिहीन बावरो ॥१८॥

---

१० धूप ॥ ११ तलवार ॥ १२ घाव ॥ १३ अंगभंग ॥

॥ इंदव छंद ॥

आपहि चेतन ब्रह्म-अखंडित ।
सो भ्रमतैं कछु अन्य परेखै ॥
ढूंढत ताहि फिरै जितही तित ।
साधत योग बनावत भेखै ।
औरहु कष्ट करै अतिशै करि ।
प्रत्यक्-आतमतत्त्व न पेखै ॥
सुंदर भूलि गयो निजरूपहि ।
है कर कंकन दर्पन देखै ॥ १९ ॥
सूत गलेमहि मेलि भयो द्विज ।
ब्राह्मण होइके ब्रह्म न जान्यो ॥
क्षत्रिय होइके छत्र धर्‍यो शिर ।
हयँ गज पैदलसू मन मान्यो ॥
वैश्य भयो वपुकी वय देखत ।
झूठप्रपंच बनीजहि ठान्यो ॥

---

१४ हयः—घोरा ॥

शूद्र भयो मिलि शूद्र-शरीरहि ।
सुंदर आप नहि पहिचान्यो ॥ २० ॥

ज्यूं रविकूं रवि ढूंढत है कहुं ।
तप्त मिलै तन शीत गमाऊं ॥
ज्यूं शशिकूं शशि चाहत है पुनि ।
शीतल व्है करि तप्त बुझाऊं ॥
ज्यूं सनिपात भये नर टेरत ।
है घरमें अपने घर जाऊं ॥
त्यूं यह सुंदर भूलि स्वरूपहि ।
ब्रह्म कहै कब ब्रह्महि पाऊं ॥ २१ ॥

आप नदेखत है अपनो मुख ।
दर्पन काट लग्यो अति थूला ॥
ज्यूं दृग देखततें रहि जात भ-
यो जबही पुंतरीपरि फूला ॥
छाय अज्ञान रह्यो अभिअंतर ।

१५ नत्रका तारा ॥

जानि शकै नांहि आतम-मूला ॥
सुंदर यूं उपज्यो मनके मल ।
ज्ञान विना निजरूपहि भूला ॥ २२ ॥

दीन हुवा बिललात फिर निव ।
इंद्रिनके वश छिल्लक छोलै ॥
सिंह नहीं अपनो बल जानत ।
जंबुक[16] ज्यूं जितही तित डोलै ॥
चेतनता बिसराइ निरंतर ।
ले जडता भ्रम गांठ न खोलै ॥
सुंदर भूलि गयो निजरूपहि ।
देह-स्वरूप भयो मुख बोलै ॥२३॥

मैं सुखिया सुख सैज सुखासन ।
हय् गज भूमि महा-रजधानी ॥
हूं दुखिया दिन रैन मरूं दुख ।
मोहि विपत्ति परी नहिं छानी ॥

---

१६ कोला.

हूं अतिउत्तम जाति बडोकुळ ।
हूं अतिनीच क्रिया कुळ हानी ॥
सुंदर चेतनता न संभारत ।
देहस्वरूप भयो अभिमानी ॥२४॥

गर्भविषे उतपत्ति भई जब ।
जन्म लियो शिंशु[17] सुद्धि न जानी ॥
बाळ कुंवार किशोर[18] युवादिक ।
वृद्ध भयो अति बुद्धि नशानी ॥
जैसिहि भांतिं भई वपुकी गति ।
तैसोहि होइ रह्यो यह मानी ॥
सुंदर चेतनता न संभारत ।
देहस्वरूप भयो अभिमानी ॥२५॥

ज्यूं कोइ साग करै अपनो घर ।
बाहिर जाइके भेख बनावै ॥

---

१७ बालक ॥ १८ कुमारअवस्थाके पीछेकी अवस्था.

मुंड मुंडाइ रु कान फराइ वि-
भूति लगाइ जटाहु वढावै ॥
जैसौंहि स्वांग करै वपुको पुनि ।
तैसौंहि मानत त्यूं हुइ जावै ॥
त्यूं यह सुंदर आप न जानत ।
भूलि स्वरूपहि और कहावै ॥२६॥
इति स्वरूप विस्मरणको अंग संपूर्ण ॥२१॥

अथ विचारको अंग ॥ २२ ॥

॥ मनहर छंद ॥

प्रथम श्रवण करि । चित्त एकाग्रहि धरि ।
गुरु संत आगम[1] कहैं सु उर धारियें ॥
दुतिये मनन वार वारहि विचारि देखै ।
जोइ कछु सुने तांहि । फेरिके संभारिये ॥

---

१ वेद ॥

तृतीयप्रकार निदिध्यासही जु नीके करि ।
निःसंग विचारतें अपनपो[2] सु टारिये ॥
तैसेही साक्षात याही । साधन करत होई ।
सुंदर कहत द्वैत-बुद्धिकूं निवारिये ॥ १ ॥
देखै तौ विचार करि। सुनै तौ विचार करि।
बोलै तो विचार करि । करै तौ विचार है ॥
खाय तौ विचार करि। पीवै तौ विचार करि।
सोवै तौ विचार करि। जागै तो न टार है॥
बैठै तौ विचार करि। उठै तौ विचार करि।
चलै तौ विचार करि । सोई मत सार है ॥
देई तौ विचार करी । लेई तो विचार करि।
सुंदर विचार कर । याहि निरधार है ॥२॥
एकही विचार करि । सुख दुःख सम जानै ।
एकही विचार करि । मल सब धोइ है ॥
एकही विचार करि । संसार-समुद्र तरै ।

२ स्थूल सूक्ष्म शरीरनका अभीमान ॥

एकही विचार करि । पारंगत होइ है ॥
एकही विचार करि । बुद्धि नानाभाव तजै ।
एकही विचार करि । दूसरो न कोइ है ॥
एकही विचार करि । सुंदर संदेह मिटे ।
एकही विचार करि । एकब्रह्म जोइ है ॥३॥

॥ इंदव छंद ॥

रूपको नाश भयो कछु देखिये ।
रूप अरूपहि मांही समावै ॥
रूपके मध्य अरूप अखंडित ।
सो तौ कहूं कछु जाय न आवै ॥
बीच अज्ञान भयो नवतत्त्वको ।
वेद पुराण सबै कोउ गावै ॥
सोइ विचार करै जब सुंदर ।
शोधत तांहि कहू नाहि पावै ॥४॥
भूमि सु तौ नहिं गंधकुं छांडत ।
नीर सु तौ रसतें नाहिं न्यारो ॥

तृतीयप्रकार निदिध्यासही जु नीके करि ।
निःसंग बिचारतें अपनपो[2] सु टारिये ॥
तैसेही साक्षात याही । साधन करत होई ।
सुंदर कहत द्वैत-बुद्धिकूं निवारिये ॥ १ ॥
देखै तौ विचार करि। सुनै तौ विचार करि।
बोलै तो विचार करि । करै तौ विचार है ॥
खाय तौ विचार करि । पीवै तौ विचार करि।
सोवै तौ विचार करि। जागै तो न टार है॥
बैठै तौ विचार करि । उठै तौ विचार करि।
चलै तौ विचार करि । सोई मत सार है ॥
देई तौ विचार करी । लेई तो विचार करि ।
सुंदर विचार कर । याहि निरधार है ॥२॥
एकही विचार करि । सुख दुःख सम जानै ।
एकही विचार करि । मळ सब धोइ है ॥
एकही विचार करि । संसार-समुद्र तरै ।

२ स्थूल सूक्ष्म शरीरनका अभीमान ॥

एकही विचार करि । पारंगत होइ है ॥
एकही विचार करि। बुद्धि नानाभाव तजै ।
एकही विचार करि । दूसरो न कोइ है ॥
एकही विचार करि । सुंदर संदेह मिटे ।
एकही विचार करि । एकब्रह्म जोइ है ॥३॥

॥ इंदव छंद ॥

रूपको नाश भयो कछु देखिये ।
रूप अरूपहि मांही समावै ॥
रूपके मध्य अरूप अखंडित ।
सो तौ कहूं कछु जाय न आवै ॥
बीच अज्ञान भयो नवतत्त्वको ।
वेद पुराण सबै कोउ गावै ॥
सोइ विचार करै जब सुंदर ।
शोधत तांहि कहू नाह पावै ॥४॥
भूमि सु तौ नहिं गंधकुं छांडत ।
नीर सु तौ रसतें नाहिं न्यारो ॥

कोउ कहै ग्रह आइ लगै तातें ।
पुण्य किये कछु होइ उबारा ॥
कोइ कहै यह चूक परी कछु ।
देवनि दोश दियो निरधारा ॥
तैसेहि सुंदर तंत्रनिके मत ।
भिन्नहि भिन्न कहैं जु विचारा ॥९॥

जे विषया-तम पूरि रहै तिन-
कू रजनी महिं बादर छायो ॥
कोउ मुमुक्षु किये गुरुदेव तु ।
निर्भययुक्त जु शब्द[३] सुनायो ॥
बादर दूर भये उनके पुनि ।
तारनसूं रजु-सर्प दिखायो ॥
सुंदर शूर प्रकाशतही भ्रम ।
दूर भयो रजुका रजु पायो ॥१०॥

कर्म शुभाशुभकी रजनी पुनि ।

३ महावाक्य ॥

अर्ध तमोमय अर्ध उजारी ॥
भक्ति सु तौ यह है अरुणोदय[४] ।
अंत निशा दिन संधि बिचारी ॥
ज्ञान सु भान उदै निशि-वासर ।
वेद पुराण कहै जु पुकारी ॥
सुंदर तीनप्रभाव बखानत ।
यूं निहचै समुझै विधि सारी ॥ ११ ॥

॥ मनहर छंद ॥

देहहीसो आप मानि । देहहीसो होइ रह्यो ।
जडता अज्ञान तम । शूद्र सोई जानिये ॥
इंद्रिनके व्यारानि । अत्यंत निपुण बुद्धि ।
तम रज दुहूं कारि । वैश्यहु प्रमानिये ॥
अंतहकरणमांहि । अहंकार बुद्धि जाके ।
रजगुण वर्धमान । क्षत्री पहिचानिये ॥
सत्वगुण बुद्धि एक । आतमविचार जाके ।

४ सूर्योदय ॥ ५ अधिकता ॥

सुंदर कहत वही ब्राह्मण बखानिये ॥१२॥
आतमाके विषे देह । आई करि नाश होई ।
आतम अखंड सदा । एकही रहतु है ॥
जैसे साप कंचुकीकूं ।लिये रहै कोउ दिन ।
जीरन उतारि करि । नौतन गहतु है ॥
जैसे द्रुमहुके पत्र । फूल फल आई होत ।
तिनके गयेतें द्रुम । औरहु लहतु है ॥
जैसे व्योमँमांहि अभ्रँ । होईके बिलाई जात।
ऐसोंहि विचार करि । सुंदर कहतु है ।१३।
खँरीकी डरीसूं अंक लिखत विचारियत ।
लिखत लिखत वही । डरी घास जातु है ॥
लेखो समुझ्यो है जब समुझ परी है तब ।
जोई कछु सही भयो । सोई ठहरातु है ॥
दारहीसूं दार मथि । प्रगट पावक भयो ।
वहै दार जारी पुनि । पावक समातु है ॥

६ आकाश ॥ ७ वादल ॥ ८ लिखनेकी खडी ॥

तैसेही सुंदर बुद्धि । ब्रह्मको विचार करि ।
करत करत वह । बुद्धिहू विलात है ॥१४॥
आपकूं समुझि देखौ । आपहि सकल मांहि ।
आपहीमें सकल जगत देखियतु है ॥
जैसे व्योम व्यापक अखंड परिपूरण है ।
बादल अनेक नाना-रूप लेखियतु है ॥
जैसे भूमि घट जल । तरंग पावक दीप ।
वायुमें बधुरा[1] सोई । विश्व रेखियतु है ॥
ऐसेही विचारत विचारहू विलीन होई ।
सुंदरही सुंदर रहत पेखियतु है ॥ १५ ॥
देहको संयोग पाई । जीव ऐसो नाम भयो ।
घटके संयोग घटाकाशही कहायो है ॥
ईश्वरहि सकल विराटमें विराजमान ।
मठके संयोग मठाकाश नाम पायो है ॥
महाकाशमांहि सब घट मठ देखियत ।

---

१ भ्रमण.

बाहिर भीतर एक गगन समायो है ॥
तैसेहि सुंदर ब्रह्म ईश्वर अनेक जीव ।
द्विविध-उपाधि-भेद । ग्रंथनमें गायो ॥१६॥

॥ प्रश्न ॥

देह दुःख पावै किधों ?इंद्रि दुःख पावै किधों ?
प्राण दुःख पावै किधों? लहै न अहोरकूं ?
मन दुःख पावै किधों ?बुद्धि दुःख पावै किधों?
चित्त दुःख पावै किधों? दुःख अहंकारकूं ?
गुण दुःख पावै किधों?श्रोत्र दुःख पावै किधों?
प्रकृति दुःख पावै किधों? पुरुष आधारकूं ?
सुंदर पूछत कछु जानि न परत तातें
कौन दुःख पावै गुरु कहौ या विचारकूं१७

॥ उत्तर ॥

देहकूं तो दुःख नांहि । देह पंचभुतनकी ।
इंद्रिनकूं दुःख नांहि । दुःख नांहि प्राणकूं ।
मनहूकूं दुःख नांहि । बुद्धिहूकूं दुःख नांहि ।

चित्तहूंकूं दुःख नांहि। नांहि अभिमानकूं ॥
गुणनकूं दुःख नांहि। श्रोत्रहूकूं दुःख नांहि॥
प्रकृतिकूं दुःख नांहि। दुःख न पुमानंकूं ॥
सुंदर विचारी ऐसे। शिष्यसूं कहत गुरु।
दुःख एक देखियत। वीचंके अज्ञानकूं॥१८॥

पृथिवि भाजन अंग। कनक कुंडल पुनि॥
जळहि तरंग दोऊ। देखि करि मानिये॥
कारण कारज एतो। प्रगटही थूलरूप।
तांहितें नजरमांहि। देखि करि आनिये॥
पावक पवन व्योम। एतो नही देखियत।
दीपक बधूरा अभ्र। प्रत्यक बखानिये॥
आतमा अरूप अति-सूक्ष्मतें सूक्ष्म है।
सुंदर कारण तातें। देहमें न जानिये॥१९॥

---

१० पुरुष ॥ ११ सत्य औ असत्यके बीच (अ-
निर्वचनीय) ॥

जैन मत उहै जिंनराजकूं[12] न भूलि जाय।
दान तप शील सत्य भावनातें तरिये ॥
मन वच काय शुद्ध। सबसूं दयालु रहै।
दोषबुद्धि दूरि करि। दया उर धरिये ॥
तीर्थ[13] नाम तत्र जत्र। मनको निरोध होई।
बोधक विचार शोध। आतमाको करिये ॥
सुंदर कहत ऐसे। जीवतही मुक्ति होई।
मुएतें मुगति कहै। ताकूं परहरिये ॥२०॥
देह वोर देखिये तौ। देह पंचभूतनको।
ब्रह्मा अरु कीट लग। देहही प्रधान है ॥
प्राण वौर देखिये तौ। प्राण सबहीके एक।
क्षुधा पुनि तृषा दोऊ। व्यापत समान है ॥
मन वौर देखिये तौ। मनको स्वभाव एक।
संकल्प विकल्प करै। सदाही अज्ञान है ॥

१२ जैनमतका तीर्थंकर ॥ १३ ज्ञानी ॥ १४ उपदेश ॥

आतमविचार किये । आतमाही दीसै एक ॥
सुंदर कहत कोऊ । देखिये न आन है॥२१॥
॥ इति विचारको अंग संपूर्ण ॥ २२ ॥

॥अथ सांख्यज्ञानको अंग ॥२३॥

॥ मनहर छंद ॥

क्षिति[1] जल पावक पवन नभ मिलि करि ॥
शबद रु सपरस । रूप रस गंध जू ॥
श्रोत्र त्वक चक्षु घ्राण । रसना रसको ज्ञान ॥
वाक पाणि पाद पायु । उपस्थहि बंध जू ॥
मन बुद्धि चित्त अहंकार ए चौवीश तत्व ।
पंचविंश जीवतत्व । करत है द्वंद जू ॥
षट्विंश जानु ब्रह्म । सुंदर सु निहकर्म ॥
व्यापक अखंड एकरस निरसंध जू ॥ १ ॥

---

१ पृथ्वी ॥

श्रोत्र दिग त्वक वायु। लोचन प्रकाश रवि।
नाशिका अश्विनी जिह्वा।वरुण वखानिये॥
वाक अग्नि हस्त इंद्र। चरन उपेंद्र बल।
मेढु प्रजापति गुदा। मृत्युहूकूं ठानिये॥
मन चंद्र बुद्धि विधि। चित्त वासुदेव आहि।
अहंकार रुद्रको। प्रभाव करि मानिये॥
जाकी सत्ता पाई सब। देवता प्रकाशत है।
सुंदर सो आतमाहि। न्यारो करि जानिये २

॥ इंदव छंद ॥

श्रोत्र सुनैं द्रग देखत हैं रस-
ना रस घ्राण सुगंध पियारो॥
कोमलता त्वक जानत है पुनि।
बोलत है मुख शब्द उचारो॥
पाणि ग्रहै पद गौन करै मल-
मूत्र तजै उभयो अध-द्वारो॥
जास प्रकाश प्रकाशत हैं सब।

सुंदर सोइ रहै घट न्यारो ॥ ३ ॥

बुद्धि भ्रमै मन चित्त भ्रमै अहँ-
कार भ्रमैं कछु जानत नांहि ॥
श्रोत्र भ्रमै त्वक्क घ्राण भ्रमै रस-
ना दृग देखि दशोंदिशि जांहीं ॥
वाक्क भ्रमै कर पाद भ्रमै गुद-
द्वार उपस्थ भ्रमै कहु कांहीं ॥
तेरे भ्रमाय भ्रमै सबही पुनि ।
सुंदर क्यूं तुं भ्रमै उनमांही ॥ ४ ॥

बुद्धिको बुद्धि रु चित्तको चित्त ।
अहंको अहं मनको मन सोई ॥
नैनको नैनहि बैनको बैनहि ।
कानको कान त्वचा त्वक्क होई ॥
घ्राणको घ्राणहि जीभको जीभहि ।
हाथको हाथ पगौ पग दोई ॥
शीशको शीशहि प्रानको प्रानहि ।

जीवको जीवहि सुंदर सोई ॥ ५ ॥

॥ मनहर छंद ॥ ॥ प्रश्न ॥

कैसंके जगत यह । रच्यो है जगतगुरु ?
मोसूं कहौ प्रथमाहि । कौन तत्त्व कीनो है ?
पुरुष कि प्रकृति कि । महतत्व अहंकार ।
किधौं उपजाय तम-रज-सत्व तीनो हैं ?
किधौं व्योम वायु तेज। आप कै अवनि कीन्ह ?
किधौं पंचविषय पसार करि लीनो है ?
किधौं दशइंद्रि किधौं । अंतहकरण कीन्ह ?
सुंदर कहत किधौं । सकलविहीनो है ? ॥६॥

॥ उत्तर ॥

ब्रह्मतें पुरुष अरु । प्रकृति प्रगट भई ।
प्रकृतितें महतत्व । पुनि अहंकार है ॥
अहंकारहूतें तीन-गुन सत्व रज तम ।
तमहूतें महाभूत । विषय पसार है ॥
रजहुतें इंद्री दश । पृथक पृथक भई ।

सत्वहूतें मनआदि । देवता विचार है ॥
ऐसे अनुक्रम करि । शिष्यसूं कहत गुरु ।
सुंदर सकल यह । मिथ्या भ्रम-जार है॥७॥

॥ प्रश्न ॥

मेरो रूप भूमि है कि ? मेरो रूप आप है कि?
मेरो रूप तेज है कि ? मेरो रूप पौन है ?
मेरो रूप व्योम है कि ? मेरो रूप इंद्रि दश ?
अंतःकरण है किं ? बैठो है कि गौन है ?
मेरो रूप त्रिगुन कि ? अहंकार महत्तत्व ?
प्रकृति पुरुष किधौं ? बोलै है कि मौन है ?
मेरो रूप स्थूल है कि ? सूक्ष्म है मेरो रूप ?
सुंदर पूछत गुरु । मेरो रूप कौन है ? ॥८॥

॥ उत्तर ॥

तूं तौ कछु भूमि नांहि । अप तेज वायु नांहि ।
व्योम पंचविषै नांहि । सो तौ भ्रमकूप है ॥

तूं तौ कछु इंद्रिय रु अंतहकरण नांहि ।
तीनगुण तूं तौ नांहि । न तौ छांहि धूप है ॥
तूं तौ अहंकार नांहि । पुनि महतत्व नांहि ।
प्रकृति पुरुष नांहि । तूं तौ स्वअनूप है ॥
सुंदर विचार ऐसे । शिष्यसूं कहत गुरु ।
नांहिं नांहि कहत रहैं सो तेरो रूप है ॥९॥
तेरो तौ स्वरूप है अनूप चिदानंद घन ।
देह तौ मलीन जड । या विवेक कीजिये ॥
तूं तौ निहसंग निराकार अविनाशी अज ।
देह तौ विनाशवंत । ताहि नहिं धीजिये ॥
तूं तौ षटउरमी रहित सदा एकरस ।
देहके विकार सब । देह शिर दीजिये ॥
सुंदर कहत यूं विचारि आपु भिन्न जानि ।
परकी उपाधि कहा । आप खैंचि लीजिये१०
देहही नरकरूप । दुःखको न वारपार ।
देहही है स्वर्गरूप । झूठो सुख मान्यो है ॥

देहहीकूं बंध-मोक्ष। देह अपरोक्ष-मोक्ष।
देहहीके क्रिया कर्म। शुभाशुभ ठान्यो है॥
देहहीमें और देह। सुखी ह्वै विलास करै।
ताहिकूं समझे बिना। आतमा बखान्यो है॥
दोउ देहतें अलिप्त। दोउको प्रकाशक है।
सुंदर चैतन्यरूप न्यारो करि जान्यो है ११

देह हलै देह चलै। देहहीमूं देह मिलै।
देह खाइ देह पीवै। देहही मरन है॥
देहही हिमाळे गलै। देहही पावक जलै।
देह रणमांहि झूझै। देहही वरत है॥
देहही अनेककर्म। करत विविधभांति।
चमककी सत्ता पाई। लोह ज्यूं फिरत है॥
आतमा चैतन्यरूप। व्यापक, साक्षी अनूप।
सुंदर कहत सो तौ। जन्मे न मरत है॥१२॥

॥ प्रश्नोत्तर ॥

देह यह किनको है? देह पंच भूतनको।

पंचभूत कौनतें हैं ? तामसाऽहंकारतें ॥
अहंकार कौनतें है ? जासूं महतत्व कहैं ।
महतत्व कौनतें है ? प्रकृति मंझारतें ॥
प्रकृति सो कौनतें है ? पुरुष है जाको नाम ।
पुरुष सो कौनतें है ? ब्रह्म निराधारतें ॥
ब्रह्म अब जान्यो हम । जान्यो है तौ निश्चैकर ।
निश्चै हम कियो है तौ । चुप मुखद्वारतें ॥ १३ ॥

॥ पूर्ववत् ॥

एक घटमांहि तौ सुगंधजल भरि राख्यो ।
एक घटमांहि तौ दुर्गंधजल भर्‍यो हैं ॥
एक घटमांहि पुनि । गंगोदक राख्यो आनि ।
एक घटमांहि आनि । मदिराहु कर्‍यो हैं ॥
एक घृत एक तेल । एकमांहि लघुनीन ।
सबहीमें सविताको । प्रतिबिंब पर्‍यो है ॥
तैसेही सुंदर ऊंच-नीच-मध्य एकब्रह्म ।

---

२ सूर्यको ॥

देह भेद देखि भिन्नभिन्न नाम धर्यो है १४

भूमिपर अप अपहूके परे पावक है।
पावकके परे पुनि। वायुहू वहत है॥
वायू परे व्योम व्योमहूके परे इंद्रि दश।
इंद्रिनके परे अंतःकरण रहत है॥
अंतहकरण पर। तीनोगुण अहंकार।
अहंकार पर महतत्वकूं लहत है॥
महतत्व पर मूल-माया माया परब्रह्म।
ताहीतें परातपर। सुंदर कहत है॥ १५॥

भूमि तौ विलीन गंध। गंध तौ विलीन अप।
अपहू विलीन रस। रस तेज खात है।
तेज रूप रूप वायु। वायुही सुपर्स लीन।
सो परस व्योम शब्द। तमही बिलात है॥
इंद्रि दश रज मन। देवता विलीन सत्व।
तीनगुण अहं महतत्व गलि जात है॥
महतत्व प्रकृति रु। प्रकृति पुरुष लीन।

सुंदर पुरुष जाई । ब्रह्ममें समात है ॥१६॥
आतमा अचल शुद्ध । एकरस रहै सदा ।
देह-व्यवहारनमें । देहहीसो जानिये ।
जैसे शशिमंडल अभंग नहिं भंग होइ ।
कळा आवै जाई घट बढ सो बखानिये
जैसे द्रुप स्थिर नदीहूके तट देखियत ।
नदीके प्रवाहमांहि । चलतसो मानिये ॥
तैसे आतमा अनंत । देहसो प्रकाश करै ।
सुंदर कहत यूं विचारि भ्रम मानिये ॥१७॥
आतमा शरीर दोऊ । एकमेक देखियत ।
जबलग अंतहकरणमें अज्ञान है ॥
जैसे अंधियारी रैन । घरमें अंधेरो होइ ।
आंखिनको तेज ज्यूंको । त्यूंही विद्मान है ॥
यद्यपि अंधेरेमांहि । नैनकूं न सूझै कछु ।
तद्यपि अंधेरेसूं अलेप सो बखान है ॥
सुंदर कहत तौलौं । एकमेक जानियत ।

जौ लौं नहिं प्रगट प्रकाश ज्ञानभान है ॥१८॥
देह जड़-देवलमें । आतम चेतनदेव ।
याहिकूं समुझि करि । यासूं मन लाइये ॥
देवलकूं बिनसत । बेर नहिं लागै कछु ।
देव तौ अभंग सदा । देवलमें पाइये ॥
देवकी शकति करि । देवलकी पूजा होत ।
भोजन विविधभांति । भोगहू लगाइये ॥
देवलतें न्यारो देव । देवलमें देखियत ।
सुंदर विराजमान । और कहां जाइये ॥१९॥
प्रीतिसी न पाती कोऊ । प्रेमसे न फूल और ।
चित्तसो न चंदन सनेहसो न सेहरा ॥
हृदैसो न आसन सहजसो न सिंहासन ।
भावसी न सैज और । शून्यसो न गेहरा[3] ॥
शीलसो न स्नान अरु ध्यानसो न धूप और ।
ज्ञानसो न दीपक अज्ञानतमके हैरा[4] ॥

---

३ घर ४ हरन करनेवाला ॥

मनसी न माला कोऊ। सोहं सो न जाप और।
आतमासो देव नांहि। देहसो न देहरा॥२०॥
श्वासोश्वास रातिदिन। सोहं सोहं होय जाय।
याहि माला बारंबार। दृढके धरतु है॥
देह परे इंद्रि परे। अंतहकरण परे।
एकही अखंड जाप। तापकूं हरतु है॥
काष्ठकी रुद्राक्षकी रु सूतहूकी माला और।
इनके फिराय कछु। कारज सरतु है!
सुंदर कहत तातें। आतमा चैतन्यरूप।
आपको भजन सो तौ आपही करतु है॥२१॥
क्षीर नीर मिले दोऊ। एकठेही होइ रहे।
नीर जैसे छांडि हंस। क्षीरकूं गहतु है॥
कंचन में और धातु। मिलि करि बानपऱ्यो।
शुद्ध करिं कंचन सुनार ज्यूं लहतु है॥
पावकहू दारं मध्य। दारहूसो होइ रह्यो।

५ काष्ठ॥

मथि करि काढै वह। दारकूं दहतु है ॥
तैसेही सुंदर मिल्यो। आतमा अनातमा जू।
भिन्न भिन्न करै सो तौ। सांख्यही कहतु है२२
अन्नमयकोश सो तौ। पिंड है प्रगट यह।
प्राणमयकोश पंच-वायूही वखानिये ॥
मनोमयकोश पंच-कर्मइंद्रि है प्रसिद्ध।
पंचज्ञान इंद्रिय विज्ञानमय जानिये ॥
जाग्रत स्वपनविषे। कहिये चत्वार कोश।
सुषुपतिमांहि कोश। आनंदमैं मानिये ॥
पंचकोश आतमाको। जीव नाम कहियत।
सुंदर शंकर-भाष्य। सांख्य ये वखानिये२३
जाग्रत-अवस्था जैसे। सदनमें वैठियत।
वहां कछु होइ तांहि। भलीभांति देखिये ॥
सुपन-अवस्था जैसे। देहरीमें वैठे जाई।
रहै जोई वहां ताकी। वस्तु सब लेखिये ॥
सुषुपति भोंहरेमें। वैठते न सूझ परै।

वहां अंधघोर तहां । कछूही न पेखिये ॥
व्योम अनुस्यूत घर देहरे भोंहरे मांहि ।
सुंदर साक्षीस्वरूप । तुरिया विशेषिये ॥२४॥
जाग्रतकेविषे जीव । नैननमें देखियत ।
विविध-व्योहार सब । इंद्रिनि गहतु है ॥
सुपनेहुमांहि पुनि । वैसेही व्योहार होत ।
नैननतें आई करि कंठमें रहतु है ॥
सुषुपति हृदेमें विलीन होई जात सब ।
जाग्रत सुपनकी तौ । सुधि न लहतु है ॥
तीनहू अवस्थाकूंही । साक्षी जब जानै आप ।
तुरिया स्वरूप यह । सुंदर कहतु है ॥२५॥

॥ इंदव छंद ॥

भूमितें सूक्षम आपकूं जानहु ।
आपतें सूक्षम तेजको अंगा ॥
तेजतें सूक्षम वायु वहै नित ।
वायुतें सूक्षम व्योम उतंगा ॥

व्योमतेँ सूक्षम है गुण तीन ति-
हूंतेँ अहं महत्त्व प्रसंगा ॥
ताहितेँ सूक्षम मूळ प्रकृति जु।
मूळतें सुंदर ब्रह्म अभंगा ॥ २६ ॥
ब्रह्म निरंतर व्यापक आग्नि ।
अरूप अखंडित है सबमांही ॥
ईश्वर पावक राशि प्रचंड जु ।
संग उपाधि लिये बरतांही ॥
जीव अनंत मशाळ चिराग सु ।
दीप पतंग अनेक दिखांही ॥
सुंदर द्वैतउपाधि मिटै जब ।
इश्वर जीव जुदे कछु नांही ॥ २७ ॥
ज्यूं नर पावक लोह तपावत ।
पावक लोह मिले सु दिखाहि ॥
चोट अनेक परै घनकी शिर ।

---

६ समूह ॥

लोह बधै कछु पावक नाहीं ॥
पावक लीन भयो अपने घर ।
शीतल लोह भयो तब तांहीं ॥
त्यूं यह आतम देह निरंतर ।
सुंदर भिन्न रहै मिलि मांहि ॥ २८ ॥

आतम चेतन शुद्ध निरंतर ।
भिन्न रहै कहूँ लिप्त न होई ॥
है जड चेतन अंतहकर्ण जु ।
शुद्ध अशुद्ध लिये गुन दोई ॥
देह अशुद्ध मलीन महाजड ।
हालि न चालि शकै पुनि होई ॥
सुंदर तीनविभाग किये बिन ।
भूलि परै भ्रमतें सब कोई ॥ २९ ॥

सवैया (इकतीसमात्रक) ॥

ब्रह्म अरूप अरूपी पावक ।

व्यापक जुगलँ न दीसत रंग ॥
देह दारतें प्रगट देखियत ।
अंतःकरण आग्नि ह्व अंग ॥
तेज प्रकास कल्पना तौंलगि ।
जौंलगि रहै उपाधि-प्रसंग ॥
जहँके तहां लीन पुनि होई ।
सुंदर दोई सदा अभंग ॥ ३० ॥
देह सराव तेल पुनि मारुत ।
वाती अंतःकरण विचार ॥
प्रगट ज्योति यह चेतन दीसै ।
जातें भयो सकल उजियार ॥
व्यापक अग्नि मथन करि जोए ।
दीपक बहुतभांति विस्तार ॥
सुंदर अद्भुत रचना तेरी ।
तूंही एक अनेकप्रकार ॥ ३१ ॥

---

७ दो ॥ ८ वायु (प्राण) ॥

तिलमें तेल दूधमें घृत है ।
दारमांहि पावक पहिचान ॥
पुहपमांहि[९] ज्यूं प्रगट वासना ।
ईखमांहि रस कहत बखान ॥
पोसतिमांहि अफीम निरंतर ।
वनस्पतीमें शहंद[१०] प्रमान ॥
सुंदर भिन्न मिल्यो पुनि दीसत ।
देहमांहि यूं आतम जान ॥ ३२ ॥

सवैया (बत्तीसमात्रक) ॥

जाग्रत स्वप्न सुषूपति तीनूं ।
अंतःकरण अवस्था पावै ॥
प्राण चलै जाग्रत अरु स्वप्न ।
सुषूपतिमें कछु वे न रहावै ॥
प्राण गयेतें रहै न कोऊ ।
सकल देखते थाट बिलावै ॥

---

९ फूलमाहिं ॥ १० मध ॥

सुंदर आतमतत्व निरंतर ।
सो तौ कितहू जाय न आवै ॥ ३३ ॥

सवैया (इकतीसमात्रक) ॥

पंद्रहतत्व स्थूळकुंभमें ।
सूक्षम लिंग भर्‍यो ज्यूं तोयं[11] ॥
इहां जीव आभास जानु उत ।
ब्रह्म इंदु[12] प्रतिबिंब जु दोय ॥
घट फूटे जल गयो विलय व्है ।
अंतःकरण कहै नहिं कोय ॥
तब प्रतिबिंब मिलै शशिही मांहिं ।
सुंदर जीव ब्रह्ममय होय ॥ ३४ ॥

॥ मनहर छंद ॥

जैसे व्योम कुंभके बाहिर अरु भीतर है ।
कोऊ नर कुंभकूं हजारकोश ले गयो ।
ज्यूंही व्योम इहांत्यूं ही । उहां पुनि है अखंड।

११ पानी ॥ १२ चंद्रमा ॥

इहां न बिछोह न उहां मिलापके भयो ॥
कुंभ तौ नयो पुरानौ। होइके बिनशि जाइ।
व्योम तौ न व्है पुरानो। न तौ कछु व्है नयो
तैसेही सुंदर देह। आवै रहै नाश होइ।
आतमा अचल अविनाशी है अनामयो[13] ॥३५॥
देहके संयोगहीतें। शीत लगै घाम लगै।
देहके संयोगहीतें। क्षुधा तृषा पौनकूं[14] ॥
देहके संयोगहीतें। कटुक-मधुर स्वाद।
देहके संयोग कहै। खाटो खारो लौनकूं ॥
देहके संयोग कहै। मुखतें अनेकबात।
देहके संयोगही पकरि रहै मौनकूं ॥
सुंदर देहके योग। दुःख मानै सुख मानै।
देहको संयोग गये। दुःख सुख कौनकूं॥३६॥
आपकी प्रसंशा सुनि। आपही खुशाल[15] होई।

---

१३ दुःखरहित (आनंदरूप) १४ पवन (प्राण)कूं
१५ आनंदित ।

आपहीकी निंदा सुनि । आप मुरझाइ है ॥
आपहीकूं सुख मानि। आप सुख पावत है।
आपहीकूं दुःख मानि । आप दुःख पाइ है॥
आपहीकी रक्षा करै । आपहीकी घात करै ।
आपही हत्यारो होई । गंगा जाई नाई है ॥
सुंदर कहत ऐसे । देहहीकूं आप मानि ।
निजरूप भूलिके करत हाइ हाइ है ॥ ३७ ॥

इति सांख्यज्ञानको अंग संपूर्ण ॥ २३ ॥

॥ अथ अपने भावको अंग ॥ २४ ॥

—— ० ——

॥ इंदव छंद ॥

एकहि आपनु भाव जहां तहँ ।
बुद्धिकेँ योगतेँ विभ्रम भासै ॥
जो यह क्रूर तुं क्रूर वही पुनि ।
याकेँ खसेतेँ उहां पुनि खासै ॥

जो यह साधु तु साधु वहै पुनि ।
याके हसेतें उहां पुनि हासै ॥
जैसाहि आप करै मुख सुंदर ।
तैसाहि दर्पणमाहिं प्रकाशै ॥ १ ॥

॥ मनहर छंद ॥

जैसे श्वान काचके सदेंनमध्य देखि और ।
भूंकि भूंकि मरत करत अभिमान जू ॥
जैसे गज फाटिक शिलासूं लरि तौरे दंत ।
जैसे सिंह कूपमांहि । उझकै भुलान जू ॥
जैसे कोउ फेरि खात । फिरत सुदेखै जग ।
तैसेही सुंदर सब । तेरोही अज्ञान जू ॥
अपनोही भ्रम सो तौ । दूसरो दिखाइ दंत ।
आपकूं विचारे कोऊ । देखिये न आन जू२॥
नीच-ऊंच-भलो वुरो । सज्जन दुर्जन पुनि ।
पंडित-मूरख शत्रु-मित्र रंक-राव है ॥

---

१ घर मध्य ॥ २ प्रतिध्वनि ॥

मान-अपमान पुण्य-पाप सुख-दुःख सोऊ ।
स्वरग-नरक बंध-मोक्षहूका चाव है ॥
देवता-असुर भूत-प्रेत कीट-कुंजरहू ।
पशु अरु पंछी श्वान । सूकर बिलाव है ॥
सुंदर कहत यह । एकही अनेकरूप ।
जोई कछु देखिये सो । अपनोही भाव है॥३॥
याहीके जागत काम । याहीके जागत क्रोध।
याहीके जागत लोभ । यही मोह माता है ॥
याहीको तौ याही बैरी ।याहीको तौ याही मित्र
याकूं याही सुख देत । याही दुःख दाता है ॥
याही ब्रह्मा याही रुद्र । याही विष्णु देखियत।
याही देव दैत यक्ष । सकल संघाता है ॥
याहीको प्रभाव सो तौ।याहीकूं दिखाइ देत ।
सुंदर कहत येही । आतमा विख्याता है॥४॥
याहीको तौ भाव याकूं शंक उपजावत है ।
याहीको तौ भाव याही । निःशंक करतु है ॥

२ भावके ॥

याहीको तौ भाव याकूं । भूत प्रेत होइ लगै।
याहीको तौ भाव याकी । कुमती हरतु है ॥
याहीको तौ भाव याही। वायुको बघूरा करै।
याहीको तौ भाव याही। थिरके धरतु है ॥
याहीको तौ भाव याकूं । धारमें बहाइ देत।
सुंदर याहीको भाव। याहि ले तरतु है॥५॥
आपहीको भाव सो तौ। आपकूं प्रगट होत।
आपही आरोप करि। आप मन लायो है ॥
देवी अन्य देव कोऊ भावकूं उपासै तांही।
कहै मैं तौ पुत्र धन। इनहीतें पायो है ॥
जैसे श्वान हाडकूं चचोरि करि मानै मोद।
आपहीको मुख फोरि। लोहू चाटि खायो है॥
तैसेही सुंदर यह आपुही चेतन आहि।
अपने अज्ञान करि। औरसूं बंधायो है॥६॥
॥ इंदव छंद ॥
नीचतें नीचे रु ऊचेंतें ऊपर ।

आगेतैं आगे रु पीछेतें पीछो ॥
दूरतें दूर नजीकतें नेरहु।
आडेतें आडोहि तीछेतें तीछो ॥
बाहिर भीतर भीतर बाहिर।
ज्यूं कोउ जानत त्यूं कर ईछो ॥
जैसोहि आपना भाव है सुंदर।
तैसोहि है दृग खोलिकें पीछो ॥७॥

आपनें भावतें शूरसों दीसत।
आपनें भावतें चंद्रसों भासैं।
आपनें भावतें तारें अनंत जु।
आपनें भावतें वीज चकासै ॥
आपनें भावतें नूर हैं तेज हैं।
आपनें भावतें ज्योति प्रकाशै ॥
तैसोहि ताहि दिखावत सुंदर।

जैसोंहि होत है जाहिको आशै ॥८॥
आपनें भावतें सेवक साहिब।
आपने भाव सबै कोंउ ध्यावै ॥
आपनें भावतें अन्य उपासत।
आपनें भावतें भक्त हु गावै ॥
आपनें भावतें दुष्ट संहारन।
आपनें भावतें बाहिर आवै ॥
जेसोंहि आपनों भाव है सुंदर।
ताहिकुं तैसोंहि होइ दिखावै ॥ ९ ॥
आपनें भावतें दूर वतावत।
आपनें भाव निजीक वखान्यो ॥
आपनें भावतें दूध पिवावत।
आपनें भावतें वीठॅल जान्यो ॥
आपनें भावतें चारिभुजा पुनि।

४ विठ्ठलनाथ ॥ ५ नृसिंहावतार ॥

आपनें भावतें सिंहसो मान्यों ॥
सुंदर अपनें भावको कारण ।
आपहि पूरणब्रह्म पिछान्यो ॥१०॥
आपनें भावतें होइ उदास जु ।
आपनें भावतें प्रेमसूँ रोवै ॥
आपनें भाव मिल्यो पुनि जानत ।
आपनें भावतें अंतर जोवै ॥
आपनें भाव रहै नित जाग्रत ।
आपनें भाव समाधिमें सोवै ॥
सुंदर जैसोंहि भाव है आपनों ।
तैसोंहि आप तहाँ तहँ होवै ॥११॥
आपनें भावतें भूलि पर्‍यो भ्रम ।
देहस्वरूप भयो अभिमानी ॥
आपनें भावतें चंचलता अति ।
आपनें भावतें बुद्धि थिरानी ॥

आपनैं भावतैं आप बिसारत ।
आपनैं भावतैं आतम ज्ञानी ॥
सुंदर जैसोंहि भाव है आपनों
तैसोंहि होइ गयो यह प्रानी ॥१२॥

॥ इति अपने भावको अंग संपूर्ण ॥ २४ ॥

॥अथ जगत मिथ्याको अंग ॥२५॥

॥ मनहर छंद ॥

किये न विचार कछु । भनंक परी है कान।
धारि आइ सुनि करि । हरि विष खायो है ।
जैसे कोई अनछतो । ऐसेही बुलाइयत ।
वार वीत गई पर । कोऊ नहीं आयो है ॥
वेदहु वरनिके जगत-तरु ठाढो कियो ।
अंत पुनि वेद जर-मूलतें उठायो हैं ॥
तैसेही सुंदर याको । कोई एक पावै भेद ।

---

१ अचानक शब्दका श्रवण ॥

जगतको नाम सुनि। जगत भुलायो है॥ १ ॥
ऐसोहि अज्ञान कोई। आयके प्रगट भयो।
दिव्य-दृष्टि दूर गई। देखै चाम दृष्टिकूं ॥
जैसे एक आरसी सदाही हाथमांहि रहै।
सुमुख न देखै फेर। फेर देखै पृष्टिकूं ॥
जैसे एक व्योम पुनि। बादरसुं छाइ रह्यो।
व्योम नांहि देखत देखत बहु वृष्टिकूं ॥
तैसे एक ब्रह्मही बिराजमान सुंदर है।
ब्रह्मकूं न देखै कोऊ। देखै सब सृष्टिकूं॥२॥
अनछतो जगत अज्ञानतें प्रगट भयो।
जैसे कोई बालक बेताल देखि डर्‍यो है॥
जैसे कोई स्वपनेमें। दाब्यो है ओथारे आइ।
मुखतें न आवै बोल। ऐसो दुःख पर्‍यो है॥
जैसे अंधियारो रैन। जेवरो न जानै तांहि।
आपहितें साप मानि। भय अति कर्‍यो है॥
तैसेही सुंदर एक। ज्ञानके प्रकाश विनु।

२ देवदृष्टि (विचारदृष्टि)॥

आप दुःख पाय आय। आप पचि मऱ्यो है॥३
मृत्तिका समाई रही। भांजनके रूपमांहि।
मृत्तिकाको नाम मिटि। भाजनहि गह्यो है॥
कनक समाई ज्यूंही। होई रह्यो आभूषन।
कनक कहे न कोई। आभूषन कह्यो है॥
बीजहू समाइ करि। वृक्ष होई रह्यो पुनि।
वृक्षंहीकूं देखियत। बीज नहीं लह्यो है॥
सुंदर कहत यह। यूंही करि जान्यो सब।
ब्रह्मही जगत होई। ब्रह्म दूरि रह्यो है॥ ४॥
कहत है देहमांहि। जीव आई मिलि रह्यो।
कहां देह कहां जीव। व्रथा चूक पऱ्यो है॥
बूडवेके डरतें तरनको उपाव करै।
ऐसे नहि जानै यह। मृगजळ भऱ्यो है॥
जेवरीको सापमानि। सांपविषे रूपो जानी।
औरको औरहि देखि। यूंही भ्रम कऱ्यो है॥
सुंदर कहत यह। एकही अखंडब्रह्म।

ताहिकूं पलटिके जगत नाम धर्‍यो है ॥९॥

॥ इति जगत मिथ्याको अंग संपूर्ण ॥ २९ ॥

॥ अथ अद्वैतज्ञानको अंग ॥ २६ ॥

—xx—

॥ इंदव छंद ॥ ॥ प्रश्नोत्तर ॥

हौ तुम कौन ? हुं ब्रह्म अखंडित ।
देह मैं क्यूं नहि ? देहके नेरे ॥
बोलत कैस ? कहूं नहिं बोलत ।
जानिये कैसे ? अज्ञान है तेरे ॥
दूर करौ भ्रम निश्चय धारि क-
हौ गुरुदेव कहूं नित टेरे ॥
हो तुम ऐसैं तु हूं पुनि एसैंहि ।
दोइ नहीं नहिं द्वैतहि मेरे ॥ १ ॥

॥ बोधोक्ति ॥

हूं कछु और कि तूं कछु और कि ।

ये कछु और कि सो कछु और ॥
हूं अरु तूं यह है कछु सो पुनि ।
बुद्धिविलास भयो झक झौरे ॥
हूं नहिं तूं नहिं है कछु सो नहिं ।
बूझ विना जितही तित दौरे ॥
हूं पुनि तूं पुनि है कछु सो पुनि ।
सुंदर व्यापि रह्यो सब ठौरे ॥ २ ॥
उत्तम मध्यम और शुभाशुभ ।
भेद अभेद जहां लग जो है ॥
दीसत भिन्न तत्रो अरु दर्पण ।
वस्तु विचारत एकहि लो है ॥
जो सुनिये अरु दृष्टि परै कछु ।
वा बिन और कहूं अब को है ॥
सुंदर सुंदर व्यापि रह्यो सब ।
सुंदरमें पुनि सुंदर सो है ॥ ३ ॥
ज्यूं वन एक अनेक भये द्रुम ।

नाम अनंतनि जातिहु न्यारी ॥
वापि तडागं रु कूप नदी सब ।
है जल एक सु देखु निहारी ॥
पावक एक प्रकाश बहूविधि ।
दीप चिराग मसालहु बारी ॥
सुंदर ब्रह्म विलास अखंडित ।
भेद अभेदकि बुद्धि सु टारी ॥ ४ ॥
एक शरीरमें अंग भये बहु
एक धरापर धाम अनेका ॥
एक शिलामँहि कोर किये सब ।
चित्र बनाइ धरे इकठेका ॥
एकसमुद्र तरंग अनेकहु ।
कैसें जु कीजिय भिन्न विवेका ॥
द्वैत कछू नहिं देखिय सुंदर ।
ब्रह्म अखंडित एकको एका ॥ ५ ॥

---

१ ताल ॥

ज्यूं मृत्तिका घट नीर तरंगहि ।
तेज मसाल किये जु वहूता ॥
वाय बघूरनि गांठ परी वहु ।
बादल व्योम सु व्योम जु भूता ॥
व्रक्ष सु बीजहि बोज सु व्रक्षहि ।
पूत सु बापहि बाप सु पूता ॥
वस्तु विचारत एकहि सुंदर ।
तान रु वान तु देखिय सूता ॥६॥

भूमिहु चेतन आपहु चेतन ।
तेजहु चेतन है जु प्रचंडा ॥
वायुहि चेतन व्योमहु चेतन ।
शब्दहु चेतन पिंड ब्रह्मंडा ॥
है मन चेतन बुद्धिहु चेतन ।
चित्तहु चेतन आहि उडंडा ॥
जो कछु नाम धरै सुहि चेतन ।
चेतन सुंदर ब्रह्म अखंडा ॥ ७ ॥

एक अखंडित ब्रह्म विराजत ।
नाम जुदो करि विश्व कहावै ॥
एकहि ग्रंथ पुराण बखानत ।
एकहि दत्त वसिष्ठ सुनावै ॥
एकहि अर्जुन उद्धवसूं कहि ।
कृष्ण कृपा करिके समुझावै ॥
सुंदर द्वैत कछू मति जानहु ।
एकहि व्यापक वेद बतावै ॥ ८ ॥

॥ मनहर छंद ॥ प्रश्नोत्तर ॥

शिष्य पूछै गुरुदेव । गुरु कहै पूछ शिष्य ।
मेरे एक संशय है । क्यूं न पूछै अबही ॥
तुम्ह कहो एक ब्रह्म । अजहु मैं कहूं एक ।
एकता अनेकताको । यह भ्रम सबही ॥
भ्रम यह कौनकूं है? भ्रमहिकूं भ्रम भयो ।
भ्रमहिकुं भ्रम कैसे ? तूं न जानै कबही ॥

कैसे करि जानूं प्रभु ? गुरु कहै निश्चै धरि ।
निश्चै ऐसे जान्यो अब । एक ब्रह्म तबही ॥९॥

॥ बोधोक्ति ॥

ब्रह्म है ठौरको ठौर । दूसरो न कोऊ और ।
वस्तुको विचार किये । वस्तु पहिचानिये॥
पंचतत्त्व तीनगुण । विस्तरे विविध भांति ।
नाम रूप जहां लगि । मिथ्या माया मानिये॥
शेषनाग आदि देके । वैकुंठ गोलोक पुनि ।
वचन विलास सब । भेद भ्रम मानिये ॥
नतौ कछु उरझ्यो न । सूरझ्यो कहूं सो कौन ।
सुंदर सकल यह । उहां[2]वाही जानिये ॥१०॥
प्रथमहि देहमेंतें । बाहिरकूं चूकि पऱ्यो ।
इंद्रिय व्यापार सुख सत्य करि जान्यो है ॥
कोउक संयोग पाई । सद्गुरुसूं भेट भई ।

२ बालककूं पालनेमें सुलायके नींद लावनेके गीत गाते है सो ॥

उन उपदेश देके । भीतरकूं आन्यो है ।
भीतरकें आवतहि । बुद्धिको प्रकाश भयो ।
कौन देह कौन मैं जगत किन मान्यो है ॥
सुंदर विचारत यूं । उपजै अद्वैत-ज्ञान ।
आपकूं अखंड ब्रह्म । एक पहिचान्यो है ॥ ११ ॥

॥ हंसाल छंद ॥

सकल संसार विस्तार करि वरणियो ।
स्वर्ग पाताल मृत ब्रह्मही है ॥
एकतें गिनतही गिनिय जो सौ लगि
फेरि करि एकको एकही है ॥
ये नही ये नही रहै अवशेष सो ।
अंतही वेदने यूं कही है ॥
कहत सुंदर सही अपनपो जानु जब ।
आपने आपमें आपही है ॥ १२ ॥
एक तूं दोय तूं तीन तूं चार तूं ।
पांच तूं तत्वतें जगत कीयो ॥

नाम अरु रूप ³है बहुत विधि विस्तऱ्यो ।
तुम बिना और को नाहि बीयो ।
राव तूं रंक तूं दीन तूं दानि तूं ।
दोइ करि मेळतें लीय दीयो ॥
सकळही एह तुममांहि उपजै खपै ।
कहत सुंदर बडो विपुल हीयो ॥ १३ ॥

॥ मनहर छंद ॥

तोहिमें जगत यह । तूंहि है जगतमांहो ।
तोमें अरु जगतमें । भिन्नता कहां रही ॥
भूमिहीतें भाजन अनेक विधि नाम रूप ।
भाजन विचारि देखे । उहे एक है मांहि ॥
जळतें तरंग फेन । बुद्बुदा अनेक भांति ।
सोउ तौ विचारे एक । वहे जळ है सही ॥
जेते महापुरुष हैं । सबको सिद्धांत एक ।
सुंदर अखिळ ब्रह्म । अंत वेद ये कही ॥ १४ ॥

३ दूसरो ॥ ४ विस्तीर्ण । विशाल ॥ ५ पृथिवी ॥

जैसे ईख रसकी मिठाई भांति भांति भई ।
फेरि करि गारे इक्षुरसही कहतु है ॥
जैसे घृत थींजके डरासो बंधि जात पुनि ।
फेर पिगळेतें वह घृतही रहतु है ॥
जैसे पानी जमीके पाषान हू मो देखियत ।
सो पाषान फेरि पानी । होयके वहतु है ॥
तैसेही सुंदर यह जगत है ब्रह्ममय ।
ब्रह्म सो जगतमय । वेद सु कहतु है ॥१५॥
जैसे काठ कोरी तामें । पूतरी बनाय राखी ।
जो विचारि देखिये तौ । उहै एक दार है ॥
जैसें माळा सूतहूकी । मनिकाहू सूतहिके ।
भीतरहू पोयो पुनि । सूतहीको तार है ॥
जैसे एक समुद्रके । जळहीको लोन भयो ।
सोउ तौ विचारे पुनि । उहै जळ खार है ।

---

६ जमिके ॥

तैसेही सुंदर यह। जगत सो ब्रह्ममय।
ब्रह्म सो जगतमय। याही निरधार है॥१६॥
जैसे एक लोहके हथ्यार नाना विध किये।
आदि-मध्य-अंत एक लोहही प्रमानिये॥
जैसे एक कंचनमें। भूषन अनेक भये।
आदि-मध्य-अंत एक कंचनही जानिये॥
जैसे एक मेनके संवारे नर हाथी यह।
आदि-अंत-मध्य एक मेनही बखानिये॥
तैसेही सुंदर यह। जगत सो ब्रह्ममय।
ब्रह्म सो जगतमय। निश्चै करि मानिये॥१७॥
ब्रह्ममें जगत यह। ऐसी विधि देखियत।
जैसी विधि देखियत। फूलरी महीरमें॥
जैसी विधि गिलीम दुलीचेमें अनेक भांति।
जैसी विधि देखियत। चूनरीहु चीरमे॥
जैसी विधि कांगुरेहु। कोट पारि देखियत।

---

७ गलीचा॥

जैसी विधि देखियत । बुदबुदा नीरमें ॥
सुंदर कहत लीक । हाथ परी देखियत ।
जैसी विधि देखियत । शीतला शरीरमें १८
ब्रह्म अरु माया जैसे । शिव अरु शक्ति पुनि ।
पुरुष प्रकृति दोऊ । कहीके सुनाये है ॥
पति अरु पत्नी ईश्वर अरु ईश्वरीहु ।
नारायण लक्ष्मी द्वै । वचन कहाये हैं ॥
जैसे कोई अर्धनारी । नटेश्वर रूप धरे ।
एक बीजहूतें दोऊ । दाली नाम पाये हैं ॥
तैसेंही सुंदर वस्तु । ज्यूं है त्यूंही एकरस ।
उभय प्रकार होई । आपही दिखाये है ॥१९॥

॥ इंदव छंद ॥

ब्रह्म निरीह[८] निरामय निर्गुण ।
नित्य निरंजन और न भासै ॥
ब्रह्म अखंडित है अध ऊरध ।

---

८ इच्छारहित ॥

बाहिर भीतर ब्रह्म प्रकासै ॥
ब्रह्महि सूक्ष्म थूल जहां लगि ।
ब्रह्महि साहिब ब्रह्महि दासै ॥
सुंदर और कछू मत जानहु ।
ब्रह्महि देखत ब्रह्म तमासै ॥ २० ॥
ब्रह्महि मांहि विराजत ब्रह्महि ।
ब्रह्मविना जनि औरहि जानौ ॥
ब्रह्महि कुंजर कीटहु ब्रह्महि ।
ब्रह्महि रंक रु ब्रह्महि रानौ ॥
कालहि ब्रह्म स्वभावहु ब्रह्महि ।
कर्महु जीवहु ब्रह्म बखानौ ॥
सुंदर ब्रह्म विना कछु नाहिन ।
ब्रह्महि जानि सबै भ्रम भानौ ॥२१॥
आदि हुतो सुहि अंतहि है पुनि ।
मध्य कहा कछु और कहावै ॥
कारण कारज नाम धरै पुनि ।

कारज कारणमांहि समावै ॥
कारज देखि भयो बिच बिभ्रम।
कारण देखि बिभर्म बिलावै ॥
सुंदर निश्चय ये अभिअंतर।
द्वैत गये फिरि द्वैत न आवै ॥२२॥

॥ मनहर छंद ॥

द्वैत करि देखै जब। द्वैतही दिखाइ देत।
एक करि देखै तब। उहै एक अंग है ॥
सूरजकूं देखै जब। सूरज प्रकाशि रह्यो।
किरणकूं देखै तौ। किरण नाना रंग है।।
भ्रम जब भयो तब। माया ऐसो नाम धर्‍यो।
भ्रमके गयेतें एक ब्रह्म सरवंग है ॥
सुंदर कहत याकी दृष्टिहूको फेर भयो।
ब्रह्म अरु मायाके तौ। माथे नहि शृंग है॥२३॥
श्रोत्र कछु और नांहि। नेत्र कछु और नांहि।

---

१ सिंग ॥

नाशा कछु और नांहिं। रसनान और है ॥
त्वक कछु और नांहि। वाक कछु और नांहि।
हाथ कछु और नांहि पावनकी दौर है ॥
मन कछु और नांहि। बुद्धि कछु और नांहि।
चित्त कछु और नांहि। अहंकार तौर है ॥
सुंदर कहत एक। ब्रह्मविना और नांहि।
आपहिमें आप व्यापि रह्यो सब ठौर है।२४॥

इति अद्वैतज्ञानको अंग संपूर्ण ॥ २६ ॥

अथ ब्रह्म निःकलंकको अंग ॥२७॥

॥ मनहर छंद ॥

एक कोउ दाता गउ ब्राह्मणकुं देत दान।
एक कोउ दयाहीन। मारत निशंक है ॥
एक कोउ तपस्वी तपस्यामांहि सावधान।
एक कोउ काम क्रीडा। कामनीको अंक है ॥

---

१ गोद ॥

एक कोउ रूपवंत । अधिक विराजमान ।
एक कोउ कोडि कोढ । चूवत करंक है ॥
आरसीमें प्रतिबिंब । सबहीको देखियत ।
सुंदर कहत ऐसे । ब्रह्म निःकलंक है ॥ १ ॥
रविके प्रकाशतें प्रकाश होत नेत्रनको ।
सब कोउ शुभाशुभ । कर्मकूं करतु है ॥
कोउ यज्ञ दान तप । जप नेम व्रत कोउ ।
इंद्रि वश करि कोउ । ध्यानकूं धरतु है ॥
कोउ परदारा परधनकूं तकत जाई ।
कोउ हिंसा करि करि । उदर भरतु है ॥
सुंदर कहत ब्रह्म । साक्षीरूप एकरस ।
याहीमें उपजि करि । वाहिमें मरतु है ॥२॥
जैसे जळजंतु जळहीमें उतपन्न होय ।
जळहीमें विचरत । जळके आधार है ॥
जळहीमें क्रीडा करि । विविध व्योहार होत ।

काम क्रोध लोभ मोह । जलमें संहार है ॥
जलकूं न लागै कछु । जीवनके राग दोष ।
उनहीके क्रिया कर्म । उनहीके लारे है ॥
तैसेही सुंदर यह । ब्रह्ममें जगत सब ।
ब्रह्मकूं न लागै कछु । जगत बिकार है ॥३॥
स्वेद्ज-जरायुज-अंडज-उदभिज पुनि ।
चार खानि तिनके । चौराशीलक्ष जंत हैं ॥
जलचर थलचर । व्योमचर भिन्न भिन्न ।
देह पंच भूतनकी । उपजि खपंत हैं ।
शीत घाम पवन गगनमें चलत आई ॥
गगन अलिप्त जामें । मेघहू अनंत हैं ॥
तैसेही सुंदर यह । सृष्टि सब ब्रह्ममांहि ।
ब्रह्म निःकलंक सदा । जानत महंत हैं ॥४॥
॥ इति ब्रह्म निःकलंकको अंग संपूर्ण ॥ २७ ॥

---

२ साथ ॥

॥ अथ शूरातनको अंग ॥ २८ ॥

——×——

॥ मनहर छंद ॥

सुनत नगारे चोट। विकसे कमळ मुख।
अधिक उछाह फुल्यो। मायहू न तनमें ॥
फेरै जब सांग[1] तब। कोई नहि धीर धरै।
कायर कंपायमान। होत देखि मनमें ॥
कूदके पतंग जैसे। परत पावकमांहि।
ऐसे टूटि परै बहु। सांवत[2]के घनमें ॥
मारी घमसाण करि। सुंदर जुहारै स्याम।
सोई शूरवीर रोपि। रहै जाई रनमें ॥१॥
हाथमें गहे खडग। मारवेकूं एक पग।
तन मन अपनो समरपन कीनो है ॥
आगे करि मीचकूं जु। पर्‍यो डांकि[3] रन बीच।
टूक टूक होईके। भगाई दळ दीनो है ॥

---

१ बरछी ॥ २ योधा ॥ ३ कूदी ॥

खाई लौन स्यामको। हरामखोर कैसे होई।
नार्मेयाद जगतमें। जीत्यो पन तीनो है॥
सुंदर कहत ऐसो। कोउ एक शूरवीर।
शीशकूं उतारिके सुयशजाइ लीनो है ॥२॥
पाव रोपि रहै रनमांहि रजपूत कोउ।
हय गज गाजत झुरत जहां दल है।
बाजत झुंझाउ सहनाई सिंधू राग पुनि।
सुनतहि कायरकि। छुटि जात कल है॥
झलकत बरछी तरछी तरवार वहै।
मार मार करत परत खल भल है॥
ऐसे युद्धमें अडिग्ग। सुंदर सुभट सोई।
घरमांहि शूरमा कहावत सकल है॥ ३॥
असन बसन बहु। भूषन सकल अंग।
संपत्ति विविध भांति। भर्‌यो सब घर है॥
श्रवण नगारो सुनि। छिनकमें छांड़ि जात।

४ कीर्त्तिमान ॥

ऐसे नहीं जानै कछु । मेरे वहां मर है ॥
मनमें उछाह रनमांहि टूक टूक होइ ।
निर्भय निःशंक वाके । रंचहू न डर है ॥
सुंदर कहत कोउ । देहको ममत्व नांहि ।
शूरमाको देखियत । शीश बिनु धर है ॥४॥
झुंझवेको चाव जाके । ताकि ताकि करै घाव।
आगै धरि पाव फिर । पीछे न संभारि है॥
हाथ लिये हथियार । तीछन लगाये धार ।
वार नाहि लागै सब पिसुन प्रहारि है ॥
वोट नहि राखै कछु । लोट पोट होइ जाइ।
चोट नहि चूकै शीश । रिपुको उतारि है ।
सुंदर कहत तांहि । नेकहू न शोच पोच ।
सोई शूर वीर धीर । मर जाइ मारि है॥५॥
अधिक आजानहबाहु । मनमें उछाह किये।
दीये गजढाहि मुख । बरषत नूर है ।

---

५ चाडीखोर ॥ ६ गोडेपर्यंत भुजावाला ॥

काढै जब तरवार । बाळ सब ठाढे होइ ।
अति विकराळ पुनि । देखत करूर है ॥
नेक न उसास लेत । फौजकूं फिटाइ देत ।
खेतं नहि छांडै मारि । करै चकचूर है ॥
सुंदर कहत ताकी । कीरति प्रसिद्ध होइ ।
सोइ शूरवीर धीर । स्यामके हजूर है ॥६॥
ज्ञानको कवच अंग । काहुसूं न होइ भंग ।
टीप शीश झलकत परम विवेक है ॥
तन ताजी असवार । लीये समशेर सार ।
आगेहीकूं पाव धरै । भागनेकी टेक है ॥
छूटत बंदूक बान । मचै जहां घमसान ।
देखिके पिसुन दळ । मारत अनेक है ॥
सुंदर सकळ लोकमांहि ताको जै जैकार ।
ऐसा शूरवीर कोऊ । कोटिनमें एक है॥७॥
शूरवीर रिपु सनमुख देखि चोट करै ।

---

७ रणभूमि ॥

मारै तब ताकि ताकि । तरवार तीरसूं ॥
साधु आठौ जाम बैठो । मनहीसू युद्ध करै ।
जाकें मूह माथो नहिं । देखिये शरीर सू ॥
शूरवीरं भूमि पर । दूरहीतें दौरि लगै ।
साधु सो न कोप करै । राखै धरि धीरसूं ॥
सुंदर कहत तहां । काहुको न पाव टिकै ।
साधुको संग्राम है अधिक शूरवीर सूं ॥८॥
खैंचि करडी कमान । ज्ञानको लगायो बान ।
मार्‍यो महाबळ मन । जग जिन रान्यो है॥
ताके अगवाणी पंच । योधाहू कतल किये ।
और रह्यो पर्‍यो सब । अरि दळ भान्यो है ॥
ऐसो कोउ सुभट जगतमें न देखियत ।
जाके आगै काळहूसो कंपीके परान्यो है ॥
सुंदर कहत ताकी । शोभा तिहूं लोकमांहि ।
साधुसो न शूरवीर । कोई हम जान्यो है॥९॥
कामसो प्रबळ महा । जीते जिन तीन लोक ।

सो तौ एक साधुके विचार आगे हाऱ्यो है ॥
क्रोधसो करॉल जाके। देखत न धीर धरै।
सोउ साधु क्षमाके हथ्यारसूं विदाऱ्यो है ॥
लोभसो सुभट साधु। तोषसूं गिराय दियो।
मोहसो नृपति साधु। ज्ञानसूं प्रहाऱ्यो है ॥
सुंदर कहत ऐसो साधु कोउ शूरवीर।
ताकी ताकी सबही। पिसुन दल माऱ्यो है१०
मारे काम क्रोध सब। लोभ मोह पीसि डारे।
इंद्रिहु कतल करि। कियो रजपूतो है ॥
माऱ्यो महा मत्त मन। मारे अहंकार मीर।
मारे मद मछर हू। ऐसो रन रूतो है ॥
मारी आशातृष्णा पुनि।पापिनी सापिनी दोउ।
सबको प्रहार करि। निज पद प्हूतो है ॥
सुंदर कहत ऐसो। साधु कोइ शूरवीर।
वेरि सब मारिके निचिंत होई सूतो है॥११॥

८ विकराल ॥

कियो जिन मन हाथ। इंद्रिनको सब साथ।
घेरी घेरी आपनेही। नाथसूं लगाये हैं॥
औरहू अनेक वैरी। मारे सब युद्ध करि।
काम-क्रोध लोभ-मोह। खोदके वहाये हैं॥
कियो है संग्राम जिन। दियो है भगाई दल।
ऐसे महा सुभट सु। ग्रंथनमें गाये हैं॥
सुंदर कहत और। शूर यूंहि खपि गये।
साधु शूरवीर वेई। जगतमें आये है॥१२॥
महामत्त हाथी मन। राख्यो है पकरि जिन।
अतिहि प्रचंड जामें। बहुत गुमान है॥
काम क्रोध लोभ मोह। बांधे चारौ पांव पुनि।
छूटने न पावे नेक। मान पीलवान है॥
कबहू जो करै जोर। सावधान सांझ भोर।
सदा एक हाथमें अंकुश गुरु ज्ञान है॥
सुंदर कहत और काहुके न वश होई।
ऐसो कौन शूरवीर। साधुके समान है॥१३॥

इति शूरातनको अंग संपूर्ण ॥ २८ ॥

अथ साधुको अंग ॥ २९ ॥

॥ इंदव छंद ॥

प्रीति प्रचंड लगै परब्रह्महि ।
और सबै कछु लागत फीको ॥
शुद्ध हृदे मन होइ सु निर्मल ।
द्वैत प्रभाव मिटै सब जीको ॥
गोष्टि रु ज्ञान अनंत चलै जहँ ।
सुंदर जैसु प्रवाह नदीको ॥
ताहितें जानि करौ निशिवासर ।
साधुको संग सदा अति नीको ॥१॥

जो कोइ जाइ मिलै उनसूं नर ।
होव पवित्र लगै हरि रंगा ॥
दोष कलंक सबै मिटि जाइ सु ।
नीचहु जाइ जु होत उतंगा ॥
ज्यूं जल और मलीन महा अति ।

गंग मिल्यो हुइ जातहि गंगा ॥
सुंदर शुद्ध करै ततकाल जु ।
है जगमांहि बडो सतसंगा ॥ २ ॥
ज्यूं [१]कीट भ्रंग करै अपने सम ।
तास जु भिन्न कहै नहि कोई ॥
ज्यूं द्रुम और अनेक न भांतिन ।
चंदनके ढिग चंदन होई ।
ज्यूं जल क्षुद्र मिलै जब गंगहि ।
होइ पवित्र उहै जल सोई ॥
सुंदर जाति स्वभाव मिटै सब ।
साधुकि संगति साधुहि होई ॥ ३ ॥
जो कोउ आवत है उनके ढिग ।
वाहि सुनावत शब्द सँदेसो ॥
ताहिकूँ तैसिहि औषधि लावत ।

१ एक जातका कीडा होवे है। सो भमरीके डं-
कमें पक्ष धारण करि उडि जावै है ॥

जाहिकुँ रोगहि जानत जैसो ।
कर्म कलंकहि काटत है सब ।
शुद्ध करै पुनि कंचन तैसो ॥
सुंदर वस्तु विचारत हैं नित ।
संतनको जु प्रभावहि ऐसो ॥ ४ ॥
जो परब्रह्म मिल्यो कोउ चाहत ।
तौ नित संत समागम कीजै ॥
अंतर मेटि निरंतर व्है करि ।
ले उनकूं अपनो मन दीजै ॥
वे मुखद्वार उचार करैं कछु ।
सो अनयास सुधारस पीजै ॥
सुंदर सूर प्रकाश भयो जब ।
और अज्ञान सबै तम छीजै ॥ ५ ॥
जा दिनतें सतसंग मिल्यो तब ।
ता दिनतें भ्रम भाजि गयो है ।
और उपाय थके सबही तब ।

संतनि अद्वय ज्ञान दयो है।
पोत प्रचालहि क्यूं करि छूवत।
एक अमूलक लाल लयो है॥
कौन प्रकार रहै रजनी तम।
सुंदर शूर प्रकाश भयो है॥ ६॥

संत सदा सबको हित वंछत।
जानत है नर बूडत काढे॥
दे उपदेश मिटाइ सबै भ्रम।
ले करि ज्ञान जहाजहि चाढै॥
जे विषया सुख नाहिन छांडत।
ज्यूं कपि मूठ गहै सठ गाढै॥
सुंदर वे दुंःखकूं सुख मानत।
हाटहि हाट विकावत आंढै॥ ७॥

सो अनयास तरै भव-सागर।
जो सतसंगतमें चलि आवै॥

ज्यूं कँनिहार न भेद करै कछु ।
आइ चढै तिहि नाव चढावै ॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य रु शूद्र म-
लेछ चँडालहि पार लँगावै ॥
सुंदर वेर नहीं कछु लागत ।
या नरदेह अभै पद पावै ॥ ८ ॥

ज्यूं हम खाइ पिवैं अरु बोढहि ।
तैसेंहि ये सबलोक बखानैं ॥
ज्यूं जलमें शशिके प्रतिबिंबहि ।
आप समा जलजंतु प्रमानैं ॥
ज्यूं खग छांह धरापर दीसत ।
सुंदर पंछि उडै असमानैं ॥
त्यूं सठ देहनिँकृ कृत देखत ।
संतनकी गति क्यूं कोउ जानैं ॥ ९ ॥

जो खपँरा कर ले घर डोलत ।

---

२ नाव चलावने वाला ॥ ३ नालियरकी कचली ॥

मागत भीखहि तौ नहि लाजै ।
जो सुख सेज पटंबर भूषन ।
लावत चंदन तौ नहि राजै ॥
जो कोउ आय कहै मुखतें कछु ।
जानत ताहि बयारहि बाजै ॥
सुंदर संशय दूर भयो सब ।
जो कछु साधु करै सोइ छाजै ॥१०॥
कोउक निंदत कोउक वंदत ।
कोउक देतहि आइ जु भछन ॥
कोउक आय लगावत चंदन ।
कोउक डारत धूरि ततछन ॥
कोउ कहै यह मूरख दीसत ।
कोउ कहै यह आहि विचछन ॥
सुंदर काहुसुँ राग न द्वेष न ।
ए सब जानहु साधुके लछन ॥ ११ ॥

---

४ रेशमके वस्त्र ॥ ५ पवन ॥

तात मिलै पुनि मात मिलै सुत ।
भ्रात मिलै युवती सुखदाई ॥
राज मिलै गज बाजि[6] मिलै सब ।
साज मिलै मन वंछित पाई ॥
लोक मिलै सुर लोक मिलै ।
विधि लोक मिलै वइकुंठहु जाई ॥
सुंदर और मिलै सवही सुख ।
संत समागम दुर्लभ भाई ॥ १२ ॥

॥ मनहर छंद ॥

देवहू भयेतें कहा । इंद्रहू भयेते कहा ।
विधिहूके लोकतें बहुरी आईयतु है ॥
मनुष्य भयेतें कहा । भूपति भयेतें कहा ।
द्विजहू भयेतें कहा । पार जाईयतु है ॥
पशुहू भयेतें कहा । पंछीहू भयेतें कहा ।
पन्नग भयेतें कहा । क्यूं अघाईयतु है ॥

६ घोडा ॥

छूटवेको सुंदर उपाय एक साधुसंग ।
जिनकी कृपातें अति सुख पाईयतु है ॥१३॥
इंद्राणी शृंगार धरि । चंदन लगायो अंग ।
ताहि देखि इंद्र अति काम वश भयो है ।
सूकरीहू करँदम बीचमांहि लोटि करि ।
आगे जाइ सूकरको । मन हरि लयो है ॥
जैसो सुख सूकरको । तैसो सुख मघवाको ।
तैसो सुख नर पशु । पछिनकूं दयो है ॥
सुंदर कहत जाके । भयो ब्रह्मानंद सुख ।
सोइ साधु जगतमें । जीतिकरि गयो है ॥१४॥
धूलि जैसो धन जाके । सूलि सो संसार सुख ।
भूलि जैसो भाग देखै । अंतकसी यारी है ॥
पाप जैसी प्रभुताई । साप जैसो सनमान ।
बडाई बिछुन जैसी । नागनीसी नारी है ॥
अग्नि जैसो इंद्र-लोक । विघ्न जैसो विधि-लोक ।

७ चिकल ॥ ८ मृत्यु जैसी ॥

कीरती कलंक जैसी । सिद्धिसी ठगारी है ॥
वासना न कोई बाकी । ऐसी मति सदा जाकी ।
सुंदर कहत ताहि । वंदना हमारी है॥१५॥
कामही न क्रोध जाके । लोभही न मोह ताके ।
मदही न मछर न । कोउ न विकारो है ॥
दुःखही न सुख मानै । पापही न पुण्य जानै ।
हरष न शोक आनै । देहहीतें न्यारो है ॥
निंदा न प्रशंसा करै । रागही न द्वेष धरै ।
लेनही न देन जाके । कछु न पसारो है ॥
सुंदर कहत ताकी । अगम अगाध गति ।
ऐसो कोउ साधु सो तौ।रामजीकूं प्यारोहै १६
आठौ जाम यम नेम । आठौ जाम रहे प्रेम ।
आठौ जाम योग यज्ञ । कीयो बहु दान जु ॥
आठौ जाम जप तप । आठौ जाम लीयो व्रत ।
आठौ जाम तीरथमें । करत है स्नान जू ॥
आठौ जाम पूजाविधिआठौ जाम आरतिहु ।

आठौ जाम दंडवत् सुमरन ध्यान जु ॥
सुंदर कहत जिन। कियो सब आठौ जाम।
सोइ साधु जाके उर। एक भगवान जू ॥१७
जैसे आरसीको मैल। काटत शिकलिगर।
मुखमें न फेर कोउ। वहै वाको पोत है ॥
जैसे वैद नैनमें शलाका मेलि शुद्ध करै।
पटल गयेतें तहां। ज्यूंकी त्यूंही जोत है ॥
जैसे वायु बादल बिखेरके उडाइ देत।
रवि तौ आकाशमांहि। सदाही उद्योत है ॥
सुंदर कहत भ्रम। छनमें बिलाइ जात।
साधुहीके संगतें स्वरूप-ज्ञान होत है ॥१८॥
मृतक दादुर जीव। सकल जीवाय जिन।
वरषत बानी मुख। मेघकीसी धारकूं ॥
देत उपदेश कोउ। स्वारथ न लवलेश।
निशिदिन करत है। ब्रह्मके विचारकूं ॥

९ सली ॥ १० मेंडुक ॥

औरहू संदेह सब । मेटत निमिषमांहि ।
सूरज मिटाइ देत । जैसे अंधकारकूं ।
सुंदर कहत हंस । वासी सुख सागरके ।
संत जन आए हैं सो । पर उपकारकूं ॥१९॥

हीराही न लालही न पारस न चिंतामणि ।
औरहू अनेक नग । कहौं कहा कीजिये ।
कामधेनु सुरतरु । चंदन नदी समुद्र ।
नौकाहू जहाज वैठ । कबहूक छीजिये ॥
पृथ्वी आप तेज वायु । व्योम लौं सकल जड ।
चंद्र शूर शीतल तपत गुन लीजिये ॥
सुंदर विचारि हम शोधि सब देखे लोक ।
संतनके सम कहौं । और कहा दीजिये ॥२०॥

जिन तन मन प्राण । दीने सब मेरे हेत ।
औरहु ममत्व बुद्धि । अपनी उठाई है ॥
जागत हू सोवत हू । गावत हैं मेरे गुन ।
करत भजन ध्यान । दूसरो न काई है ॥

तिनके मैं पीछे लग्यो । फीरतहूं निशिदिन ।
सुंदर कहत मेरी । उनतें बडाई है ॥
वहैं मेरे प्रीयसैं हूं । उनके आधीन सदा ।
संतनकी महिमा तौ । श्रीमुख[11] सुनाई है॥२१॥
जगत व्योहार सब । देखत है ऊपरको ।
अंतहकरणकूं तौ । नेक न पिछान है ॥
छाजनकि भोजनकि । हलन चलन कछु ।
और कोऊ क्रियाकी तौ मध्यही वखान है ॥
आपनेही अवगुन आरोपै अज्ञानी जीव ।
सुंदर कहत तातें । निंदाहीकूं ठान है ॥
भावमें तौ अंतर है । राति अरु दिनकेसो ।
साधुकी परिक्षा कोउ । कैसे करि जान है२२
वही दगाबाज वही । कुंट्टी[12] जु कलंक भर्यो ।
वही महापापी वाके । नख शिख कीच है ॥

---

११ श्रीकृष्ण अपनें मुखसें कह्या है ॥ १२ कोढवाळा ॥

वही गुरुद्रोही गऊ ब्राह्मण हननहार ।
वही आतमाको घाती । ऐसी वाके बीच है ॥
वही अघको समुद्र । वही अघको पहाड ।
सुंदर कहत वाकी । बुरी भांति मीच है ॥
वही है मलेछ वहो । चांडाल बुरेतें बुरो ।
संतनकी निंदा करै । सो तौ महानीच है ॥ २३
परि है बिजुरी ताके । ऊपरसूं अचानक ।
धूरि उडी जाय कहूं । ठौर नहि पाइ है ॥
पीछे केउ युग महा । नरकमें परै जाई ।
ऊपरतें यमहूकी मार । बहु खाइ है ॥
ताके पीछे भूत प्रेत । थावर जंगम योनि ।
सहैगो संकट तब । पीछे पछताइ है ॥
सुंदर कहत और । भुगतै अनंत दुःख ।
संतनकूं निंदै ताको । सत्यानाश जाइ है ॥ २४
कूपमेंको मेंडुक सो । कूपकूं सराहत है ।

राजहंसस्वूं कहत केतो तेरो सेर है ॥
मसंका कहत मेरी । सर भर कौन उडै ।
मेरे आगे गरूरकी । केती एक जेर है ॥
गूबरी लांगोलीकूं लुटाई करि मानै मोद ।
मधुपकूं निंदत सुगंधि जाको घर है ॥
अपनी न जानै गति । संतनको नाम धरै ।
सुंदर कहत देखो । ऐसो मूढ नर है॥ २५ ॥
कोऊ साधु भजनीक । हूतो लयलीन अति ॥
कबहू प्रारब्ध कर्म । धका आइ दयो है ॥
जैसे कोउ मारगमें । चलत आखरी परै ॥
फेरि करि उठै तब । वहै पंथ लयो है ॥
जैसे चंद्रमाकी पुनि । कला छीन होइ गई ।
सुंदर सकल लोक । द्वितीयाको नयो है ॥

---

१३ ताल ॥ १४ मुकुंट । मच्छर । १५ झडप । वेग ॥ १६ गोबरका किडा ॥ १७ गोली ॥

देवहूको देवातन । गयो तामें कहा भयो ।
पीतरको मोल सो तौ । नाहि कछुगयो है२६
ताहिके भगति भाव । उपजत अनायास ।
जाकी मति संतनसूं । सदा अनुरागी है ॥
अति सुख पावै ताके । दुःख सब दूर होइ ।
औरही काहूकी जिन । निंदा सब त्यागी है।
संसारकी पास काटी । पाइ है परमपद ।
सतसंगहीतें जाकी । ऐसी मति जागी है ॥
सुंदर कहत ताको । तुरत कल्यान होइ ।
संतनको गुन गहै । सोइ वडभागी है ॥२७॥
योग यज्ञ जप तप । तीरथ व्रतादि दान ।
साधन सकल नाहि । याकी सरभर है ॥
और देवी देवता । उपासना अनेक भांति ।
शंक सब दूर कारि । तिनतें न-डर है ।
सबहीके शीश पर । पाव दे मुगति होइ ।
सुंदर कहत सो तौ । जनमे न मर है ॥

मन वच काय करि । अंतर न राखै कछु ।
संतनकी सेवा करै । सोई निसंतर है ॥२८॥
प्रथम सुयश लेत । शीलहु संतोष लेत ।
क्षमा दया धर्म लेत । पापतें डरतु है ॥
इंद्रिनकूं घेरी लेत । मनहीकूं फेरि लेत ।
योगकी युगति लेत । ध्यानही धरतु है ॥
गुरुको वचन लेत । हरिजीको नाम लेत ।
आतमाकूं शोधि लेत । भौजल तरतु है ॥
सुंदर कहत जग । संत कछु देत नांहि ।
संत-जन निशि-दिन । लेवोही करतु है ॥२९॥
साचो उपदेश देत । भली भली शीख देत ।
समता सुबुद्धि देत । कुमति हरतु है ।
मारग दिखाइ देत । भावहु भगति देत ।
प्रेमकी प्रतीति देत । अभरा भरतु है ॥
ज्ञान देत ध्यान देत । आतमविचार देत ।

ब्रह्मकूं बताइ देत । ब्रह्ममें चरतु है ॥
सुंदर कहत जग । संत कछु लेत नांही ।
संत-जन निशिदिन । देवोही करतु है ॥ ३० ॥
॥ इति साधुको अंग संपूर्ण ॥ २९ ॥

॥ अथ ज्ञानीको अंग ॥ ३० ॥

——xx——

॥ इंदव छंद ॥

जाहि हृदे मँहि ज्ञान प्रकाशत ।
तास सुभाव रहै नहि छानौ ॥
नैनहि वैनहि सैनहि जानिय ।
ऊठत बैठतही अलसानौ ।
ज्यूं कछु भक्ष किये उदगारत ।
कैसही राखि शकै न अघानौ ॥
सुंदरदास प्रसिद्ध दिखावत ।
धान्यकों षेत परारतें जानौ ॥ १ ॥
ज्ञान प्रकाश भयो जिनके उर ।

वे घट क्यूंहि छिपे न रहैंगे ॥
ओडळमांहि दुरै नहि दीपक ।
यद्यपि वे मुख मौन गहैंगे ॥
ज्यूं घनसारहि गोप्य छिपावत ।
तौहि सुगंधि सु तज्ञ लहैंगे ॥
सुंदर और कहा कोउ जानत ।
बूठेकिं बात वटाउ कहैंगे ॥ २ ॥
बोलत चालत बैठत ऊठत ।
पीवत खातहु सूंघत श्वासे ॥
ऊपर तौ व्यवहार करै सब ।
भीतर स्वप्न समान जु भासै ॥
लै करि तीर पताळहि सांधत ।
मारत है पुनि फेर अकाशै ॥
सुंदर देह क्रिया सब देखत ।
कोउक पावत ज्ञानिको आशै ॥ ३ ॥

---

१ वर्षनकी ॥

बैठें तौ बैठे चले तु चलै पुनि ।
पीछे तु पीछें रु आगें तु आगै ॥
बोलें तु बोलें न बोलें तु मौनहि ।
सोवें तु सोवें रु जागें तु जागै ॥
खाइ तु खाइ नहीं तु नहीं जु ।
ग्रहै तु ग्रहै पुनि त्यागें तु त्यागै ॥
सुंदर ज्ञानिक्रि ऐसी दशा यह ।
जानें नहि कछु राग विरागै ॥ ४ ॥

देखत है पैं कछू नहि देखत ।
बोलत है नहि बोल बखानै ॥
सूंघत है नहि सूंघन घ्राण सु-
नैं सब है न सुनै यह कानै ॥
भक्ष करै अरु नाहि भखै कछु ।
भेटत है नहि भेटत प्रानै ॥
लेतहि देतहि लेत न देतहि ।
सुंदर ज्ञानिकि ज्ञानिहि जानै ॥ ५ ॥

काज अकाज भलो न बुरो कछु ।
उत्तम मध्यम दृष्टि न आवै ॥
कायक वाचक मानस कर्म सु–
आपविषे न तिहूं ठहरावै ॥
हूं करिहूं न कियो न करूं अब ।
यूं मन इंद्रिनकूं बरतावै ॥
दीसत है व्यवहारविषे नित ।
सुंदर ज्ञानिकि कोउक पावै ॥ ६ ॥
देखत ब्रह्म सुनै पुनि ब्रह्महि ।
बोलत है वहि ब्रह्महि बानी ॥
भूमिहु नीरहु तेजहु वायुहु ।
व्योमहु ब्रह्म जहांलग प्रानी ॥
आदिहु अंतहु मध्यहु ब्रह्महि ।
है सब ब्रह्म यहै मति ठानी ॥
सुंदर ज्ञेय रु ज्ञानहु ब्रह्महि ।
आपहु ब्रह्महि जानत ज्ञानी ॥ ७ ॥

बैठत केवल ऊठत केवल ।
बोलत केवल बात कही है ॥
जागत केवल सोवत केवल ।
जोवत केवल दृष्टि लही है ॥
भूतहु केवल भव्यहु केवल ।
वर्तत केवल ब्रह्म सही है ॥
है सबही अध ऊर्ध्व सु केवल ।
सुंदर केवल-ज्ञान वही है ॥८॥
केवल-ज्ञान भयो जिनके उर ।
ते अध ऊर्ध्व सु लोक न जांहि ॥
व्यापक ब्रह्म अखंड निरंतर ।
वा विन और कहूं कछु नांही ॥
ज्यूं घट नाश भयो घट व्योम सु ।
लीन भयो पुनि है नभमांही ॥
त्यूं पुनि मुक्ति जहां वपु छांडत ।
सुंदर मोक्ष शिला कहु कांही ॥९॥

आदि हुतो नहि अंत रहै नहि ।
मध्य शरीर भयो भ्रमकूपा ॥
भासत है कछु औरकु औरही ।
ज्यूं रजुमें अहि सीपिमें रूपा ॥
देखि मरीचि उठ्यो विच विभ्रम ।
जानत नांहि वहै रवि धूपा ॥
सुंदर ज्ञान प्रकाश भयो जब ।
एक अखंडित ब्रह्म अनूपा ॥१०॥

॥ मनहर छंद ॥

जाहिके विवेक ज्ञान । ताहिके कुशल भयो ।
जाहि वौर जाहि वाकूं । ताहि वौर सुख है ॥
जैसे कोई पांवनि[2] पैजार[3]कूं चढाई लेत ।
ताकूं तौ न कोउ काटे । खोभरे[4]को दुःख है ॥
भावै कोउ निंदा लरै । भावै तौ प्रशंसा करै ।
वे तौ देखे आरशीमें आपनोहि मुख है ॥

२ पगमें ॥ ३ जूती ॥ ४ ढीलहोनी ॥

देहको व्योहार सब । मिथ्या करि जानत है ।
सुंदर कहत एक-आतमाही रूख है ॥११॥

अंतहकरण जाके । तमगुण छाई रह्यो ।
जडता अज्ञान वाके । आळश भै त्राश है ॥
रजोगुणको प्रभाव । अंतहकरण जाकें ।
विविध करम वाके । कामनाको वाश है ॥
सत्वगुण अंतहकरण जाके दांखयत ।
क्रिया करि शुद्ध वाके । भक्तिको निवाश है॥
त्रिगुण अतीत साक्षी। तुरीया स्वरूप जान ।
सुंदर कहत वाके। ज्ञानको प्रकाश है ॥१२॥

तमोगुण बुद्धि सो तो। तवाके समान जैसे ।
ताके मध्य सूरजकी। रंचहू न जोत है ॥
रजोगुण बुद्धि जैसे । आरसीकी ऊंधी वौर ।
ताके मध्य सूरजकी। कछुक उद्योत है ॥
सत्वगुण बुद्धि जैसे। आरसीकी सूधी वौर।
ताके मध्य प्रतिबिंब । सूरजको पोत है ॥

त्रिगुण अतीत जैसे प्रतिबिंब मिटी जात ।
सुंदर कहत एक । सुरजही होत है ॥१३॥
सबसूं उदास होई । काढि मन भिन्न करै ।
ताको नाम कहियत । परमवैराग है ॥
अंतहकरणहूकी वासना निवृत्त होई ।
ताकूं मुनि कहत हैं । वहै बडो त्याग है ॥
चित्त एक ईश्वरसूं । नेकहू न न्यारो होई ।
वहै भक्ति कहियत । वहै प्रेममाग है ॥
आपु ब्रह्म जगतकूं । एक करि जानै सब ।
सुंदर कहत वह । ज्ञान भप भाग है ॥१४॥
कोउ नृप फूलनकी । सेजपर सूतो आई ॥
जबलग जाग्यो तौलौं । अति सुख मान्यो है ॥
नींद जब आई तब । वाहीकूं स्वपन भयो ।
जब पर्‍यो नरकके । कुंडमें यूं जान्यो है ॥
अति दुःख पावै परि । निकस्यो न क्यूंही जाही ॥
जागि जब पर्‍यो तब । स्वपन बखान्यो है ॥

यह झूठ वह झूठ । जाग्रत स्वपन दोऊ ।
सुंदर कहत ज्ञानी । सब भ्रम मान्यो है ॥१५॥
स्वपनेमें राजा होई । स्वपनेमें रंक होई ।
स्वपनेमें सुख दुःख । सत्यकरि जानै है ॥
स्वपनेमें बुद्धिहीन । मूढ न समुझै कछु ।
स्वपन पंडित बहु । ग्रंथनि वखानै है ॥
स्वपनेमें कामी होई । इंद्रिनके वश पर्‍यो ।
स्वपनेमें यति होई । अहंकार आनै है ॥
स्वपनेतें जाग्यो जब । समुझ परी है तब ।
सुंदर कहत सब । मिथ्या करि मानै है ॥१६॥
विधि न निषेध कछु । भेद न अभेद पुनि ।
क्रिया सो करत दीसै । यूंही नित प्रति है ॥
काहूकूं निकट राखै । काहूकूं तौ दूर भाखै ।
काहूमूं नेरे न दूर । ऐसी जाकी मति है ॥
रागहू न द्वेष कोउ । शोक न उछाह दोउ ।
ऐसी विधि रहै कहूं । रति न विरति है ॥

बाहिर व्योहार ठानै । मनमैं स्वपन जानै ।
सुंदर ज्ञानीकी कछु । अद्भूत गति है॥१७॥
कामी है न यति है न । सूम है न सती है न।
राजा है न रंक है न । तन है न मन है ॥
सोवै है न जागै है न । पीछे है न आगे है न ।
ग्रहै है न त्यागै है न । घर है न बन है ॥
स्थिर है न डोलै है न । मौन है न बोलै है न।
बंध है न मोक्ष है न । स्वामी है न जन है।
वैसा कोउ होवै जब । वाकी गति जानै तब ।
सुंदर कहत ज्ञानी । ज्ञान शुद्ध घन है ॥१८॥
श्रवन सुनत मुख । बोलन बचन घ्राण ।
सूंघत फूलन रूप । देखत दृगन है ॥
त्वक सपरस रस । रसना ग्रसत कर ।
ग्रहत असन मुख चलत पगन है ॥
करत गमन पुनि । बैठत भवन सेज ।

५ भोजन ॥

सोवत स्वन पुनि । बोढत नगन है ॥
जो जो कछु व्यवहार। जानत सकल भ्रम।
सुंदर कहत ज्ञानी। ज्ञानमें मगन है ॥१९॥
कर्म न विकर्म करै । भाव न अभाव धरै।
शुभ न अशुभ परै। यातें न धरक है ॥
वसति न शून्य जाके। पापहू न पुण्य ताके।
अधिक न न्यून वाके। स्वर्ग न नरक है ॥
सुखदुःख सम दोऊ। नीचहू न ऊंच कोऊ।
ऐसी विधि रहै सोऊ। मिल्यो न फरक है॥
एकही न दोय जानै। बंध मोक्ष भ्रम मानै।
सुंदर कहत ज्ञानी। ज्ञानमें गरक है ॥२०॥
अज्ञानीकूं दुःखको समूह जग जानियत।
ज्ञानीकूं जगत सब। आनंदस्वरूप है ॥
नैनहीनकूं तौ घर। बाहिर न सूझै कछु।
जहां जहां जाय तहां। तहां अंधकूप है ॥
जाके चक्षु है प्रकाश। अंधकार भयो नाश॥

वाके जहां रहै तहां । सूरजकी धूप है ॥
सुंदर अज्ञानी ज्ञानी । अंतर बहुत आहि ।
वाके सदा राति वाके । दिवस अनूप है ।२१।
ज्ञानी अरु अज्ञानीकी । क्रिया सब एकसीही ।
अज्ञ आशवान ज्ञानी । आश न निराश है ॥
अज्ञ जोई जोई करै । अहंकार बुद्धि धरै ।
ज्ञानी अहंकार बिनु । करत उदास है ॥
अज्ञ सुख-दुःख दोऊ । आपविषे मानि लेत ।
ज्ञानी सुख दुःखकूं न । जानै मेरे पास है ॥
अज्ञकूं जगत यह । सकल संताप करै ।
ज्ञानीकूं सुंदर सब । ब्रह्मको विलास है ॥२२॥
ज्ञानी लोक-संग्रहकूं । करत व्योहार विधि ।
अंतहकरणमें तो । स्वप्नकीसी दोर है ॥
देत उपदेश नाना-भांतिके वचन कही ।
सब कोऊ जानत सकल शिरमोर है ॥
हलन चलन पुनि । देहको करत नित ।

ज्ञानमें गरक गति । लिये निज ठौर है ॥
सुंदर कहत जैसे । दंत गजराज मुख ।
खाइबेके और रु दिखाइबेके और है ॥२३॥
इंद्रिनिको ज्ञान जाकें । सो तौ है पशु समान ।
देह अभिमान खान-पानहीसूं लीन है ॥
अंतहकरण ज्ञान । कछुक विचार जाके ।
मनुष्य व्योहार शुभ-कर्मके आधीन है ॥
आतमविचार ज्ञान । जाके निशि-वासर है ।
सोंही साधु सकलही । बातमें प्रवीन है ॥
एक परमातमाको । ज्ञान अनुभव जाके ।
सुंदर कहत वही । ज्ञानी भ्रम छीन है ॥ २४॥
जाहि ठौर रविको प्रकाश भयो ताहि ठौर ।
अंधकार भागि गया । ग्रह वनवासतें ॥
न तौ कछु वनतें उलटि आवै घरमांहि ।
न तौ वन चलि जाई । कनक आवासतें ॥

६ घर ॥

जैसे पछी पछ टूटी । जाई ठौर पऱ्यो आई ।
ताहि ठौर गिरि रह्यो । ऊडवेकी आसतें ॥
सुंदर कहत मिटि। जाई सव दौड दुःख ।
धोखो न रहत कोऊ। ज्ञानके प्रकाशतें ॥२५॥
जैसे कोऊ देश जाई । भाषा कहै औरसीहो।
समुझै न वासूं । कहै क्या कहतु है ॥
कोऊ दिन रही करि। बोली सीखै उनहीकी ।
फेरि समुझावै तब । सब को लहतु है ॥
तैसे ज्ञान कहेतें सुनत विपरीत लागै ।
आप आपनोही मत । सबको गहतु है ॥
उनहीके मत करि । सुंदर कहत ज्ञान ।
तबहीतें ज्ञान ठहराईके रहतु है ॥ २६ ॥
एक ज्ञानी कर्मनमें । ततपर देखियत ।
भक्तिको प्रभाव नांहि । ज्ञानमें गरक है ॥
एक ज्ञानी भगतिको। अत्यंत प्रभाव लिये।

ज्ञानमांहि निश्चै करि। कर्मसूं तरक है ॥
एक ज्ञानी ज्ञानहीमें। ज्ञानको विचार करै।
भक्ति अरु कर्म इन। दुहूंतें फरक है ॥
कर्म भक्ति ज्ञान तीनूं। वेदमें बखानि कहै।
सुंदर बतायो गुरु। ताहीमें लरक है ॥२७॥
जैसे पछी पगनसूं। चलत अवनि आई।
तैसे ज्ञानी देह करि। करम करतु है ॥
जैसे पछी चंचू करि। चुगत आहार पुनि।
तैसे ज्ञानी उरमें। उपासना धरतु है ॥
जैसे पछी पछनसूं। उडत गगनमांही।
तैसे ज्ञानी ज्ञान करि। ब्रह्ममें चरतु है ॥
सुंदर कहत ज्ञानी। तीनूं भांति देखियत।
ऐसी विधि जानै सब। संशय हरतु है ॥२८॥

॥ इंदव छंद ॥

एक क्रिया करि किंषिं निपावत।

---

७ त्याग ॥ ८ भेद ॥ ९ कृषिः—खेती ॥

आदि रु अंत ममत्व बँध्यो है ॥
एक क्रिया करि पाक करै जब ।
भोजनकूं कछु अन्न रँध्यो है ॥
एक क्रिया मल त्यागत है लघु-
नीत करै कहुं नाहि फँध्यो है ॥
त्युं यह कर्म उपासन ज्ञानहि ।
सुंदर तीनप्रकार सँध्यो है   ॥२९॥
दोउ जने मिलि चोपर खेलत ।
सांरि मरै पुनि ढारत पासा ॥
जीतत है सु खुशी मनमें अति ।
हारत है सु भरैहि उसासा ॥
एक जनो दोउ वौरहि खेलत ।
हार न जीत करै जु तमासा ॥
त्यूंही अज्ञानिकूं द्वैत भयो भ्रम ।
सुंदर ज्ञानिकूं एक प्रकासा

१० सोगठी ॥

सवैया (एकतीस मात्रा) ॥

जीव नरेश अविद्या निद्रा ।
सुख सय्या सोयो करि हेत ॥
कर्म खवास पूट भरि लाई ।
तातें बहु विधि भयो अचेत ॥
भक्ति प्रधान जगायो कर गहि ।
आलस भरि जंभाई लेत ।
सुंदर अब निद्रा वस नांहि ।
ज्ञान जागरण सदा सुचेत ॥३१॥

सवैया (बत्तीस मात्रा) ॥

ज्ञानी कर्म करै नाना विधि ।
अहंकार यातनको खोवै ॥
कर्मनको फल कछू न जोवै ।
अंतःकरण वासना धोवै ॥
ज्यूं कोउ खेतीकूं जोतत
लेकरी बीज भूनिके बोवै ॥

सुंदर कहै सुनो दृष्टांतहि ।
नागो न्हाई कहा निचोवै ॥३२॥
॥ इति ज्ञानीको अंग संपूर्ण ॥ ३० ॥

अथ निर्संशय ज्ञानीको अंग ३१ ॥

——×——

॥ मनहर छंद ॥

भावै देह छुटि जाहु । काशीमांहि गंगातट ।
भावै देह छूटि जाहु । क्षेत्र मघंहरमें ॥
भावै देह छूटि जाहु ।विप्रके सदन मध्य ।
भावै देह छूटि जाहु । स्वपचके घरमें ॥
भावै देह छूटै देश । आर्य अनार्यमें ।
भावै देह छूटि जाहु । वनमें नगरमें ॥

---

१ मघाक्षेत्रमें जो मरै है, सो गर्दभ होवै है; ऐसें पुराणमें लिख्या है. यह क्षेत्र काशीके निजीक तीन कोशपर है ॥ २ आर्य:—हिंदुस्थानदेश ॥ ३ यौवनका देश ॥

सुंदर ज्ञानीके कछु । संशय रहत नांहि ।
स्वरग नरक सब । भागीगयो भरमें ॥१॥
भावै देह छूटि जाहु । आजही पलकमांहि ।
भावै देह रहु चिर-काळ युग अंत जू ॥
भावै देह छूटि जाहु । ग्रीषम पावस ऋतु ।
शरद शिशिर शीत । छूटत वसंत जू ॥
भावै दक्षणायनहु । भावै उत्तरायणहु ।
भावै देह सर्प सिंह । वीजळी हनंत जू
सुंदर कहत एक-आतमा अखंड जानि ।
याही भांति निरसंशै । भये सब संत जू॥२॥

॥ इंदव छंद ॥

कै यह देह गिरो वन पर्वत ।
कै यह देह नदीहि बहो जू ॥
कै यह देह धरो धरतीमँहि ।
कै यह देह कृशानै दहो जू ॥

४ कृशानुः-अग्नि ॥

कै यह देह निरादर निंदहु ।
कै यह देह सराहु कहो जू
सुंदर संशय दूर भयो सब ।
कै यह देह चलो कि रहो जू ॥३॥
कै यह देह सदा सुख संपत्ति ।
कै यह देह विपत्ति परो जू ॥
कै यह देह निरोग रहो नित ।
कै यह देहहि रोग चरो जू ॥
कै यह देह हुतासन पैठहु ।
कै यह देह हिमार गरो जू ॥
सुंदर संशय दूर भयो सब ।
कै यह देह जिवो कि मरो जू ॥४॥

॥ इति निर्संशय ज्ञानीको अंग संपूर्ण ॥३१॥

अथ प्रेम ज्ञानीको अंग ॥ ३२ ॥

—×—

॥ इंदव छंद ॥

प्रीतिकि रीति कछू नही राखत ।
जात न पात नही कुल गारो ॥
प्रेमकुं नेम कहूं नहि दीसत ।
लाज न कान लग्यो सब खारो ॥
लीन भयो हरिसूं अभिअंतर ।
आठहु जाम रहै मतवारो ॥
सुंदर कोउक जानि शकै यह ।
गोकुल गांवको पैंडोहि न्यारो ॥१॥

ज्ञान दियो गुरु देव कृपा करि ।
दूरि कियो भ्रम खोलि किवारो ॥
और क्रिया कहि कौन करै अब ।
चित्त लग्यो परब्रह्म पियारो ॥

---

१ मार्ग ॥

पाव विना चलवो किहि ठौरहु ।
पंगु भयो मन मित्त हमारो ॥
सुंदर कोउक जानि शकै यह ।
गोकुल गांवको पैंडोहि न्यारो ॥ २ ॥

एक अखंडित ज्यूं नभ व्यापक ।
बाहिर-भीतर है इक्क सारो ॥
दृष्टिं न मुष्टि न रूप न रेष न ।
श्वेत न पीत न रक्त न कारो ॥
चक्रित होई रहै अनुभौ विन ।
जौं लगि नाहिन ज्ञान उजारो ॥
सुंदर कोउक जानि शकै यह ।
गोकुल गांवको पैंडोहि न्यारो ॥ ३ ॥

द्वंद विना विचरै वसुधा२पर ।
जा घट आतमज्ञान अपारो ॥
काम न क्रोध न लोभ न मोह न ।

२ पृथिवी ॥

राग न द्वेष न मारु न थारो ॥
योग न भोग न त्याग न संग्रह ।
देह दशा न ढँक्यो न उघारो ॥
सुंदर कोउक जानि शकै यह ।
गोकुल गांवको पैंडोंहि न्यारो ॥४॥
लक्ष अलक्ष अदक्ष न दक्ष न ।
पक्ष अपक्ष न तूल न भारो ॥
झूठ न साच अवाच न वाच न ।
कंचन काच न दीन उदारो ॥
जान अजान न मान अमान न ।
सान गुमान न जीत न हारो ॥
सुंदर कोउक जानि शकै यह ।
गोकुल गांवको पैंडोंहि न्यारो ॥५॥

॥ इति प्रेमज्ञानीको अंग संपूर्ण ॥ ३२ ॥

अथ आत्म अनुभवको अंग ॥३३॥

—x—

॥ इंदव छंद ॥

है दिलमें दिलदार सही अखि-
यां उलटी करि ताहि चितैये ॥
आबमें खाकमें बादमें आतस ।
जानमें सुंदर जानि जनैये ॥
नूरमें नूर है तेजमें तेजहि ।
ज्योतिमें ज्योति मिले मिलि जैये ॥
क्या कहिये कहते न बनै कछु ।
जो कहिये कहतेहि लजैये ॥१॥

जो कहूँ है सबमें यह एक तु ।
सो कहँ केसु हैं आंखि दिखैये ॥
जो कहूँ रूप न रेष दिसै कछु ।
तौ सब झूठकि मानिहि कैये ॥

---

१ पवन.

जो कहूँ सुंदर नैननि मांझ तु ।
नैन रु बैन गये पुनि हैये ॥
क्या कहिये कहते न बने कछु ।
जो कहिये कहतेहि लजैये ॥२॥

होत विनोद जितो अभि अंतर ।
सो सुख आपमें आपहि पैये ॥
बाहिरकूं उमग्यो पुनि आवत ।
कंठतें सुंदर फेर पठैये ॥
स्वाद निवेर निवेर्यो न जात सु ।
मानहु गूड गुंगे नित खैये ॥
क्या कहिये कहते न बने कछु ।
जो कहिये कहतेहि लजैये ॥ ३ ॥

व्योमका व्योम अनंत अखंडित ।
आदि न अंत सु मध्य कहां है ॥
को परमान करै परिपूरण ।
द्वैत अद्वैत कछु न जहां है ॥

कारण कारज भेद नहीं कछु ।
आपमें आपही आप तहां है ॥
सुंदर दीसत सुंदरमांहि सु ।
सुंदरता कहि कौंन उहां है ॥ ४ ॥

॥ प्रश्नोत्तर ॥

एक कि दोइ ! न एक न दोइ उ-
ही कि इही ? न उही न इही है ॥
शून्य कि स्थूल ? न शून्य न स्थूल जि-
ही कि तिही ? न जिही न तिही है ॥
मूल कि डाल ? न मूल न डाल व-
ही कि मही ? न वही न मही है ॥
जीव कि ब्रह्म ? न जीव न ब्रह्म तु ।
है कि नहीं ? कछु है न नहीं है ॥५॥

॥ पूर्ववत् ॥

एक कहूं तु अनेकसु दीसत ।
एक अनेक नहीं कछु ऐसो ॥

आदि कहूं तहाँ अंतहु आवत ।
आदि न अंत न मध्य सु कैसो ॥
गोप्य कहूं तु अगोप्य कहां यह ।
गोप्य अगोप्य न ऊभों न वैसो ॥
जोइ कहूं सोंइ है नाहि सुंदर ।
है तु सही परि जैसेंकों तैसो ॥६॥

॥ मनहर छंद ॥

एक को कहै जु कहूं । एकही प्रकाशत है ।
दोऊही कहै जु कोऊ । दूसरोहु देखिये ॥
अनेक कहे जु कोऊ । अनेक आभासै तांहि ।
जाके जैसो भाव तैसो । वाकूंही विशेखिये ॥
वचन विलास कोऊ । कैसेही बखानि कहै ।
व्योममांहि चित्र कहो । कैसे कारि लेखिये ॥
अनुभव किये एक । दोइ न अनेक कछु ।
सुंदर कहत ज्यूं है । त्यूंही ताहि पेखिये ॥७॥
वचनही वेद विधि । वचनहि शास्त्र पुनि ।

वचन समृति अरु । वचन पुरान जू ॥
वचनही और ग्रंथ । वचनही व्याकरण ।
वचनही काव्य छंद । नाटक बखान जू ॥
वचनही संसकृत वचनही पराकृत ।
वचनही भाषा सब । जगतमें जान जू ॥
वचनके परे है सो । वचनमें आवै नही ।
सुंदर कहत वही । अनुभौ प्रमान जू ॥८॥
इंद्र नही जानि शकै । अल्प ज्ञान इंद्रिनको।
प्राणहु न जानि शकै। श्वास आवै जाइ है ॥
मनहु न जानि शकै । संकल्प विकल्प करै।
बुद्धिहु न जानि शकै । सुन्यो सब ताइ है ॥
चित्त अहंकार पुनि एकहु न जानि शकै।
शब्दहु न जानि शकै । अनुमान पाइ है ॥
सुंदर कहत ताहि। कोऊ नही जानि शकै।
दीवा करि देखिये सो ।ऐसी नहि ळाइ है ।९।

॥ इंद्व छंद ॥

श्रोत्र न जानत चक्षु न जानत ।
जानत नांहि जु सूंघत घ्राने ॥
जानि सपर्स त्वचा न शकै पुनि ।
जानत नांहि जु जीभ वखानै ॥
मंन न जानत बुद्धि न जानत ।
चित्त अहंकार क्यूं पहिचानै ॥
सुंदर शब्दहु जानि शकै नहि ।
आतम आपकूं आपहि जानै ॥१०॥

शूरकें तेजतैं सूरज दीसत ।
चंद्रकें तेजतैं चंद्र उजासे ॥
तारेंकें तेजतैं तारेंहु दीसत ।
वीजुळ तेजतैं वीज चकासै ॥
दीपकें तेजतैं दीपक दीसत ।
हीरेंकें तेजतैं हीरोंहि भासै ॥

तैसेंहि सुंदर आतम जानहु ।
आपके ज्ञानतें आप प्रकासै ॥११॥
कोउ कहै यह सृष्टि स्वभावतें ।
कोउ कहै यह कर्मतें सृष्टि ॥
कोउ कहै यह काल उपावत ।
कोउ कहै यह ईश्वर-तिष्टी[2] ॥
कोउ कहै यह ऐसाहि होवत ।
क्यूं करि मानिय बात अनिष्टी ॥
सुंदर एक किये अनुभौ बिनु ।
जानि शकै नहि बाझहि दृष्टि ॥१२॥
कोउ तौ मोक्ष अकाश बतावत ।
कोउ तौ मोक्ष पताळाके मांहि ॥
कोउ तौ मोक्ष कहै पृथिवीपर ।
कोउ कहैं कहूँ और कहांही ॥
कोउ बतावत मोक्ष शिलापर ।

---

२ स्थिति ॥

कोउक मोक्ष मिटै परछांही ॥
सुंदर आतमके अनुभौ विन ।
और कहूं कोंइ मोक्षहि नांही ॥१३॥
मूएँते मोक्ष कहैं सब पंडित ।
मूएँतें मोक्ष कहैं पुनि जैना ॥
मूएँते मोक्ष कहैं ऋषि तापस ।
मूएँतें मोक्ष कहैं शिव सैना ॥
मूएँते मोक्ष मलेछ कहैं पुनि ।
धोखेंहि धोखे बखानत बैना ॥
सुंदर आतमको अनुभौ सोंइ ।
जीवत मोक्ष सदा सुख चैना ॥१४॥

॥ मनहर छंद ॥

कोऊ तौ कहत ब्रह्म । नाभिक कमल मध्य ।
कोऊ तौ कहत ब्रह्म । हृदेमे प्रकाश है ॥
कोऊ तौ कहत कंठ । नाशिकाके अग्रभाग ।

---

२ भ्रांति ॥

कोऊ तौ कहत ब्रह्म। भ्रकुटीमें वास है॥
कोऊ तौ कहत ब्रह्म। दशवें दुवार बीच।
कोऊ तौ कहै भ्रमर-गुफामें निवास है॥
पिंडमें ब्रह्मांडमें निरंतर विराजै ब्रह्म।
सुंदर अखंड जैसे। व्यापक आकाश है॥१५॥
पांव जिन ग्रह्यो सो तौ। कहत है ऊखरसो।
पुच्छ जिन ग्रह्यो तिन। लावसो सुनायो है।
सूंढ जिन ग्रही तिन। डगलेकी बांह कही।
दंत जिन ग्रह्यो तिन। मूसर दिखायो है॥
कान जिन ग्रह्यो तिन। सूपसो बनाय कह्यो।
पीठ जिन ग्रही तिन। बिटोरा बतायो है।
जैसो है तैसोही तांही। सुंदर सुअँक्षी जानै।
आंधरेंने हाथी देखि। झगरो मचायो है॥१६॥
न्यायशास्त्र कहत है। प्रगट ईश्वरवाद।
मीमांसाही शास्त्रमांही। कर्मवाद कह्यो है॥

---

४ नेत्रोंवाला.

वैशेषिक शास्त्र पुनि। कालवादी है प्रसिद्ध।
पातांजलि शास्त्रमांहि। योगवाद लह्यो है।
सांख्य शास्त्रमांहि पुनि। प्रकृति-पुरुष-वाद।
वेदांत जु शास्त्र तिन। ब्रह्मवाद ग्रह्यो है॥
सुंदर कहत षट–शास्त्रमांहि भयो वाद।
जाके अनुभव ज्ञान। वादमें न बह्यो है ॥१७॥
"प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म।"ऐसे ऋगवेद कहै।
"अहं ब्रह्म अस्मि" इति। यजुर्वेद यूं कहै।
"तत्त्वमसि" इति,सामवेद यूं बखानत है।
"अयं आत्मा ब्रह्म"काहि। अथर्वण यूं लहै।
एक एक बचनमें। तीन पद है प्रसिद्ध।
तिनको विचार करि। अर्थ तत्त्वकूं ग्रहै॥
चारिवेद भिन्न भिन्न। सबको सिद्धांत एक।
सुंदर समझि करि। चुप चाप व्है रहै ॥१८॥
इंद्रिनके भोग जब। चाहै तब आय रहै।
नाशवंत तातें तुछानंद यूं सुनायो है॥

देवलोक इंद्रलोक। ब्रह्मलोक शिवलोक।
वैकुंठके सुखलौं गणितानंद गायो है॥
अक्षय अखंड एक-रस परिपूरण है।
ताहितें पूरणानंद अनुभौतें पायो है॥
याहिके अंतरभूत। आनंद जहांलौं और।
सुंदर समुद्रमांहि। सर्व जल आयो है ॥१९॥
एक तौ माया-विलास। जगत प्रपंच यह।
चारि खानि भेद पाय। द्वैत भासि रह्यो है।
दूसरो विषै-विलास इंद्रिनके विषै पंच।
शब्द सपरस रूप। रस गंध रह्यो है॥
तीसरो वाक्य-विलास। सो तौ सब वेदमांहि।
वरणिके जहां लगि। वचनतें कह्यो है॥
चौथो ब्रह्मको विलास। तिहूंको अभाव जहां।
सुंदर कहत वह। अनुभौतें लह्यो है ॥२०॥
जीवतही देवलोक। जीवतही इंद्रलोक।
जीवतही जन तप। सत्य-लोक आयो है।

जीवतही त्रिथिलोक । जीवतही शिवलोक।
जीवत वैकुंठलोक । जो अकुंठ गायो है ॥
जीवतही मोक्षशिला । जीवतही ब्रह्म मांहि।
जीवतही निकट परमपद पायो है ॥
आतमाको अनुभव । जिनकै जीवत भया।
सुंदर कहत तिन। संशय मिटायो है ॥२१॥
क्षिति भ्रम जल भ्रम पावक पवन भ्रम।
व्योम भ्रम तिनको शरीर भ्रम मानिये ॥
इंद्रिये दशहू भ्रम । अंतहकरण भ्रम।
तिनहीके देवता सो । भ्रमतें बखानिये ॥
सत्व रज तम भ्रम । पुनि अहंकार भ्रम।
महत्तत्त्व प्रकृति पुरुष भ्रम मानिये ॥
जोई कछु कहिये सो । सुंदर सकल भ्रम
अनुभव किये एक-आतमाही जानिये॥२२॥
भूमिहू विलीन होई। आपहू विलीन होई।
तेजहू विलीन होई। वायु जो वहतु है ॥

व्योमहू विलीन होई। त्रिगुण विलीन होई।
शब्दहू विलीन होई। अह जो कहतु है ॥
महत्तत्त्व विलीन होई। प्रकृति विलीन होई।
पुरुष विलीन होई। देह जो गहतु है ॥
सुंदर सकल लोक। कहिये सो लीन होई।
आतमाके अनुभव। आतमा रहतु है ॥२३॥

मायाकी अपेक्षा ब्रह्म। रात्रिकी अपेक्षा दिन।
जडकी अपेक्षा करि चेतन बख ानिये ॥
अज्ञान अपेक्षा ज्ञान। बंधकी अपेक्षा मोक्ष।
द्वैतकी अपेक्षा सो तौ। अद्वैत प्रमानिये ॥
दुःखकी अपेक्षा सुख। पापकी अपेक्षा पुण्य।
झूठकी अपेक्षा ताहि। सत्य करि मानिये।
सुंदर सकल यह। वचन-विलास भ्रम।
वचन रहित अवचन। सोई जानिये ॥२४॥

आतमा कहत गुरु। शुद्ध निरबंध नित।
सत्य करि मानै साता। शब्दह प्रमान है॥

जैसे व्योम व्यापक अखंड परिपूरण है ।
व्योम उपमातें उपमान सो प्रमान है ॥
जाकी सत्ता पाई सब । इंद्रिय चेतन होई ।
याहि अनुमान अनुमानहू प्रमान है ॥
अनुभव जाने तब । सकल संदेह मिटै ।
सुंदर कहत यह प्रत्यक्षप्रमान है ॥२५॥
एक घर दोय घर । तीन घर चार घर ।
पंच घर तजै तब । छठो घर पाइये ॥
एक एक घरके आधार एक एक घर ।
एक घर निराधार । आपही दिखाइये ॥
सो तौ घर साक्षीरूप । घरघरमें अनूप ।
ताहू घर मध्य कोऊ । दिन ठहराइये ॥
ताके परे साक्षी न असाक्षी न सुंदर कछु ।
बचन अतीत कहूं । आइ है न जाइये ॥२६॥
एक तौ श्रवण ज्ञान । पावक ज्युं देखियत ।
माया जल परसत । बेगि बुझि जात है ।

एक है मनन ज्ञान । बिजुली ज्यूं घन मध्य ।
माया जल बरषत । तामें न बुझात है ॥
एक निदिध्यास ज्ञान । बडवाअनल जैसे ।
प्रगट समुद्रमांहि । माया जल खात है ॥
अनुभौ साक्षात ज्ञान । प्रलयकी अग्निसम ।
सुंदर कहत द्वैत । प्रपंच बिलात है ॥२७॥
भोजनकी बात सुनि । मनमें मुदित भयो ।
मुखमें न परै जौलौं । मेलिये न ग्रास है ॥
सकल सामग्री आनि । पाककूं करन लागो ।
मनन करत कब जीमहूं ये आस है ॥
पाक जब भयो तब । भोजन करन बैठो ।
मुखमें मेलत जाई । यहै निदिध्यास है ॥
भोजन पूरन करि । तृपत भयो है जब ।
सुंदर साक्षातकार । अनुभौ प्रकाश है ॥२८॥
श्रवण करत जब । सबसूं उदास होई ।
चित्त एकाग्रह आनि । गुरुमुख सुनिये ॥

बैठिके एकांत ठौर । अंतहकरणमांहि ।
मनन करत फेर । उहै ज्ञान गुनिये ॥
ब्रह्म अपरोक्ष जानि । कहत है "अहं ब्रह्म ।"
सोहं सोहं होई सदा । निदिध्यास धुनिये ।
सुंदर साक्षातकार । कीटहीतें होई भ्रंग ।
यह अनुभव यह । स्वस्वरूप मानिये ॥२९॥
जबही जिज्ञासा होई । चित्त एक ठौर आनि ।
मृग ज्यूं सुनत नाद । श्रवण सो कहिये ।
जैसे स्वांत बुंदहूकूं । चात्रक रटत पुनि ।
ऐसेही मनन करै । कब बूंद लहिये ॥
रात्रिमें चकोर जैसे । चंद्रमाको धरै ध्यान।
ऐसे जानि निदिध्यास । दृढ कारि ग्रहिये ॥
यहै अनुभव यहै । कहिये साक्षातकार ।
सुंदर पोरेतें गलि । पानी होई रहिये॥३०॥
काहूकूं पूछत रंक । धन कैसे पाइयत ।
कान देके सुनत श्रवण सोई जानिये ।

उन कह्यो धन इम। देख्यो है फलानी ठौर।
मनन करत भयो। कब घर आनिये।
फेरिं जब कह्यो धन। गड्यो तेरे घरमांहि।
खोदन लाग्यो है जब। निदिध्यास ठानिये॥
धन निकस्यो है जब। दारिद्र गयो है तब।
सुंदर साक्षातकार। नृपति बखानिये॥३१॥
चकमक ठोकेतें चमत्कार होत कछु।
ऐसेही श्रवण ज्ञान। तवही लौं जानिये॥
कफमांहिं लागै जब। प्रगटै पावक ज्ञान।
सिलगत जाई वह। मनन बखानिये॥
वर्धमान भये काठ। कर्मनकूं जरावत।
यही निदिध्यास ज्ञान। ग्रंथनमें गानिये॥
सकल प्रपंच यह। झारिके समाई जात।
सुंदर कहत यह। अनुभौ प्रमानिये॥३२॥
॥ इति आत्म अनुभवको अंग संपूर्ण ॥ ३३ ॥

——×——

॥ अथ आश्चर्यको अंग ॥ ३४ ॥

——×——

॥ मनहर छंद ॥

बेदको विचार सोई । सुनिके संतन मुख ।
आपहू विचार करि । सोई धारियतु है ॥
योगकी युगति जानि । जगतें उदास होई ।
शून्यमें समाधि छाई । मन मारियतु है ॥
ऐसे ऐसे करत करत केते दीन बीते ।
सुंदर कहत अजहू विचारियतु है ॥
कारोही न पीरो न तौ । ताताही न सीरो कछु ।
हाथ न परत तातें । हाथ झारियतु है ॥१॥
मनको अगम अति । वचन थकित होत ।
बुद्धिहू विचार करी । बहु खंडियतु है ॥
श्रवण न सुनै तांहि । नैनहू न देखै कछु ।
रसनाको रस सब । रस छांडियतु है ॥
त्वकको सपर्श नांही घ्राणको न विषै होई ।

पगनहू करि जित। तित हिंडायतु है ॥
सुंदर कहत अति। सूक्षम स्वरूप कछु।
हाथ न परत तातें। हाथ मींडयतु है ॥२॥
गुफाकूं संवारत है। आसनहू मारि करि।
प्राणहीकूं धारि धारणा कसीटियतु है ॥
इंद्रिनकूं घेरि करि। मनहूकूं फेरि पुनि।
त्रिकुटीमें हेरि हेरि। हियो चीटियतु है ॥
सब छटिकाय पुनि। शून्यमें समाय तहां।
समाधि लगाय करि। आंख मिटियतु है ॥
सुंदर कहत हम। औरहू किये उपाय।
हाथ न परत तातें। हाथ छींटियतु है ॥३॥
बोलैही न मौन धरै। बैठो है न गौन करै।
जागैही न सोवै न तौ। दूर है न नीरो है ॥
आवैही न जात न तौ। थिर अकुलात पुनि।
भूखोही न खात कछु। तातोही न सीरो है ॥
लेत है न देत कछु। हेत न कुहेत पुनि।

श्यामही न श्वेत अरु। रातो है न पीरो है ॥
दूबरो न मोटो कछु। लांबोही न छोटो तातें।
सुंदर कहत कछु। काचही न हीरो है ॥४॥
भूमिही न आप न तौ। तेजही न ताप न तौ।
वायुही न व्योम न तौ। पंचको पसारो है।
हाथही न पाव न तौ। नैंन वैन भाव न तौ।
रंकही न राव न तौ। वृद्धही न वारो है।
पिंडही न प्राण न तौ ज्ञान न अज्ञान न तौ।
बंध निरवान न तौ। हरवा न भारो है।
द्वैत न अद्वैत न तौ। मीत न अमीत न तौ।
सुंदर कह्यो न जाई। मिल्योही न न्यारो है॥५

॥ इंदव छंद ॥

पाप न पुन्य न स्थूल न शून्य न।
बोलैं न मौन न सोवैं न जागै ॥
एक न दोइ न पुर्ष न जोइ क–
हैं कहॉ कोइ न पीछें न आगै ॥
वृद्ध न वाल न कर्म न काल न।

ह्रस्व विशाल न झूझै न भागै ॥
बंध न मोक्ष अमोक्ष न मोक्ष न ।
सुंदर है न असुंदर लागै ॥ ६ ॥

तत्त्व अतत्त्व कह्यो नहि जात जु ।
शून्य अशून्य उरे न परे है ॥
ज्योति अज्योति न जानि शकै कोउ ।
आदि न अंत जिवै न मरै है ॥
रूप अरूप कछु नहि दीसत ।
भेद अभेद करै न हरै है ॥
शुद्ध अशुद्ध कह्यौ पुनि कोन जु ।
सुंदर बोलै न मौन धरै है ॥ ७ ॥

खोजत खोजत खोजि गये पुनि ।
खोजत हैं अरु खोजहि आने ॥
गावत गावत गाइ रहे सब ।
गावत हैं पुनि गाइहि गाने ॥

देखत देखत देखि थके सब ।
दीसै नही कछु ठौर ठिकाने ॥
बूझत बूझत बूझिकें सुंदर ।
हेरत हेरत हेरहि राने ॥ ८ ॥

पिंडमें है परि पिंड मिलै नहि ।
पिंड परे पुनि त्यूंहि रहावै ॥
श्रोत्रमें है परि श्रोत्र सुनै नहि
दृष्टिमें है परि दृष्ट न आवै ॥
बुद्धिमें है परि बुद्धि न जानत ।
चित्तमें है परि चित्त न पावै ॥
शब्दमे है परि शब्द थक्यो कहिं ।
शब्दहु सुंदर दूर बतावै ॥ ९ ॥

एकहि ब्रह्म रह्यो भरपूर तु ।
दूसर कौन बतावनहारो ॥
जो कोउ जीव करै परमान तु ।
जीव कहा कछु ब्रह्मतें न्यारो ॥

जो कहि जीव भयो जगदीशत ।
तौ रविमांहि कहांको अँधारो ।
सुंदर मौन गही यह जानिकैं ।
कौनहु भांति न व्है निरधारो ॥ १० ॥
भूमिहु तैसेंहि आपहु तैसेंहि ।
तैसेंहि तेज रु तैसेंहि पौना ॥
व्योमहु तैसेंहि आहि अखंडित ।
तैसेंहि ब्रह्म रह्यो भरि भौना ॥
देह सँयोग वियोग भयो तब ।
आयौ सौ कौन गयो तौ हि कौना ॥
जो कहिये कहते न वनै कछु ।
सुंदर जानि गही मुख मौना ॥ ११ ॥
जो हम खोज करैं अभिअंतर ।
सो वह खोज उरेहि बिछावै ॥
सो हम बाहिरकूं उठि दौरत ।
तौ कछु बाहिर हाथ न आवै ॥

जो हम काहुकूँ पूछत हैं पुनि ।
सोहि अगाध अगाध बतावै ॥
ताहित कोउ न जानि सकै तिहि ।
सुंदर कोनसि ठौर रहावै ॥ १२ ॥

नैन न बैन न चैन न आस न ।
वास न खास न प्यास न याते ॥
शीत न घाम न ठौर न ठाम न ।
पुर्ष न बाम न मात न ताते ॥
रूप न रेष न शेष अशेष न ।
श्वेत न पीत न श्याम न राते ॥
सुंदर मौन गही सिद्ध साधक ।
कौन कहै उसकी मुख बाते ॥१३ ॥

वेद थके कहि तंत्र थके कहि ।
ग्रंथ थके निशि वासर गाते ॥
शेष थके शिव इंद्र थके पुनि ।
खोज किया बहु भांति विधाते ॥

पीर थके पुनि मीर थके पुनि ।
धीर थके बहु बोलि गिराते ॥
सुंदर मौन गही सिद्ध साधक ।
कौन कहे उसकी मुख बाते ॥ १४ ॥
योगि थके कहि जैन थके ऋषि ।
तापस थाकि रहे फल खाते ॥
न्यासि थके वनवासि थके जु उ-
दासि थके बहु फेर फिराते ॥
शेखहु शालिक औरहू लाइक ।
थाकि रहे मनमें मुसकाते ॥
सुंदर मौन गही सिद्ध साधक ।
कौन कहै उसकी मुख बाते ॥ १५ ॥

॥ इति आश्चर्यको अंग संपूर्ण ॥ १४ ॥

——xx——

इति

श्री सुंदरविलास

श्री ज्ञानसमुद्र

श्री सुंदरकाव्य

प्रथम विभागः

समाप्तः ॥ १ ॥





॥ श्री ॥

॥ परमात्मने नमः ॥

॥ ज्ञानसमुद्र ॥

अथ गुरुशिष्यलच्छन निरूपनो नाम प्रथमोल्लासः ॥ १ ॥

॥ मंगलाचरण ॥ छप्पयछंद ॥

प्रथम वंदि परब्रह्म ।
परम आनंद स्वरूपं ॥
दुतिय वंदि गुरुदेव ।
दियो जिहिं ज्ञान अनुपं ॥
तृतीय वंदि सब संत ।
जोरि कर तिनके. आगें ॥
मन वच काय प्रणाम ।
करत भय भ्रम सब भागे ॥
इहि भांति मंगलाचरण करि ।

सुंदर ग्रंथ वखानियें ॥
तहं विघ्न कोउ उपजे नही ।
यहि निश्चय करि मानिये ॥ १ ॥

॥ दोहा छंद ॥

ब्रह्म प्रणम्य प्रणम्य गुरु ।
पुनि प्रणम्य सब संत ॥
करत मंगलाचरण इह ।
नासत बिघ्न अनंत ॥ २ ॥

उहै ब्रह्म गुरु संत उह ।
वस्तु विराजत एक ॥
वचनविलास विभाग त्रय ।
वंदन भाव विवेक ॥ ३ ॥

॥ ग्रंथवर्नन दोहा ॥

ब्रन्यौं चाहत ग्रंथकीं ।
कहां बुद्धि मम छूद्र ॥

अति अगाध मुनि कहत हे ।
सुंदर ज्ञानसमुद्र ॥ ४ ॥

चोपाई छंद ॥

ज्ञानसमुद्र ग्रंथ अब भाखों
बहुत भांति मनमें अभिलाखों ॥
यथाशक्ति हों बरनि सुनाऊं ।
जो सद्गुरु पहिं आज्ञा पाऊं ॥ ५ ॥

॥ सोरठा छंद ॥

हे यह अति गंभीर ।
उंठत लहरि आनंदकी ॥
मिष्ट सु याको नीर ।
सकल पदारथ मध्य हे ॥ ६ ॥

॥ इंदव छंद ॥

जाति जिती सब छंदनकी वहु ।
सीप भई इहि सागरमांही ॥
है तिनमें मुकताफल अर्थ लहै ॥

उनको हितसों अवगांही ॥
जे नर जान कहावत है अति ।
गर्व भरे तिनकी गमि नांही ॥
सुंदर पेठि सके नहि जीवत ।
दै बुडकी मरि जीवहिं जांहि ॥ ७ ॥

॥ जिज्ञासुलच्छन ॥ सवैया छंद ॥

जे गुरु भक्त विरक्त जक्तसों हैं ।
तिनके संतनको भाव ॥
वें जिज्ञासि उदास रहत है ।
गिनत न काहू रंक न राव ॥
वाद बिवाद करत नहि कबहुं ।
वस्तु जानिबेको अति चाव ॥
सुंदर जाकी मति है ऐसी ।
सो पेठेंगे यह दरियाव ॥ ८ ॥

॥ छप्पय छंद ॥

सुत कलत्र निज देह ।

आपकों बंधनु जानत ।
छूटों कौन उपाय
यहे उर अंतर आनत ॥
जन्म मरनकी संक ।
रहे निसुदिन मनमांही ॥
चोरासीके दुःख ।
नही कछु वरने जाही ।
इहि भांति रहत सोचत सदा ।
संतनकों पूछत फिरै ॥
है कोई ऐसो सतगुरु ।
जो मेरो कारज करै ॥ ९ ॥

॥ गुरुदेवकी दुर्लभता ॥ चौपाया छंद ॥

गुरुदेव बिना नहि मारग सूझे ।
गुरु विनु भक्ति न जाने ॥
गुरुदेव बिना नहि संसै भाजे ।
गुरु विनु लहे न ग्याने ॥

गुरुदेव विना नहि कारज होई ।
लोक बेद यों गावै ॥
गुरुदेव बिना नहि सतगति कोई ।
गुरु गोविंद बतावै ॥ १० ॥

॥ तोटक छंद ॥

गुरुदेव बिना नहि भागि जगै ।
गुरुदेव बिना नहि प्रीति लगै ॥
गुरुदेव बिना नहि सुद्ध हृदं ।
गुरुदेव बिना नहि मोक्षपदं ॥ ११ ॥

॥ मनहर छंद ॥

गुरुकै प्रसाद बुद्धि उत्तम दसाकों ग्रहै ।
गुरुकै प्रसाद भवदुःख बिसराईयें ॥
गुरुकै प्रसाद प्रेम प्रीतिहु अधिक बढै ।
गुरुकै प्रसाद राम नाम गुन गाईये ॥
गुरुकै प्रसाद सब जोगकी जुगति जाने ।
गुरुकै प्रसाद शून्यमें समाधि लाइयें ॥

सुंदर कहत गुरुदेव जो कृपाल होई ॥
गुरुकै प्रसाद तत्त्वज्ञान पुनि पाइयें ॥१२॥

॥ दोहा छंद ॥

गुरुके सरनहिं आइयें ।
तवहिं उपजै ज्ञान ॥
तिमिरु कहो कैसें रहे ।
प्रगट होई जव भान ॥ १३ ॥

॥ गुरुलछन ॥ रोडा छंद ॥

चित्त ब्रह्म लय लीन ।
निच्च सीतलसो हिर्दय ।
क्रोधरहित सब साधि ।
साधु पद नांहिन निर्दय ॥
अहंकार नहिं लेश ।
महंत सवन सुख दिज्जय ।
सिष्य परिक्ष्य विचारि ।
जगत महिं सो गुरु किज्जय ॥ १४ ॥

॥ छप्पय छंद ॥

सदा प्रसन्नस्वभाव ।
प्रगट सर्वोपर राजय ।
तृप्ति ज्ञान विज्ञान ।
अचल कूटस्थ विराजय ॥
सुखनिधान सर्वज्ञ ।
मान अपमान न जाने ।
सारासार विवेक ।
सकल मिथ्या भ्रम माने ॥
भिद्यंते हृदय ग्रंथिकों ।
छिद्यंते सब संशया ॥
कहि सुंदर सो सतगुरु सहि ।
चिदानंद घन चिन्मया ॥ १५ ॥

॥ पमंगल छंद ॥

शब्द ब्रह्म परिब्रह्म भली विध जानियैं ।
पांचतत्त्व गुन तीन मृषा करि मानियैं ॥

बुद्धिवंत सब संत कहै गुरु सोई रे ।
और ठौर सिष जाई । भ्रमे जिनि कोईरे ॥१६॥

॥ नंदि छंद ॥

ब्रह्मभूत अवस्था जामहिं होई ॥
सुंदर सोई सतगुरु जाने कोई ॥ १७ ॥

॥ सोरठा छंद ॥

ऐसे गुरुपें आइ । प्रश्न करै कर जोरिकें ॥
सिष्य मुक्ति व्है जाइ । संसे कोई नां रहै ॥१८॥

॥ गुरुदेवकी साक्षी ॥ चौपाई छंद ॥

खोजत खोजत सतगुरु पायो ।
भूरि भाग्य जाग्यो सिष्य आयो ॥
देखत दृष्टि भयो आनंदा ।
यह तो कृपा करी गोविंदा ॥ १९ ॥

॥ दोहा छंद ॥

गुरुको दरसनु पायकें ।
सिष पायो संतोषु ॥

कारज मेरो अव भयो ।
मनमें मान्यो मोषु ॥ २० ॥

॥ शिष्यकृत प्रार्थनाष्टक ॥ सोरठा छंद ॥

सीस नाइं कर जोरि ।
सिष्य सु प्रारथना करी ॥
हे प्रभु लीजैं छोरि ॥
अभयदान मोहि दीजीयें ॥ २१ ॥

॥ अर्धभुजंगी छंद ॥

अहो देव स्वामी । अहं अंध कामी ॥
कृपा मोहि कीजैं । अभै दान दीजैं ॥२२॥
बडे भागि मेरे । लहे अंघ्रि तेरे ॥
तुझै देखि जीजैं । अभै दान दीजैं ॥२३॥
प्रभू हौं अनाथा । गहो क्यौं न हाथा ॥
दया क्यों न कीजै । अभै दान दीजै ॥२४॥
दुखी दीन प्रानी । कहो ब्रह्म वानी ॥
हृदो प्रेम भीजैं । अभै दान दीजै ॥ २५ ॥

जिते जैन देखै । सबे भेख पेखै ॥
तुम्है चित्त धीजै । अभै दान दीजै ॥२६॥
फियों देश देशा । किये दूरि केशा ॥
नही यों पतीजैं । अभै दान दीजै ॥२७॥
गयो आयु सारो । भयो सोच भारो ॥
वृथा देह छीजैं । अभै दान दीजै ॥२८॥
करो मौज ऐसी । रहें बुद्धि वैसी ॥
सुधा नित्य पीजैं । अभै दान दीजै ॥२९॥

॥ गुरुदेवकी प्रसन्नता ॥ सोरठा छंद ॥

मुदित भये गुरुदेव । देखि दीनता शिष्यकी ।
सबै बताऊं भेव । जोई जो तूं पूछि है ॥३०॥

॥ शिष्यकी प्रसन्नता ॥ पघडी छंद ॥

करजोरि उभै सिष करि प्रनाम ।
तब प्रश्न कीन मन धरि विराम ॥
हों कोंनु कोंनु यह जगत आहि ।
पुनि जन्म-मरन प्रभु कहहु काहि ॥३१॥

॥ श्री गुरुरुवाच ॥ बोधक छंद ॥

है चिदानंदघन ब्रह्म तुं सोई ।
देह संजोगतें जिवत भ्रम होई ॥
जगत हैं सकल यह अनछतो जानो ।
जनम अरु मरन यह स्वप्न करि मानो ॥३२॥

॥ शिष्य उवाच ॥ गीतक छंद ॥

जो चिदानंद स्वरूपस्वामी
ताहि भ्रमु कहो क्यों भयो ।
तिहि देहके संजोग व्हैके
जिवत मानी क्यों लह्यो ॥
यह अछनतो संसार कैसें
जो प्रत्यक्ष प्रमानियें ।
जनममरन प्रवाह जोसो
स्वप्नकरि क्यों जानियें ॥ ३३ ॥

॥ श्री गुरुरुवाच ॥ दोहा छंद ॥

भ्रमहीको भ्रम ऊपजे ।

चिदानंद रस एक ॥
मृगजल प्रत्यक्ष देखिये ॥
तैसें जगत विवेक ॥ ३४ ॥

॥ चौपाई छंद ॥

निद्रामें सूतो हैं जौलो ।
जनम मरनको अंत न तौलों ॥
जागि परे तब स्वपन बखाना ।
तब मिटि जाई सकल अज्ञाना ॥ ३५ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥ सोरठा छंद ॥

स्वामी यह संदेह ।
जागे सोवै कौन सो ॥
यह जो जड मन देह ।
भ्रमहिकों भ्रम क्यों भयो ॥ ३६ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ कुंडलिया छंद ॥

सिष्य कहांलों पूछि हैं ।
मैं तो उत्तर दीन ।

जबलगि चित्त न आइ है ।
तबलगि हृदय मलीन ॥
तबलगि हृदय मलीन ।
जथारथ कैसें जाने ।
भ्रमे त्रिगुनमें बुद्धि ।
आपु नाही पहिचाने ॥
कहिबो सुनबो करत ।
ज्ञान नहि उपजे जहांलो ।
मैं तो उत्तर दीन ।
सिष्य पूछैगो कहांलों ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीसुंदरदासविरचिते ज्ञानसमुद्रे गुरुशिष्यलच्छननिरूपनो नाम प्रथमोल्लासः ॥ १ ॥

अथ उत्तम मध्यम कनिष्ट भक्तियोग निरूपणार्थ नाम द्वितीयोल्लासः ॥ २ ॥

॥ शिष्यउवाच ॥ दोहा छंद ॥

स्वामी हृदय मलीन मम शुद्ध कवन विधि होई ।
सोई कहो विचारिकें संसे रहे न कोई ॥ १ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ चोपाई छंद ॥

सुनहु शिष्य यह तीनि उपाई ।
भक्तियोग हठजोग कराई ॥
पुनि सांख्य सुजोगहि तोहि बतावै ।
तब तूं शुद्धस्वरूपहि पावै ॥ २ ॥

॥ शिष्यउवाच ॥ पधडी छंद ॥

अब भक्ति कहो गुरु कैं प्रकार ।
हठजोग अंग पाउं बिचार ॥

पुनि सांख्य सुजोग बताउ नाथ ।
भवसागर बूडत गहहु हाथ ॥ ३ ॥
॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ सवाया छंद ॥
सिषि प्रथमहि नवधाभक्ति कहतहों ।
नव प्रकारहे ताकौ भेद ॥
दसमी प्रेम लछना कहियें ।
सो पावें जो व्है निर्वेद ॥
पराभक्ति है ताके आगें ।
सेवक सेव्य न होइ विछेद ॥
उत्तम मध्य कनिष्ठ तीनिविधि ।
सुंदर मिटि हैं इनतें खेद ॥ ४ ॥
॥ शिष्यउवाच ॥ छप्पय छंद ॥
अबनवधा भक्ति वखानि कहो गुरु भिन्न करि ।
प्रेमलछना कोन सुनावहु शीश हाथ धरि ॥
परा भक्तिको भेद कहो गुरु कौन प्रकारा ।
कौ उत्तम कौ मध्य कौन कनिष्ठ निरधारा ॥

यह दयासिंधु मोसों कहो तुम समान नहीं कोइ है
जब कृपा कटाक्षहीं देखिहो तव मम कारज होइ है
॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ चोपाई छंद ॥
सुनि सिषि नवधाभक्ति विधान ।
श्रवन कीरतन सुमिरन जान ॥
पादसेवनहु अर्चन वंदन ।
दास्यभाव सख्यत्व समरपन ॥ ६ ॥
॥ सोरठा छंद ॥
यह नव अंगनि जानि सहित अनुक्रम कीजियें ।
सवहिनकों सुखदानि भक्ति कनिष्ठा यह कही ॥
॥ शिष्यउवाच ॥ मालती छंद ॥
श्रवण प्रभु कोनकों कहियें ।
कीरतन कोन विधि लहियें ॥
अरु सुमिरन कोन कहि दीजें ।
चरन सेवा सो क्यों कीजें ॥ ८ ॥
अरचना कौंन बिधि होई ॥

बंधना कहो गुरु सोई ॥
दास्य सख्यत्व पहिचांनों ॥
निवेदन आत्मा जांनों ॥ ९ ॥

॥ सोरठा छंद ॥

एक एककौ भेव मोहि अनुक्रमसों कहो ॥
तुम कृपाल गुरुदेव पूछत बिलगन मानियें १०

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ चंपक छंद ॥

सिष्य तोहि कहों सुनि बानी ।
सब संतनि साखि बखानी ॥
द्वै रूप ब्रह्मके जांनों ।
निर्गुन सगुन पहिचानों ॥ ११ ॥
निर्गुन निजरूप नियारा ।
पुनि सगुन संत अवतारा ॥
निर्गुनकी भक्ति सु मनसों ।
संतनकी मन अरु तनसों ॥ १२ ॥

॥ श्रवन भक्तिवर्नन ॥

एकाग्रहि चित्त जु राखै ॥
हरिगुन सुनि रसना चाखै ॥
पुनि सुनै संतनकै वैनां ।
यह श्रवनभक्ति सुखचैनां ॥ १३ ॥

॥ कीर्तन भक्तिवर्नन ॥

हरिगुन रसना गित गावै ।
अति हिँ कर प्रेम वढावै ॥
यह भक्ति जु कीर्तन कहियें ।
पुनि गुरु प्रसादतें लहियें ॥ १४ ॥

॥ स्मरन भक्तिवर्नन ॥

अब सुमरन दोयप्रकारा ॥
एक रसना नाम उच्चारा ॥
इक हृदय नाम ठरावै ।
यह सुमिरनभक्ति कहावै ॥ १५ ॥

॥ पादसेवन भक्तिवर्नन ॥

निजु चरनकमल महि लोटै ।
मनसा करि पाइ पलोटै ॥
यह भक्ति चरनकी सेवा ।
समुझावत है गुरु देवा ॥ १६ ॥

॥ अर्चन भक्तिवर्नन ॥ चांवर छंद ॥

अब अर्चनाकौ भेद सुनि ।
सिषि देउं तोहि बताइ ॥
आरोपिकें तहां भाव अपनो ।
सेइयें मन लाइ ॥
रचि भावकौ मंदिर अनूपम ॥
अकल मूरति मांहि ।
पुनि भाव सिंघासन बिराजै ।
भाव बिनु कछु नाही ॥ १७ ॥
निज भावकी तहां करे पूजा ।
बैठि सनमुख दास ।

तहां भावहीकौ कलस भरि धरि ।
नित्य स्वामी पास ॥
त्यों भावहिकौ उबटनो करि ।
भाव नीर न्हवाइ ।
करि भावहीके वसन बहुविधि ।
अंग अंग बनाइ ॥ १८ ॥
तहां भाव केसर भाव चंदन
भाव करि घसि लेहु ।
पुनि भावही करि चरचि स्वामी ।
तिलक मस्तक देहु ॥
लै भावहीके पुष्प उत्तम ।
गुहै माल अनूप ।
पहिराइ प्रभुकों निरखि नखसिख ।
भावसेवें धूप ॥ १९ ॥
तहां भावही लै धरे भोजन ।
भाव लावें भोग ।

पुनि भावहीं करिकें समर्पें ।
सकल प्रभुकों जोग ॥
तहां भावहीको जोइ दीपक ।
भाव घृत करि सींच ।
तहां भावहींकी करै थारी ।
धरें ताके बींच ॥ २० ॥
तहां भावकी घंटा रु झालरि ।
संख ताल मृदंग ।
तहां भावहीके शब्द नाना ।
रहे अति सोंरंग ॥
तब भावहीकी आरती करि ।
करहिं वहुत प्रनाम ।
तहां स्तुती वहुविधि उच्चरै ।
धुनि सहित लै लै नाम ॥ २१ ॥
॥ अथ स्तुत्यष्टक ॥ मोतीदाम छंद ॥
अहो हरि देव । न ज़ानत सेव ।

अहो हरि राइ । परों तेरे पाइ ॥
सुनो यह गाथ । गहो मम हाथ ।
अनाथ अनाथ अनाथ अनाथ ॥ २२ ॥
अहो प्रभु नित्य । अहो प्रभु सत्य ।
अहो अविनासि । अहो अविगत्य ॥
अहो प्रभु भिन्न । दिसे जु प्रकृत्य ।
निहत्य निहत्य निहत्य निहत्य ॥ २३ ॥
अहो प्रभु पावन नाम तुह्मार ।
भजै तिनकै सब जाहि बिकार ॥
करी तुम संतनकीं जु सहाइ ।
अहो हरि हो हरि हो हरि राइ ॥ २४ ॥
अहो प्रभु हो सरवज्ञ सयान ।
दियो तुम गर्भ हितें पय पान ॥
सो त्यों अब क्यों न करो प्रतिपाल ।
अहो हरि हो हरि हो हरि लाल ॥२५॥
भजै प्रभु ब्रह्म पुरंद्र महेश ।

भजै सनकादिक नारद शेष ॥
भजै पुनि और अनेकहि साध ।
अगाध अगाध अगाध अगाध ॥ २६ ॥

अहो सुखधाम कहै शुनि नाम ।
अहो सुखदैन कहै सुनि वैन ॥
अहो सुखरूप कहै सुनि भूप ।
अरूप अरूप अरूप अरूप ॥ २७ ॥

अहो जुग आदि अहो जुग अंत ।
अहो जुग मध्य कहै सब संत ॥
अहो जुग जीवन हो जुग जंत ।
अनंत अनंत अनंत अनंत ॥ २८ ॥

अहो प्रभु बोलि सकैं कहो कौनु ।
गृही सिद्ध साधकहीं सुख मौन ॥
गिरा मन बुद्धि न होइ विचार
अपार अपार अपार अपार ॥ २९ ॥

॥ दोहा छंद ॥

बहुत प्रसंसा करि कहें हों प्रभु अति अज्ञान ।
पूजा विधि जांनो नहीं सरन राखी भगवान ॥

॥ वंदना भक्तिवर्नन ॥ लीला छंद ॥

वंदन दोइ प्रकार कहें सिष संभलियं ।
दंड समान करै तिनसों कर दंड दियं ॥
ज्यों मन त्यों तन मध्य प्रभुके पाय परै ।
या विधि दोय प्रकारसु वंदन भक्ति करै ॥ ३१ ॥

॥ दासत्व भक्तिवर्नन ॥ हंसाल छंद ॥

नित्य भवसो रहे हस्त जोरि कहें ।
कहा प्रभु मोहि अग्या सु होई ॥
पलक पतिव्रता पति बचनखंडे नहीं ।
भक्ति दासत्व सिष जांनि सोई ॥ ३२ ॥

॥ सख्यत्व भक्तिवर्नन ॥ दुमिला छंद ॥

सुनि सिष्य सखापन तोहि कहैं ॥
हरि आतमके नित संग रहै

पल छांडत नांहि समीप सदा ।
जिनहीं तिनकूं यह जीव बहै ॥
अव तूं फिरिकें हरिसो हित राख-
हि होहि सखा दृढ भाव गृहै ॥
जिम सुंदर मित्रनि मित्र जपें यह ।
भक्ति सखापन बेद कहै ॥ ३३ ॥

॥ आत्मनिवेदन भक्तिबर्नन ॥ दोहा छंद ॥

प्रथम समर्पन मन करै । द्वितीय समर्पन देह ॥
तृतीय समर्पन धन कर । चतुर समर्पन गेह ॥३४॥

॥ मोतीदाम छंद ॥

गेह दारा धनं । दास दासी जनं ।
बाज हाथी गनं । सर्व देवो भनं ॥
और जे में तनं । है प्रभू ते तनं ।
सिष्य वानी सुनं । आतमा अरपनं ॥ ३५॥

॥ दोहा छंद ॥

नवधा भक्तिसु यह कही । भिन्नभिन्न समुझाइ ॥

याको नाम कनिष्ठ है। सिष्य सुनहि चितु लाई॥

॥ प्रेमलच्छना वर्नन ॥

॥ शिष्यउवाच ॥ रासा छंद ॥

हे प्रभु मोसों कही तुम नोधाभक्ति अह ।
फेरी कहो समुझाइ सुजानि कनिष्ठ यह ॥
मध्यहिं भक्ति सुनाय कृपा करि क्यों न अव ।
जानत तो गुरुदेव जु औसर होई कब ॥३७॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ सोरठा छंद ॥

शिष्य सुनाउं तोहि । प्रेम लछना भक्तिकौ ॥
सावधान अव होहि । जो तेरे सिर भाग्य है ॥३८॥

॥ इंदव छंद ॥

प्रेम लग्यौ परमेश्वरसों तब ।
भूलि गयो सिगरो घरु बारा ॥
ज्यो उनमत्त फिरैं जितहीं तित ।
नेक रही न शरीर संभारा ॥
स्वास उसास उठे सब रोम ।

चलै दृग नीर अखंडित धारा ॥
सुंदर कौन करै नवधा विधि ॥
छाकि पर्यो रस पी मतवारा ॥ ३९ ॥

॥ नाराच छंद ॥

न लाज तीन लोककी न बेदको कह्यो करै।
न शंक भूत प्रेतकी न देव जक्षतें डरे ॥
सुने न कान औरकी द्रसै न और इच्छना।
कहै न मूख और वात। भक्ति प्रेमलच्छना ॥४०॥

॥ रंगीक्ता छंद ॥

निसुदिन हरिसों चिताशक्ती।
सदा लग्यो सो रहियें ॥
सुंदर कोई न जानि सके यह।
भक्ति सु प्रेमलच्छना कहियें ॥ ४१ ॥

॥ वीजुमाला छंद ॥

प्रेम अधीनों छाक्यौ डोलै।
क्योंकौ क्योंहीं बानी बोलै ॥

जैसें गोपी भूली देहा ।
तैसो चाहे जासों नेहा ॥ ४२ ॥

॥ छप्पय छंद ॥

कबहु हसी उठि नृत्य । करैं रोवन फिर लागै ।
कबहुक गदगदकंठ । सब्द निकसे नहि आगै ॥
कबहुक हृदय उमंग । बहूत उंचे स्वर गावे ।
कबहूक व्है मुख मौन । गगन ऐसें रहि जावै ॥
चित्त वित्त हरिसों लग्यो । सावधान कैसें रहै ।
यह प्रेमलच्छना भक्ति है । सिष्य सुनहु सुंदर कहै॥

॥ मनहर छंद ॥

नीर बिनु मीन दुःखी पीर बिनु सिसु जैसें ।
पीरकी औषदि विनु कैसें रह्यो जातु है ॥
चातक ज्यों स्वाति बूंद । चंदको चकोर जैसें ।
चंदनकी चाहि करि सर्प अकुलातु है ॥
निर्धन ज्यों धन्न चाहे । कामिनिको कंत चाहे ।

ऐसी जाकै चाहि नाहि कछु न सुहातु है ॥
प्रेमकों प्रवाह ऐसे । प्रेम तहां नेमु कैसें ।
सुंदर कहत यह प्रेमहीकी बातु है ॥ ४४ ॥

॥ चोपाई छंद ॥

यह प्रेम भक्ति जाके घट होई ।
ताहि कछु स सुहावै ॥
पुनि भूख तृषा व्यापे नहि ताकें ।
निसुदिनु नींद न आवै ॥
मुख उपर स्वासा पीरीसी ।
नैंन नीर झर लायो ॥
यह प्रगट चिन्ह दीसत है ।
जाकौ प्रेम न दुरै दुरायौ ॥ ४५ ॥

॥ दोहा छंद ॥

प्रेम भक्ति सौ यह कही । जानत बिरला कोई ॥
हियैं कलुषता क्यौं रहै । जा घट ऐसी होई ॥ ४६

॥ पराभक्ति वर्नन ॥ शिष्यउवाच ॥

॥ चोपाई छंद ॥

हे प्रभु प्रेम भक्ति यह गाई ।

सो तो तुम मध्यमा सुनाई ॥

उत्तम भक्ति परा प्रभु कैसी ।

करहु अनुग्रह कहियें जैसी ॥ ४७॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ दोहा छंद ॥

सिष्य तेरि सरधा बडी। सुनिबेकी अति प्यास ।

परा भक्ति तोसों कहो । जातें होइ प्रकास ॥४८॥

॥ गीतक छंद ॥

विछेप कबहु न होइ हरिसों ।

निकट वृत्य निवृत्यहीं ॥

तहां सदा सनमुख रहे आगे ।

हाथ जोरे भृत्यहीं ॥

पल एक कबहु न होइ अंतर ।

टकटकी लागी रहैं ॥

यह पराभक्ति प्रकास परिचय ।
सिष्य सुन सतगुरु कहै ॥ ४९ ॥

॥ इंदव छंद ॥

सेवक सेव्य मिल्यौं रसु पीवत ।
भिन्न नहीं अरु भिन्न सदाहीं ॥
ज्यों जल पिंड धर्यो जल बीचसु ।
पिंड रु नीर जुदे कछु नाहीं ॥
ज्यों दृगमें पुतरी दृग एक ।
नही कछु भिन्न रु भिन्नि दिखाइ ॥
सुंदर सेवकभाव सदा यह ।
भक्ति परा परमातम माही ॥ ५० ॥

॥ छप्पई छंद ॥

श्रवण बिना धुनि सुने । नयनु बिनु रूप निहारै ।
रसना बिनु उच्चरे । प्रसंशा बहु बिस्तारै ॥
नृत्य चरन बिनु करे । हस्त बिनु ताल बजावै ।
अंग विना मिलि संग । बहुत आनंद बढावै ॥

बिनु सीस नवें जहां सेव्यको ।
सेवकभाव लिये रहें ।
मिलि परमातमसें आतमा ।
पराभक्ति सुंदर कहें ॥ ५१ ॥

॥ चंदाना छंद ॥

सेव्यकें जायके दास ऐसें मिले ।
एकसो होय पैं एक व्है नांमिलै ॥
आपनो भाव दासत्व छांडे नही ।
सो पराभक्ति है भाग्य पावै कहीं ॥५२॥

॥ हरिसंषाणा छंद ॥

मिले एक संगा । नही भिन्न अंगा ॥
करै यें विलासा धरै भाव दासा ॥५३॥

॥ चोपाई छंद ॥

ज्यों मृगतृष्णा धूप मंझारी ।
एक मेक अरु दीसे न्यारी ॥
त्योंही सेवक स्वामी एका ।

सुख विलास यह भिन्न विवेका ॥५४॥

॥ तोटक छंद ॥

हरिमें हरिदास विलास करैं ।
हरिसों कबहुं न बिछोह परैं ॥
हरि अच्छर त्यों हरिदास सदा ।
रस पीवनकूं यह भाव जुदा ॥ ५५ ॥

॥ मनहर छंद ॥

तेजोमय स्वामी तहुं सेवकही तेजोमय ।
तेजोमय चरननीकों तेजोसिरू नावही ॥
तेजोमय सब अंग तेजोमें मुखारविंद ।
तेजोमें नेन निरखी तेजोमय भावहिं ॥
तेजोमय ब्रह्मकी प्रसंसा करै तेजोमय ।
तेजहीकी रसना गुनानुवाद गावही ॥
तेजोमय सुंदरहू भाव पुनी तेजोमय ।
तेजोमय भक्तिहुकों तेजोमय पावही ॥५६॥

॥ दोहा छंद ॥

त्रिविध भक्ति लच्छन कहैं । उत्तम मध्य कनिष्ठ
सिष्य सुनहु सिद्धांत यह । उत्तम भक्ति गरिष्ठ ।

॥ इति श्रीसुंदरदासविरचिते ज्ञानसमुद्रे उत्तम
मध्यम कनिष्ठ भक्तियोग निरूपणं
नाम द्वितीयोल्लासः ॥ २ ॥

॥ अथ अष्टांगजोग निरूपणार्थं नाम तृतीयोल्लासः ॥ ३ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥ चौपाई छंद ॥

है प्रभु नवधा कही कनिष्ठा ।
प्रेमलच्छना मध्य सुपष्ठा ॥
परा भक्ति उत्तमा बखानी ।
सो तीनो में नीकै जानी ॥ १ ॥
अब प्रभू जोग सिद्धांत सुनाओ

तिनके अंग मोहि समुझाओ ॥
तुम सर्वज्ञ जगतगुरु स्वामी ।
करहु कृपा अब अंतरजामी ॥ २ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ दोहा छंद ॥

तैं सिख पुछ्यो चाहि करि । जोग सिद्धांत प्रसंग
तोहि सुनाउं हेत करि । अष्ट जोगकै अंग ॥३॥
तिनके अंतरभुत है । मुद्राबंध समस्त ॥
नाडी चक्र प्रभाव सब । आवे तेरे हस्त ॥४॥

॥ छप्पय छंद ॥

प्रथम अंग यम कहौं । दूसरो नेम बताउं ।
तीसरो आसन भेद । सुनो सब तोहि सुनाउं ॥
चतुरथ प्रानायाम । पंचम प्रत्याहारं ।
षष्ठम सु।न धारना । ध्यान सप्तम बिस्तारं ॥
पुनि अष्टम अंग समाधि है ।
भिन्न भिन्न समुझायहौं ।
अब सावधान होय सिष्य सुनी ।

सो सब तोहि बताय हों ॥ ५ ॥

॥ दोहा छंद ॥

दस प्रकारके यम कहों । दस प्रकारके नेम ॥
उभय अंग पहिले संधें । तब पाछे व्हैं प्रेम ॥ ६ ॥
प्रथम हिं यम दृढ कीजियें । तब ऊपर बिस्तार ॥
महिलायत जु डिगै नही । यों यम लेहु विचार ७

॥ अथ यमको निर्नय ॥ छप्पय छंद ॥

प्रथम अहिंसा सत्य । जानि अस्तेयकु त्यागै ॥
ब्रह्मचर्य दृढ ग्रहै । धृति क्षमसो अनुरागै ॥
दया बडो गुन माग । आर्जव रुदे पुनि आनै ।
मिताहार नित करे । सोच नीकी विधि जानै ॥
यह दस प्रकारके यम कहे । हठप्रदीपिकाग्रंथमें ।
जो पहिलें इनको गहें । सो चलत जोगके पंथमें ८

॥ प्रथम अहिंसाको लच्छन ॥ दोहा छंद ॥

मन करि दोष न कीजियें । वचन न लावै कर्म ॥
घात न कीजें देहसों । यहें अहिंसा धर्म ॥ ९ ॥

॥ द्वितीय सत्यको लच्छन ॥ सोरठा छंद ॥

सत्यसु दोय प्रकार । एक सत्य जो बोलिये ॥
मिथ्या सब संसार । दूजो सत्य सु ब्रह्म है ॥१०॥

॥ तृतीय अस्तेयको लच्छन ॥ चोपाई छंद ॥

सुनियें सिष अब हीं अस्तेयं ।
चोरी द्वै प्रकारकी हेयं ॥
तनकी चोरी सबहि बखानै ।
मनकी चोरी मनहीं जानै ॥ ११ ॥

॥ चतुर्थ ब्रह्मचर्यको लच्छन ॥ पमंगल छंद ॥

ब्रह्मचर्य इहिं भांति भली विधि जानियें ।
काम जु अष्ट प्रकार सही करि मानियें ॥
वाच काछ दृढ वीर्य जतीहीं होयरे ।
ओर बात अब नाहिं जितेंद्रिय कोयरे ॥ १२ ॥

॥ पंचम अष्टप्रकार मैथुनको लच्छन ॥

॥ दोहा छंद ॥

नारी समरन श्रवन सुनि । दृष्टि रु भाषन होई ।

नख्य अतांत रु हास्यरति। बहुरी स्पर्शहि कोई १३

॥ सोरठा छंद ॥

सिष्य सुनहु यह भेद। मैथुन अष्ट प्रकार तजि ॥
कह्यो मुनीश्वर बेद। ब्रह्मचर्य तब जानियें ॥१४॥

॥ षष्ठम छमाको लच्छन ॥ मालती छंद ॥

छमा अब सुन सिष्य मोसों ।
सहनता कहों सब तोसों ॥
दु:ख दुष्ट दे ही ज्यो भारी ।
दु:सह मुख बचन पुनि गारी ॥ १५ ॥
कबहु नाहि छोभकों पावें ।
उदधि ज्यों अग्नि बूझावें ॥
बहोरी तन त्रास दे कोई ।
छमा करि सहे सिष्य सोई ॥ १६ ॥

॥ सप्तम धृतिको लच्छन ॥ इंदव छंद ॥

धीरज धारी रहै अभि अंतर ।
जो दुख देहहिं आय परै जु ॥

उठत बैठत बोलत चालत ।
धीरजही धरि पाव धरै जू ॥
जागत सोवत जीवत पीवत ।
धीरजसों धरि जोग करै जू ॥
देव दईतहि भूतहि प्रेतहि ।
कालहुतें कवहू न डरै जू ॥ १७ ॥

॥ अष्टम दयाको लच्छन ॥ तोटक छंद ॥

सब जीवनके हितकी जू कहें ।
मन वाचक काय दयाल रहें ॥
सुखदायकहु समभाव लिये ।
सिष्य जानि दया निरवैर हियें ॥ १८ ॥

॥ नवम आर्जवको लच्छन ॥ हरिपद छंद ॥

कोमल हृदय रहै निशि वासुर ।
कोमल बोले वानी ॥
कोमल दृष्टि निहारै सबकों ।
कोमलता सुखदानी ॥

कोमल भूमि करै नीकि विधि ।
वीज वृद्धि होय आवै ।
त्यौं यह आर्जव लच्छन सुनि सिष्य ।
जोग सिद्धकों पावै ॥ १९ ॥

॥ दशम मिताहारको लच्छन ॥ पधडी छंद ॥

जो सात्विक अन्न सु करे भक्षि ।
अति तिक्त न मधु रस निरखि अक्षि ॥
तजि भाग चतुर्थक ग्रहैं सार ।
सुनि सिष्य कह्यो यह मिताहार ॥ २० ॥

॥ शौचको लच्छन ॥ चर्पट छंद ॥

बाहिर भीतर मज्जन करियें ।
मृत्तिका जल करि बपुमल हरियें ॥
रागादिक त्यागें हृद शुद्धं ।
सोच उभै सिष जानि प्रबुद्धं ॥ २१ ॥

॥ दोहा छंद ॥

दस प्रकार यह जम कहै । प्रथम जोगको अंग ॥

दस प्रकार अब नीम सुनि । भिन्न भिन्न परसंग ॥

॥ दशविध नियम बर्नन ॥ छप्पय छंद ॥

तप संतोषहि ग्रहै । बुद्धि आस्तिक जो आनै ॥
दान समुझि कर देय । मानसी पूजा ठानै ॥
श्रवण सिधांतैं सुनै । लाज मति दृढ करि राखै ॥
जाप करै मुख मौन । तहां लगि बचन न भाखै ॥
पुनि होम करै इहि विधि ।
तहां जैसी बिधि सत गुरु कहै ।
दस प्रकारको नियम यह ।
भाग्य बिना कैसें लहैं ॥ २३ ॥

॥ प्रथम तपको लच्छन ॥ पाईक्त छंद ॥

शब्द स्पर्श रूपहि तजनं ।
त्यों रस गंध नाहि भजनं ॥
इंद्रिय स्वाद ऐसें हरनं ।
सो तप जानै नित्य समरनं ॥ २४ ॥

॥ द्वितीय संतोषको लच्छन ॥ हंसाल छंद ॥

देहको प्रारब्ध आइ आगैं रहै।
कल्पना छांडी निश्चिंत होई॥
पुनि जथा लाभसों बेद मुनि कहत है॥
परम संतोष सिष जानि सोई ॥ २५ ॥

॥ तृतीय आस्तिक्यको लच्छन ॥

॥ सवाया छंद ॥

शास्त्र रु बेद पुरान कहत है।
शब्द–ब्रह्मको निश्चय धार॥
पुनि गुरु संत सुनावत सोइ।
वारबार सिष ताहि विचार॥
होई के नाहि सोच मत आनहि।
अप्रतीत हृदयेतें टारि॥
करि प्रतीत बिस्वास आनि उर।
यह आस्तिक बुद्धी निरधारि ॥ २६ ॥

॥ चतुर्थ दानको लच्छन ॥ कुंडलिया छंद ॥
दान कहतहै उभय विधिसुनि सिष करिहिं प्रवेसु।
ऐक दान कर दीजियें ऐक दान उपदेसु ॥
ऐक दान उपदेस सु तो परमारथ होई ।
दुसरो जल अरु अन्न बसन करि पौषें कोई ॥
पात्र कुपात्र विसेष भली भूमि उपजे धानं ।
सुंदर देखि बिचारि उभय विधि कहिये दानं ॥
॥ पंचम पूजाको लच्छन ॥ त्रिभंगी छंद ॥
तो स्वामी संगा । देव अभंगा ।
निर्मल अंगा । सेवेजू ।
करि भाव अनूपं । पाती पुष्पं ।
गंधं धूपं । खेवेजू ॥
नहि कोई आशा । काटे पाशा ।
इहि विधि दासा । निष्कामं ।
सिष ऐसें जाने । निश्चय आने ।
पूजा ठाने । दिन जामं ॥ २८ ॥

॥ षष्ठम श्रवन सिद्धांतको लच्छन ॥

॥ कुंडलिया छंद ॥

बानी बहुत प्रकार है । ताकौ नाहीं अंत ।
जोई अपने कामकी । सोई सुनै सिद्धांत ॥
सोई सुनै सिद्धांत । संत जन गावत होई ।
चित्त आनिकें ठोर । सुनै जो नित प्रति सोई ॥
यथा हंस पय पिये । रहे ज्योंको त्यों पानी ।
ऐसे लहै विचारि सिष्य । बहुविध है बानी २९

॥ सप्तम न्हीको लच्छन ॥ चामर छंद ॥

लज्जा करे गुरु संतकी जब । तब सरै सब काज ।
तन मन न डुलवै आपनो करै लोकहूतें भाज ॥
लज्जा करै कुलकुटंबकी लांछन लगावै नाहि ।
यह लाजतें सब काज होई लाज गहि मनमाहि ॥

॥ अष्टम मतिको लच्छन ॥ सवाया छंद ॥

नाना सुख संसार जानि तजि ।
तिनहि देखि लोलुप ना होई ॥

स्वर्गादिककी कर न इंछा ।
इहामुत्र त्यागे सुख दोई ॥
पूजा मान बडाई आदर ।
निंदा करै आन जो कोई ॥
या प्रकार मति निश्चल जाकी ।
सुंदर दृढ मति कहिये सोई ॥ ३१ ॥

॥ नवम जापको लच्छन ॥ पमंगल छंद ॥

जाप नित्य व्रत धारि करै मुख मोनसों ।
एक दोय घटिका जु गहै मन पोनसों ॥
जो अधिका कछु होय बडा अति भाग है ।
सिष्य तोहि कहि दीन भलो यह माग है ॥३२॥

॥ दशम होमको लच्छन ॥ चामर छंद ॥

अब होम दोय प्रकार सुनि ।
सिष्य कहों तोहि बखांनि ॥
इक अग्निमें संकल्प होमै ।
सो तौ प्रवृत्ति जानि ॥

जो निवृत्ति जिग्यास होई ।
ताहि ओर न घोम ॥
सो ब्रह्म अ ि प्रज्वालनीके ।
करै इंद्रियहोम ॥ ३३ ॥

॥ दोहा छंद ॥

दस प्रकार संजम कहे । दस प्रकार यह नेम ।
जोग ग्रंथमें लिखतुहे । मो समुझाये क्षेम ॥३४॥

॥ सोरठा छंद ॥

सिष्य सुनाये तोहि । उभय अंग यह जोगके ॥
सावधान अब होहि । अबहि षडंग बखानि हो ॥

॥ चोपाई छंद ॥

प्रथम कहों शिष आसन भेदा ।
जातें रोग मिटे बहु खेदा ॥
रिषि मुनि जोगी ब्रह्म आराधैं ।
तिन सब पहिले आसन साधैं ॥ ३६ ॥

॥ तोटक छंद ॥

सिव जानतहै सब जोग कला ।
नित संग शिवा पुनि है अचला ॥
दृढ आसनतें नहि बिंद खसें ।
द्रग देखत दंपति लोक हसें ॥ ३७ ॥

॥ कुंडलिया छंद ॥

चौरासी लच्छ जीवकी । जाति कहतहै वेद ।
तितनेही आसन सबैं । जानतहै शिव भेद ॥
जानतहै शिव भेद । ओर जानत नहिं कोई ।
आपु दया तिन करी । सुगम करि दीने सोई ॥
लच्छ लच्छमें एक । एक काढैं जम पासी ।
सुगम सबहिकों किये । प्रगट आसन चौरासी ॥

॥ दोहा छंद ॥

चतुरासी आसननिमें । सारभूत द्वै जानि ॥
सिद्धासन पद्मासनें । नीकें कहो बखानि ॥३९॥

॥ सिद्धासन लच्छन ॥ मनहर छंद ॥

एडी वाम पावकी लगावै सिवनिके वीच ।
वाही जो निठोर ताहि नीकें करि जानियें ॥
तैसेंहिं जुगति करि विधिसों भले प्रकार ।
मेढहुकै उपर दच्छिन पाव आंनियें ॥
सरल शरीर दृढ इंद्रिय संजम करि ।
अचल उरध दृष्टि भ्रूके मध्य ठानियें ॥
मोक्षके कपाटकों उघारत अवस्यमेव ।
सुंदर कहत सिद्ध आसन वखानियें ॥ ४० ॥

॥ पद्मासन लच्छन ॥ छप्पय छंद ॥

दच्छिन उर उपरेंहि प्रथम बामहि पग आनै ।
बामहि उर उपरें तबहि दच्छिन पग ठानैं ॥
दोउ कर पुनि फेरि पृष्ट पीछें करि आवें ।
दृढकें ग्रहै अंगुष्ठ चिबुक वक्षस्थल लावें ॥
इहिभांति दृष्टि उनमेष करि ।
अग्र नासिका राखि है ॥

सब व्याधि हरन जोगीनकी ।
पद्मासन यह भांखि है ॥ ४१ ॥
॥ पघडी छंद ॥
सिध्य और जु आसन हरै रोग ।
इन दोय आसन साधैं जोग ॥
तातें तुं ए अब उभय साधि ।
जबलगि पहुचैं निर्भय समाधि ॥ ४२ ॥
॥ प्रानायाम लच्छन । विजूमाला छंद ॥
आगै कीजैं प्रानायामं नाडी चक्रं पावै ठामं ।
पूरैं राखै रेचक कोई व्है निःपापं जोगी सोई॥४३
॥ दोहा छंद ॥
नाडी कही अनेक विधि । हैं दस मुख्यविचार ।
इडा पिंगला सुषुमना । सबमें ए त्रयसार ॥४४॥
॥ तीननाडी वर्नन ॥ छप्पय छंद ॥
वाम इडा स्वर जानि । चंद्र स्वर कहियें वाकों ॥
दच्छिन स्वर पिंगला । सूर्यमय जानौं ताकों ॥

मध्य सुषुमना वहै। ताहि जानत नहि कोई ॥
है यह अग्नि स्वरूप। काज याहीतें होई ॥
जब इडा पिंगला गति थके। प्रानायाम प्रभावतें ॥
तब चलै सुषुमना उलटिकैं। सुख पावै घट चाव्हतें

॥ दशवायु वर्नन ॥ दोहा छंद ॥

दस प्रकारके पवनु है। भाखों ताके नाम।
कहै बिना नहि जानियें। कोन ठोर विश्राम ॥४६

॥ चोपाई छंद ॥

प्रानापान समानहि जानौ।
व्यानोदान पंचमन मानौ ॥
नाग कूर्म रु कृकलसु कहियें।
देवदत्त सुधनंजय लहियें ॥ ४७ ॥

॥ कुंडलिया छंद ॥

प्राण हृदयमें बसत है। गुद मंडलैं अपान।
नाभि समा नहि जानियें। कंठहि बसै उदान ॥

कंठहि बसै उदान । व्यान व्यापक घट सारै ।
नाग करै उद्गार । कूर्म सुपलक उघारैं ॥
कृकलसों उपजे छुधा । देवदत्तहि जंभानं ।
मरे धनंजय होई । पंच पूरब सो प्रानं ॥४८॥

॥ दोहा छंद ॥

चक्र अनुक्रम कहतहों । सुनि सिष ताके नाम ।
पीछैं तोहि बतायहों । बिधिसों प्रानायाम ॥४९॥

॥ चक्र अनुक्रम ॥ पघडी छंद ॥

सिष प्रथम चक्र आधार जानि ॥
तहां अछर चारि चतुर्दलानि ॥
पुनि व श ष स वर्ण बिचारि लैहु ।
है सब शरीर आधार येहु ॥ ५० ॥
पुनि स्वाधिष्ठान सुद्वितीय चक्र ।
तहां षट दल षट अछर अवक्र ॥
गनि ब भ म य र ल ये वर्ण मध्य ।
सो ब्रह्मचक्र कहिये प्रसिद्ध ॥ ५१ ॥

मनिपूरक चक्र दस दल प्रभाव ।
पुनि अच्छर दसतें उक्त नांव ॥
तहां ड ढ ण त थ द ध न प फ प्रमानि ॥
इन वरण सहित तृतीये बखानि ॥ ५२ ॥
पुनि अनहत चक्र है हृदै मांहि ।
दल अच्छर द्वादस अधिक नाहि ॥
क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ समेत ।
सिष्य चक्र चतुर्थय समझि हेत ॥ ५३ ॥
पुनि पंचम चक्र बिशुद्ध आहि ।
दल अच्छर षोडश लगै ताहि ॥
तहां आदि अकार अःकार अंत ।
शुभ षोडश स्वर ताकै गनंत ॥ ५४ ॥
अब आज्ञा चक्रसु भ्रुव मंझारि ।
लखि द्वै दल द्वै अच्छर बिचारि ॥
तहां हंस बरन अक्षर अनूप ।
यह षष्ठम चक्र कह्यो स्वरूप ॥ ५५ ॥

जब इन षटचक्र वेधि जाइ ।
तब उहै सुषमना सुख समाइ ॥
याहीतें प्रानायाम सार ।
सुनि सिष्य कहो ताकौ विचार ॥५६॥

॥ प्रानायामकी क्रिया ॥ दोहा छंद ॥

इडा नाडि पूरक करै । कुंभक राखै मांहि ॥
रेचक करियें पिंगला । सब पातक कटि जाहि ॥

॥ सोरठा छंद ॥

बीज मंत्र संयुक्त । षोडश पूरक पूरियें ॥
चौसठ कुंभक युक्त । द्वात्रिंशत करि रेचना ॥५८

॥ चौपाई छंद ॥

बहुरि विपर्यय ऐसें धारै ।
पुरी पिंगला इडा निकारै ॥
कुंभक राखि प्रानकों जीतें ।
चतुर्वार अभ्यास बितीतें ॥ ५९ ॥

॥ चामर छंद ॥

यह रिखिन युक्ति सुनाइ हें
यहि भांति प्रानायाम ।
सतगुरु कृपातें पाईयें मन
होई अति विश्राम ॥
अब सब मतांतर कहत हों
सुनि सिष्य आनि प्रभाव ।
गोरख उक्ति बखानि हों
तिहि सुनत उपजै चाव्ह ॥ ६० ॥

॥ अथ गोरख उक्ति ॥ चर्पट छंद ॥

सोहं सोहं सोहं हंसो ॥ सोहं सोहं सोहं अंसो ॥
स्वासो स्वासं सोहं जापं ॥ सोहं सोहं आपें आपं ॥
द्वादश मात्रा पूरक भरणं ।
द्वादश मात्रा कुंभक करणं ॥
द्वादश मात्रा रेचक जानं ।
पूर्वा पूर्व विपर्यय ठानं ॥ ६१ ॥

अधमे मात्रा द्वादश युक्तं ।
मध्यम मात्रा द्विगुना जुक्तं ॥
उत्तम मात्रा त्रिगुनी कहियें ।
प्राणायामसु निरनय लहियें ॥ ६३ ॥

॥ सोरठा छंद ॥

कुंभक अष्टसु सिद्ध । मुद्रा दशहि प्रकारकी ॥
बंध तीन तिन मध्य । उत्तम साधन जोगकै ॥६४॥

॥ कुंभकप्रकार वर्नन ॥ छप्पय छंद ॥

सूर्य भेदन प्रथम । द्वितीय ऊजाई कहियै ।
सीतकार पुनि तृतीय । सीतली चतुरथ ग्रहियै ॥
पंचम है भद्रिका । भ्रामरी षष्ठम जानहू ॥
मूर्छे नाम सप्तमं अष्टमं केवल मानहू ॥
यह कुंभक अष्ट प्रकारके । होई पवन अवरोधनं ।
तब मुद्रावंध लगाईयें । प्रथम करै घट शोधनं ॥६५

॥ मुद्रा नाम ॥ गीतक छंद ॥

सुनि महामुद्रा महाबंधक ।

महाबेधक्क खैचरी ॥
उडियानवंध सुमूकवंधक ।
वंधजालंधर करी ॥
विपरीत करनी पुनि वज्रोली ।
सक्ति चालन कीजियें ।
इमि होय जोगी अमर काया ।
शशिकला नित पीजियें ॥ ६६ ॥

॥ प्रत्याहार नाम ॥ कुंडलिया छंद ॥

श्रवन शब्दकों गहतु है । नेन गहतु है रूप ।
गंध गहतु है नासिका । रसना रसकी चूप ॥
रसना रसकी चूप । त्वचा सुपरसही चाहै ।
इन पंचनकों जीति । आतमा नित आरा है ॥
कूर्म अंगही ग्रहे । प्रभा रवि कर्षण द्रवनं ।
इम करि प्रत्याहार । विषय शब्दादिक श्रवनं ॥६७

॥ अथ पंचतत्त्वकी धारना ॥

॥ पृथ्वी तत्त्वकी धारना ॥ चौपाई छंद ॥

यह चारैं कौन लकारहि ।
जुक्तं जानहु पृथ्वीरूपं ॥
पुनि पीतबर्नं हृदि मंडल कहिये ।
विधि अंकित सु अनूपं ॥
तहां घटिका पंचमान करि ।
लीनं चित्त स्तंभन होई ॥
सुनि शिष्य अवनि जय करै ।
नित्यहि भूमिधारना सोई ॥ ६८ ॥

॥ जलतत्त्वकी धारना ॥

अछर वकार सहित संजुक्तं ।
चंद्र खंड निरधारं ॥
पुनि हृषीकेश अंकित अति शोभित ।
कंठ पारदाकारं ॥

तहां घटिका पंचप्रान करि लीनं ।
चित्त धारि करि रहिये ॥
विष कालकूट व्यापे नहि कवहू ।
बारि धारना कहिये ॥ ६९ ॥

॥ तेजतत्त्वकी धारना ॥

यह अग्नि त्रिकोणरेफ संजुक्तं ।
पद्मराग आभासं ॥
पुनि इंद्रगोप द्युति मध्य तालुका ।
कहियतु रुद्र निवासं ॥
तहां घटिका पंचप्रान करि लीनं ।
ग्रंथहि उक्त वखानं ॥
सुनि शिष्य अग्नि भयहंता कहियें ।
तेज धारना जानं ॥ ७० ॥

॥ वायुतत्त्वकी धारना ॥

भ्रुव मध्य जकार सहित षद कोनं ।

ऐसी लच्छ बिचारं ॥
पुनि मेघवर्ण ईश्वर करि अंकित ।
वारंवार निहारं ॥
तहां घटिका पंचमान करि लीनं ॥
खेचरि सिद्धहि पावै ॥
सुनि शिष्य धारना वायुतत्त्वकी ।
जो नीकें करि आवै ॥ ७१ ॥

॥ आकाशतत्त्वकी धारना ॥

यह ब्रह्मरंध्र आकास तत्त्व हें ।
शुभ्र वर्तुलाकारं ॥
तहां निश्चय जानि सदाशिव तिष्ठति ।
अक्षर सहित हकारं ॥
तहां घटिका पंचमान करि लीनं ।
परममुक्तीकी दाता ॥
सुनि सिष्य धारना व्योमतत्त्वकी ।
जोग ग्रंथ बिख्याता ॥ ७२ ॥

यह एक थंभनी एक दावनी ।
एक सुदहनी कहिये ॥
पुनि एक शोषनी एक भ्रामनी ।
सतगुरु बिना न लहिये ॥
यह पंचतत्त्वकी पंचधारना ।
तिनकै भेद सुनैये ॥
अब आगे ध्यान कहों बहुविधि करि ॥
जोग ग्रंथमें पैये ॥ ७३ ॥

॥ ध्यानवर्नन ॥ दोहा छंद ॥

प्रथमहि ध्यान पदस्थ हैं । द्वितीय पिंड आधीत ॥
तृतीय ध्यान रूपस्थ है । चतुरथ रूपातीत ॥७४॥

॥ पदस्थ ध्यानवर्नन ॥ इंदव छंद ॥

जे पद चित्र रचै अतिगूढ ।
सुजानि महापरमारथ जामै ॥
ते अवलोकि विचार करै पुनि ।
चित्त धरै निह्चै करि तामै ॥

कँकारि कुंभक मंत्र जपें उर ।
अक्षरतें पुनि जानि अनामै ।
सुंदर ध्यान पदस्थ यहै मन ॥
निश्चल होय सरै सब कामै ॥ ७५ ॥

॥ पिंडस्थध्यानं ॥ चोपाई छंद ॥

सुनहु सिष्य कहूं ध्यान पिंडस्थं ।
पिंडको शोधन करिये स्वस्थं ॥
षटचक्रनकौ धरिये ध्यानं ।
पुनि सतगुरुकौ ध्यान प्रमानं ॥७६॥

॥ रूपस्थध्यानं ॥ नाराच छंद ॥

निहारिकें त्रिकूटि मध्य । विस्फुलिंग देखिहै ।
पुनी प्रकास दीप ज्योति । दीपमाल पेखिहै ॥
नछत्र माल बीजुरी । प्रभा प्रतच्छि होइहै ।
अनंत कोटि चंद्र सूर । ध्यान मध्य जोइहै ॥७७
मरीचिका समान शुभ्र । और लच्छ जानियें ।
झलामल समस्त विश्व । तेजमै बखानिये ॥

समुद्र मध्य डूबिके । उघारि नैन दीजिये ॥
दशों दिशा झलामलं। मतच्छ ध्यान कीजिये ॥७८

॥ रूपातीतध्यान ॥ पघडी छंद ॥

यह रूपातीत जु शून्य ध्यान ।
कछु रूप न रेख न है निदान ॥
तहां अष्ट प्रहरलों चित्त लीन ।
पुनि सावधान व्है अति प्रवीन ॥७९॥
ज्यो पंछीकी गति गगनमांहि ।
कहूं जात जात दिठ परै नांहि ॥
पुनि आप दिखाई देत सोय ।
वा जोगीकी गति यहै होय ॥ ८० ॥
यह शून्यध्यान सम ओर नांहि ।
उत्कृष्ट ध्यान सब ध्यानमांहि ॥
है शून्याकार जु ब्रह्म आप ।
दसहू दिस पूरन अति अमाप॥ ८१ ॥

यों करें ध्यान सो जोगी होई ।
तबलगि समाधि सु अखंड होइ ॥
पुनि यहै जोग निद्रा कहाय ।
सुनि सिष्य देउं तोकों बताय ॥ ८२ ॥

॥ समाधिबर्नन ॥ गीतक छंद ॥

सुनि सिष्य अबहि समाधि लच्छन ।
मुक्ति योगी वर्त्तते ॥
तहां सिद्ध साधक एक है ।
करि क्रिया कर्म निवर्त्तते ॥
निरुपाधि नित्य उपाधि रहित जु ।
यही निश्चय मानिये ॥
कछु भिन्नभाव रहै न कोई ।
सो समाधि बखानिये ॥ ८३ ॥
नहि सीत उष्ण तृषा क्षुधा ।
मूर्च्छा न भ्रम आलस रहै ॥

नहि जागरण नहि स्वप्न सुषुपति ।
तत्त्व पद जोगी लहै ॥
ज्यौं नीरमहिं मिलि जाय लवन सु ।
एकमेकहिं जानिये ॥
कछू भिन्नभाव रहै न कोई ।
सो समाधि बखानिये ॥ ८४ ॥

नहि हर्ष शोक न दुःख सुख ।
नहि मान अरु अपमान यों ॥
पुनि मनोइंद्रिय वृत्ति नष्ट रु ।
ज्ञान नहिं अज्ञान यों ॥
नहि जाति कुल नहि वर्ण आश्रम ।
जीव ब्रह्म न जानिये ॥
कछु भिन्नभाव रहै न कोई ।
सो समाधि बखानिये ॥ ८५ ॥

नहि शब्द परश रु रूप रस नहि ।

गंध जानिय रंचहु ॥
नहि काल कर्म सुभाव है ।
नहि उदय अस्त प्रपंचहू ॥
जिमि छिरमें छीर आज्य घृतमें ।
जलहिमें जल जानिये ॥
कछू भिन्नभाव रहै न कोई ।
सो समाधि बखानिये ॥ ८६ ॥

नहि देव दैत्य पिशाच राक्षस ।
भूत प्रेत न संचरै ॥
नहि पवन पानी अग्निको डरु ।
सर्प सिंहसो नां डरै ।
नहि जंत्र मंत्र न शस्त्र लागहि ।
यह अवस्था मानिये ॥
कछु भिन्नभाव रहै न कोई ।
सो समाधि बखानिये ॥ ८७ ॥

॥ दोहा छंद ॥

शुन्यो योग सिद्धांत तें । अष्ट अंग संयुक्त ॥
यों साधत ब्रह्महि मिलै । सोउ कहिये मुक्त८८

इति श्रीसुंदरदासविरचिते ज्ञानसमुद्रे अष्टांगयोगनिरूपणं नाम तृतीयोल्लासः ॥ ३ ॥

॥ अथ सांख्यनिरूपणार्थं नाम चतुर्थोल्लासः ॥ ४ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥ चोपाई छंद ॥

हे प्रभु बहुत कृपा तुम कीनी ।
ऐसी बुद्धि दया करि दीनी ॥
मोकों जोग सिद्धांत सुनायो ।
जो पूछ्यो सो उत्तर पायो ॥ १ ॥
अब प्रभू सांख्य सु मोही सुनावहू ।
मेरे सब संदेह मिटावहू ॥

यह गुरुदेव कृपा करि कहियें ।
तुम बिन अवर कहो कित लहियें ॥२॥
॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ सोरठा छंद ॥
सिष्य कहों समुझाय जो तें पूछ्यो प्रीति करि ।
सांख्य सुं देउं बताय तो सुनिवेके जोग है ॥ ३
॥ सांख्यवर्नन ॥ दुमिला छंद ॥
सुनि सिष्य यहै मत सांख्यहिकौ जु ।
अनातम आतम भिन्न करै ॥
अनआतम है जडरूप लिये ।
नित आतम चैतन भाव धरै ॥
अनआतम सुच्छम थूल सदा ।
पुनि आतम सुच्छम थूल परै ॥
तिनकौ निरने अब तोहि कहू जिनि ।
जानत संशय सोक हरै ॥ ४ ॥
॥ कुंडलिया छंद ॥
प्रकृति पुरुषमय जयत है । ब्रह्म कीट पर्यंत ।

चतुर्खानि लों जीव सब । शिव शक्ती वरतंत ॥:
शिवशक्ती वरतंत । अंत दुहुवनिको नांही ।
एक आहि चिद्रूप । एक जड दीसत छांही ॥
चैतन सदा अलिप्त रहै । जड नित्य कुलूषं ।
सिष्य समुझि यह भेद भिन्न करि जानहु पुरुषं ॥

॥ शिष्य उवाच ॥ हंसाल छंद ॥

हे प्रभु कह्यो तुम पुरुष चैतन्यमय ।
बहूरि ऐसे कह्यो भिन्न जानो ॥
समुझिके प्रकृति जडरूप करिके कही ।
जगत कैसें भयो सो वखानो ॥ ६ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ छप्पय छंद ॥

पुरुष प्रकृति संजोग । जगत उपजतहैं ऐसे ।
रवि दर्पन दृष्टांत अग्नि उपजतहे जैसे ॥
सोई होय चैतन्य जथा चुंबककै संगा ।
जथा पवन संजोग । उदधिमे उठे तरंगा ॥

पुनि जथा सूर संजोगतें। चक्षु रूपकों गहतु है
यो जड चैतन संजोगतें। सृष्टि उपजति कहतु है

॥ शिष्य उवाच ॥ सवाया छंद ॥

हे प्रभु पुरुष प्रकृतिते प्रथमहि।
कौन तत्त्व उपज्यो समुझाई ॥
विधि करि तत्त्व अनुक्रमसों सब।
ज्यों उपजे त्यौ देहू बताई ॥
सुच्छम थूल भयो कैसें करि।
कारण कारज मोहि सुनाई ॥
तुम गुरुदेव सकल विधि जानत।
अनआतम आतमा दिखाई ॥ ८ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ दोहा छंद ॥

पुरुष प्रकृति संजोगतें। प्रथम भयो महतत्त्व ॥
अहंकार तातें प्रगट। त्रिविध रजो तम सत्व ९

॥ चामर छंद ॥

तिहि तामसाहंकारतें ।
दश तत्त्व उपजे आई ॥
सो पंचविषय रु पंचभूतनि ।
कहों सिष समुझाइ ॥
जो शब्द स्पर्श रु रूप रस अरु ।
गंध विषय सुजानि ॥
पुनि व्योम मारुत तेज जल छिति ।
महा भूत बखानि ॥ १० ॥

॥ चोपाई छद ॥

यह दश तमगुनतें तुम जानहु ॥
दिव्य शक्ति याकी पहिचानहु ॥
अब इनके लच्छिन समझाउ ।
भिन्न भिन्न करि अर्थ बताउं ॥ ११ ॥

॥ छप्पय छंद ॥

शब्द सु गुन आकाश एक गुन कहियै जामहिं

शब्द स्पर्श जु बाय उभय गुन लहिये तामहिं
शब्द स्पर्श रु रूप तीनगुन पावक मांही
शब्द स्पर्श रस रूप चतुर्गुन अपमें आहि
पुनि शब्द स्पर्श रु रूप रस ।
पंचगुन अवनि है ॥
सिष यह अनुक्रम ले जानि तुं ।
सांख्य सुमति ऐसें कहैं ॥ १२ ॥

॥ पंचतत्त्व स्वभाव ॥ चौपाया छंद ॥

यह कठिन स्वभाव अवनिको कहिये ।
द्रावक उदकहि जांनै ॥
पुनि उस्न स्वभाव अग्निमहि बरतें ।
चलन पवन पहिचानै ॥
आकाश स्वभाव सुथिर कहियतु है ।
पुनि अवकास दिखावै ॥
यह पंचतत्त्वके पंचस्वभाव है ।
सतगुर विना न पावै ॥ १३ ॥

॥ राजसाहंकार ॥ चौपाया छंद ॥

अब राजसाहंकारते उपजी ।
दसइंद्रिय सु बताउं ॥
अरु पंचवाय तिनकें समीपही ।
यह ब्यौरौ समुझाउं ॥
अरु भिन्न भिन्न है क्रिया सु तिनकी ।
भिन्न भिन्न है नामू ॥
सुन सिष्य कहों नीकें करि तोकों ।
ज्यों पावै विश्रामू ॥ १४ ॥

॥ छप्पय छंद ॥

श्रवण तुचा द्रिग घ्राण रु रस पुनि तिनकै संगा
ज्ञान सु इंद्रिय पंच भई अपअपने रंगा ॥
बानि पानि अरु पाद उपस्थ रु गुदहू कहियें ।
कर्म सु इंद्रिय पंच भली बिधि जानै रहिये ॥
पुनि प्रानापान समानहू ।
व्यानोदान सु वाय है ॥

दस पंच रसोगुनते भये ।
सु क्रिया शक्तिकों पाय है ॥ १५ ॥
॥ सात्विकाहंकार ॥ गीतक छंद ॥
अब सात्विकाहंकारतें मन ।
चित्त बुद्धि अहं भये ॥
पुनि इंद्रियनके अधिष्ठाता ।
देवता बहूबिधि ठये ॥
दिगपाल मारुत अर्क अश्वनि ।
वरुन ज्ञान सु इंद्रियं ॥
पुनि अग्नि इंद्र उपेंद्र मित्र सु ।
प्रजापती कर्मेंद्रियं ॥ १६ ॥
॥ दोहा छंद ॥
शशिविधि अरु क्षेत्रज्ञ पुनि
रूद्र सहित पहिचानि
भये चतुर्दश देवता ज्ञान शक्ति यह जानि ॥१७
त्रिविध शक्ति है त्रिगुनमय तम रज सत्व सुएह

ईनकरि पिंड स्थूल है ईनकरि स्रूच्छम देह॥१८

कारण देह सु तीसरो सबको कारण मूल

वाहीतें दोऊ भये स्रूच्छम देह स्थूल ॥ १९ ॥

॥ देह स्थूल बर्नन ॥ चोपाई छंद ॥

व्योम वाय पावक जल धरनी ।
स्थूल देह ईनहीकी बरनी ॥
एक तत्त्वमहि पंच बताउं ।
पंच पंच पच्चीस सुनाउं ॥ २० ॥

अस्थि अवनि त्वक्क उदकहि जांनौ ।
मांस अग्नि नीकें पहिचानौ ॥
नाडी वाय रोम आकासं ।
पंचअंश पृथ्वी जु प्रकासं ॥ २१ ॥

मेदसु अवनि मूत्र जल कहिये ।
रक्त अग्नि यह जानै रहियें ॥
शुक्र सुवाय श्लेषम व्योमं ।
पंचअंश ए उदक समोमं ॥ २२ ॥

क्षुत पृथ्वी तृट जलको अंसा ।
आलस अग्नि न आनहू संसा ॥
संगम वाय निंद नभ जानं ।
पंचअंश यह अग्नि प्रमानं ॥ २३ ॥
रोधक अवनि भ्रमन जलमाही ।
ऊर्ध गवन अग्नि महि आही ॥
अति निर्गवन वायु पहिचानहू ।
उच्च स्थिती आकाशहि जानहू ॥ २४ ॥
भय पृथ्वी मोहादिक नीरं ।
क्रोध अग्नि पुनि काम समीरं ।
लोभाकास कहा समुझाये ।
पंचअंश यह नभके पाये ॥ २५ ॥

॥ अन्यभेद ॥ दोहा छंद ॥

गुदा कर्म इंद्रियन महि । नासा इंद्रिय ज्ञान ।
ए दोऊ भूतें प्रकट । सिष्य लेहू पहिचान॥२६
चरन कर्म इंद्रियन महि । लोचन इंद्रिय ज्ञान ।

ए दोऊ वसुतें प्रकट। सिष्य लेहू पहिचान ॥२७
उपस्थ कर्म इंद्रियन महि। रसुना इंद्रिय ज्ञान ॥
ए दोऊ जलतें प्रकट। सिष्य लेहू पहिचान ॥२८
पाणि कर्म इंद्रियन महि। त्वक इंद्रिय हे ज्ञान ॥
ए दोऊ पवनहिं प्रकट। सिष्य लेहूं पहिचान ॥२९
वचन कर्मइंद्रियनमें। श्रोत्र सु इंद्रिय ज्ञान ॥
ए दोऊ नभतें प्रकट। सिष्य लेहू पहिचान ॥३०

॥ ज्ञानेंद्रिय त्रिपुटी ॥ दोहा छंद ॥

श्रोत्र सु अध्यातम प्रकट। श्रोतव्यं अधिभूत ॥
दिसा तत्र हैं देवता। यह त्रिपुटी यहि सूत ॥३१
त्वक अध्यातम जानि यह। सुपरस है अधिभूत ॥
वायु तत्र हे देवता। यह त्रिपुटी यहि सूत ॥३२
चक्षु अध्यातम जानि यह। द्रष्टव्यं अधिभूत ॥
सूर्य तत्र है देवता। यह त्रिपुटी यहि सूत ॥ ३३
घ्राण सु अध्यातम प्रकट। घ्रातव्यं अधिभूत ॥
अश्वनि तत्र हें देवता। यह त्रिपुटी यहि सूत ॥३४

रसना अध्यातम प्रकट । रस ग्रहणं अधिभूत ॥
बरुण तत्र है देवता । यह त्रिपुटी यहि सूत ॥३५

॥ कर्मेंद्रिय त्रिपुटी ॥ दोहा छंद ॥

वचन सु अध्यातम प्रकट । वक्तव्यं अधिभूत ॥
अग्नि तत्र है देवता । यह त्रिपुटी यह सूत ॥३६
पानि सु अध्यातम प्रकट । दातव्यं अधिभूत ॥
इंद्र तत्र है देवता । यह त्रिपुटी यह सूत ॥३७॥
चरण सु अध्यातम प्रकट । मंतव्यं अधिभूत ॥
विष्णु तत्र है देवता । यह त्रिपुटी यह सूत ॥३८
उपस्थ सु आतम प्रकट । आनंदं अधिभूत ॥
प्रजापती तहां देवता । यह त्रिपुटी यह सूत ॥३९
गुदा सु अध्यातम प्रकट । मल त्यागं अधिभूत
मित्र तत्र है देवता । यह त्रिपुटी यह सूत ॥४०

॥ अहंकार त्रिपुटी ॥ दोहा छंद ॥

मन अध्यातम जानिये । संकल्पं अधिभूत ।
चंद्र तत्र है देवता । यह त्रिपुटी यह सूत ॥ ४१

बुद्धि सु अध्यातम प्रकट । बोद्धव्यं अधिभूत ।
ब्रह्मा तत्र है देवता । यह त्रिपुटी यह सूत ॥४२
चित्त सु अध्यातम प्रकट । चितवनि है अधिभूत
वासुदेव है देवता । यह त्रिपुटी यह सूत ॥ ४३
अहंकार अध्यात्म है । अहंकृत्य अधिभूत ।
रुद्र तत्र है देवता । यह त्रिपुटी यह सूत ॥ ४४

॥ लिंग शरीर ॥ चौपाई छंद ॥

नवतत्त्वनिको लिंग पंचधा ।
शब्द स्पर्श रूप रस गंधा ॥
मन अरु बुद्धि चित्त अहंकारा ।
यह नवतत्त्व भेद निर्धारा ॥ ४५ ॥

॥ दोहा छंद ॥

पंद्रहतत्त्व स्थूल वपु नवतत्त्वनिको लिंग ॥
ईन चोवीसहु तत्त्वको । बहोविधि कह्यो प्रसंग

॥ चोपाया छंद ॥

शिष ए चोवीसतत्त्व जड जानहू ।

ताकों क्षेत्र जु कहिये ॥
पुनि चैतन एक और पच्चीसहि ।
सांख्यहि मतसों लहिये ॥
सो है क्षेत्रज्ञ सबकौ प्रेरक ।
पुनि साक्षि यह जानों ॥
यह प्रकृति पुरुषको कियो निरने ।
सतगुरु कहै सु मानो ॥ ४७ ॥

॥ जागृत् अवस्था बर्नन ॥ चंपक छंद ॥

यह देह स्थूल बिराटं ।
है पंचतत्त्वकौ घाटं ॥
नभ वायु तेज जल धरनी ।
पाछै वहू विधि करि वरनी ॥ ४८ ॥
जे शब्द स्पर्शहि रूपा ।
रस गंध मिलै तिन जूपा ॥
यह तन्मात्रीका सहेता ।
जो पंचविषयको हेता ॥ ४९ ॥

अरु पांचों इंद्रिय ज्ञाना ।
श्रवनादि मिलि विधि नाना ॥
पुनि कर्म सु इंद्रिय पंचा ।
वचनादि मिलि जु प्रपंचा ॥ ५० ॥
मन बुद्धि चित्त अहंकारा ।
यह अंतःकर्ण विचारा ॥
पुनि देव चतुर्दस जानौ ।
दश वाय मिली तिन मानौ ॥ ५१ ॥
है सत्व रज तम गुनमाही ।
ये भिन्न भिन्न वरताही ॥
पुनि कालहू कर्म स्वभावा ।
तब जीव स्वरूप दिखावा ॥ ५२ ॥
अरु काल उपाइ खपावै ।
यह कर्मसु आनि मिलावै ॥
तहां सूत्रसु सुख दुःख माने ।
सो पाप पुन्यको ठाने ॥ ५३ ॥

है जीव सचैतन करता ॥
जड सकल पदारथ धरता ॥
मिलि सवहिनको संघाता ।
यह जाग्रदवस्था ताता ॥ ५४ ॥
सो आहि विश्व अभिमानी ।
तह ब्रह्मादेव प्रमानी ॥
है राजस गुन अधिकारा ।
पुनि भोग स्थूल सब सारा ॥ ५५ ॥
यह कहिये नयन स्थानं ।
बानी वैखरीया जानं ॥
यह जाग्रदवस्था निरनय ।
सुनि सिष्य स्वप्न अब बरनय ॥५६॥

॥ स्वप्नावस्था बर्नन ॥ चोपाया छंद ॥

दसवायु प्राण नागादिक कहिये ।
पंच सु इंद्रिय ज्ञानं ॥

पुनी पंच कर्मेंद्रिय आही ।
तिनकी स्थिति बखानं ॥
अरु पंच विषय शब्दादिक जानौ ।
अंतःकर्ण चतुष्टं ॥
पुनि देव चतुर्दस है तिनमांही ।
सब इंद्रिय संतुष्टं ॥ ५७ ॥
यह कालहु कर्म स्वभाव सकल मिलि ।
लिंग शरीर कहावै ॥
सिष नाम हिरण्यगर्भ है ताको ।
तेजोमय तन पावै ॥ ५८ ॥
अब स्वप्नअवस्था याकों कहिये ।
सो तैजस अभिमानी ॥
तहां सतगुन विष्णू देव जानहू ।
भोग वासना ठानी ॥ ५९ ॥
सो कंठस्थान मध्यमा वाचा ।
जीवातमा समेता ॥

यह स्वप्नअवस्थाको है निरनय ।
समुझी देख यह हेता ॥ ६० ॥

॥ सुषुप्तावस्था वर्नन ॥ छप्पय छंद ॥

सुषुपति कारण देह । तत्त्व सबहि तहां लीनं ।
लिंग शरीर न रहै । घोरनिद्रा वस कीनं ॥
प्राज्ञ पुनी अभिमानि । अव्याकृत तम गुन रूपा
पुनि ईश्वर तहां देव । भोग आनंदस्वरूपा ॥
पुनि पश्यंती वानी गुपत । हृदय स्थानक जानिये
यह कहत अवस्था सुषुपति । सिष्य सत्य करि
मानिये ॥ ६१ ॥

॥ तुरीयावस्था वर्नन ॥ चर्पट छंद ॥

तुरियावस्था चैतन तत्त्वं ।
स्वस्वरूप अभिमानीयत्वं ॥
परमानंद भोग इमि कहियें ।
सोहं देव तहां सो लहिये ॥ ६२ ॥

सर्वोपाधि विवर्जित मुक्तं ।
त्रिगुनातीतं साक्षी युक्तं ॥
मुर्द्धनि स्थिती परा पुनि वानी ।
तुरियावस्था निश्चय जानी ॥ ६३ ॥

॥ इंदव छंद ॥

जाग्रत रूप लियो सब तत्त्वनि ।
इंद्रिय द्वार करै व्यवहारौ ॥
स्वप्न शरीर भ्रमै नवतत्त्वको ।
मानत हैं सुख दुःख अपारौ ॥
लीन सबें गुन होय सुखोपति ।
जान्यो नही कछू घोर अंधारो ॥
तिनको साक्षि रहै तुरियातित ।
सुंदर सोई स्वरूप हमारौ ॥ ६४ ॥

॥ सोरठा छंद ॥

सिष्य तुं ऐसें जानि । हो असंग साक्षी सदा ।
आपुहि चैतन मानि । अवर पदारथ जड सबें॥

॥ दोहा छंद ॥

यह सिष में तोसों कह्यो। सांख्यहूको सिद्धांत
जो तेरी शंका रहै। सो अब पूछि वृत्तांत॥६६॥

इति श्रीसुंदरदासविरचिते ज्ञानसमुद्रे सांख्य-
निरूपणं नाम चतुर्थोल्लासः ॥ ४ ॥

॥ अथ गुरुशिष्यसंवादे अद्वैतनिरूपणार्थं नाम पंचमोल्लासः ॥ ५ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥ चोपाई छंद ॥

हे स्वामी तुम ब्रह्म अनूपा।
मैं करि जाने देह स्वरूपा
यह मोतें जु भयो अपराधा।
छिमा करौ मम मेटो बाधा ॥ १ ॥
मैं तो भयो कृतारथ तबही।
तुमसे सतगुरु भेटे जबही ॥

वचन सुनाय कपाट उघारै ।
मेरे संशय सकल निवारै ॥ २ ॥
किंचित मात्र रही आशंका ।
सो यह तुमतें जैहे पंका ॥
जे तुम तीनसिद्धांत बखांनै ।
ते सब में नीकै करि जानै ॥ ३ ॥
अब प्रभु तुरियातीत बतावहू ।
ता पाछै अद्वैतसु नावहू ॥
तुम विनु अवर कहै नहि कोई ।
तुमहीतें तुमहीसों होई ॥ ४ ॥

॥ श्री गुरुरुवाच ॥ दोहा छंद ॥

साधु साधु शिष धन्य तुं । भलो प्रश्न तें कीन ।
याको उत्तर अब कहों । द्वैत मिटै भ्रम लीन ॥५

॥ चोपाई छंद ॥

श्रवन मनन कीनें तें नीको ।
निदिध्यास राख्यो तें ठीको ॥

अब साक्षातकार तुं होई ।
तब संदेह रहै नहि कोई ॥ ६ ॥

॥ दोहा छंद ॥

तुरिया साधन ब्रह्मको । अहंब्रह्म सो होय ॥
तुरियातीत अनुभव यहै । में तुं रहै न कोय ॥७

॥ इंदव छंद ॥

जाग्रत तो नहि मेरेविषै पुनि ।
स्वप्न सु तो नहि मेरेविषै है ॥
नांही सुषोपति मेरे विषै पुनि ।
बिश्वहू तैजस प्राज्ञ परवै है ॥
मेरेविषै तुरिया नहि दीसति ।
याहितें मेरो स्वरूप अखै है ॥
दूरीतें दूरि परेतें परे अति ।
सुंदर कोई न मोहि लखै है ॥ ८ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥ दोहा छंद ॥

हे प्रभू दूरि परें कह्यो । उरें कह्यो अब ओर ॥

यह तो भ्रम भारी भयो गुरु सु बतावहु ठोर॥९

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ दोहा छंद ॥

उरें परें कछु वै नही । वस्तु रही भरपूर ॥
चतुरभाव तोसों कहों । तब भ्रम जैहे दूर॥१०॥

॥ शिष्य उवाच ॥ चोपाई छंद ॥

हे प्रभू चतुर्भाव समझावहू ।
भिन्न भिन्न करि अर्थ बतावहू ॥
द्वैत मिटैं सबही भ्रम छीजे ।
निःसंदेह मोहि अब कीजे ॥ ११ ॥

॥ श्री गुरुरुवाच ॥ चोपाया छंद ॥

सिष प्रागभाव सो प्रथमहि कहियें ।
नीकीविधि संमझाउं ॥
पुनि अन्योअन्याभाव दूसरो ।
सोऊ तोहि सुनाऊं ॥
अरु शुनहु प्रध्वंसाभाव तीसरो ।
ताको कहों बिचारा ॥

जब चतुर्भाव अत्यंतहि जाने ।
तब छुटै भ्रम सारा ॥ १२ ॥

चतुर्अभाव वर्नन ॥ सवाया छंद ॥

मृतिकामांहि अभाव घटनिकौ ।
प्रागभाव यह जाने रहियें ॥
ता म्रतिकाके भाजन बहुविध ।
अन्योअन्याभाव सु गहियें ॥
मृतिका मध्य लीनता सबकी ।
यह प्रध्वंसाभाव सु लहियें ॥
नां कछु भयो न अब कछू व्हैं ।
यह अत्यंताभाव जु कहिये ॥ १३ ॥

॥ प्रागभाव ॥ मनहर छंद ॥

पहिले जब कछु नांइ होतों परपंच यह ।
एकही अखंड ब्रह्म विश्वको अभाव है ॥
जैसें काठ पाहनकों लंध अति देखियत ।
तिनमें तो नहि कछू पूतरी बनाव है ॥

कंचनकी रासीतें ज्यों कंचन बिसेषियत ।
ताके मध्य नही कछु भूषन प्रभाव है ॥
जैसें नभ मांहि कछु बादुर न देखियत ।
सुंदर कहत शिष्य यही प्रागभाव है ॥ १४ ॥

॥ अन्योअन्याभाव ॥ सवाया छंद ॥

एक भूमिकै भाजन बहो विधि ।
कूंडा करवा हंडियां माट ॥
चपनी ढकनी सरवा गगरि ।
कलस कहाली नाना घाट ॥
तीहि नाम रूप गुन न्यारे न्यारे ।
पुनि व्यवहार भिन्नही ठाट ।
सुंदर कहत शिष्य सुनि ऐसें ।
अन्योअन्याभाव बिराट ॥ १५ ॥

॥ मनहर छंद ॥

एक भूमिको विकार कंचन कहावत है ।
ताहूके विविध भांति भूषण अनंतु है ॥

मुद्रिका कंकन कंठमाला शीशफुल पुनि ।
कुंडल बलय छूद्र घंटिका गनंतु है ॥
नाम गुन रूप व्यवहार सब भिन्न भिन्न ।
अंगअंग आपनीही ठोरले ठनंतु है ॥
ऐसें भाति शिष्य सुनि सुंदर कहत तोहि ।
विदुषहि अन्योअन्याभाव यों भनंतु है ॥१६॥

॥ चोपाया छंद ॥

एक भूमिकौ ताम्र विकारा ।
ताके पात्र कहावहि ॥
पुनि चरवी चरवा तष्टी तबला ।
ऊरी लोटा गावहि ॥
तिहि नाम रूप गुन भिन्न भिन्नहि ।
दीसत बिबिधप्रकारा ॥
यह अन्योअन्याभाव सुनि शिष ।
वहूत भांति बिस्तारा ॥ १७ ॥

॥ कुंडलिया छंद ॥

लोहा प्रत्यछ देखियें सोऊ भूमि विकार।
विविध भांति ताके भये जगतमांहि हथियार ॥
जगतमांहि हथियार गुरज समसेर कटारी ।
बरछी बुगदा भाली । कतरनी छरी सवांरी ॥
नाम रूप गुन भिन्न जहां जैसो तांहां सोहा ।
अन्योअन्याभाव शिष्य सुनि एकहि लोहा ॥

॥ छप्पय छंद ॥

इक भूमि विकार कपास भयो नाना विधि दरसैं
खासा मलमल सहंन सितारी उपजैं सरसैं ॥
सिरी साफ वाफता अधोतर भैरव कहियें ।
परकारा अरु गजा गनत कहू अंत न लहियें॥
सुनि शिष्य कहांलों वरनीयें। अंत नही निशि-
दिन कहै ॥
यह अन्योअन्याभावतें। कारण कारज सुनि लहै

॥ गीतक छंद ॥

पुनि एक भूमि बिकार तरु ।
विस्तार बहूविधि देखियें ॥
जर मूर साखा पत्र पुष्प रु ।
फल अनेकनि पेखियें ॥
तिहि नाम रूप गुण भिन्न भिन्नहि ।
बहुत भांति बखानियें ॥
यह भाव अन्योअन्य कहीये ।
सिष्य सत करि मानियें ॥ २० ॥

॥ छप्पय छंद ॥

जल विकार अब सुनहु फैन बुदबुदा तरंगा ।
ओला पाला जानि सुतौ जलहिको अंगा ॥
अग्नि बिकार मसाल । चिरकाहू दीपक जोवै ।
वाय विकार सुजानि बीधुरा आंधी होवै ॥
आकास विकार सु अभ्र हें
सो नानाविधि द्रेखियें ।

अन्योअन्याभाव सिष्य सुनि
पंचतत्त्व यह पेखियें ॥ २१ ॥

॥ दोहा छंद ॥

एकब्रह्म कारण जगत कारज है वहू भांति ॥
चतुर्खानि बिस्तार यह लखचोरासी जाति ॥२२

॥ प्रध्वंसाभाव ॥ चोपाया छंद ॥

यह भूमि त्रिकार भूमिमें लीनं ।
जल विकार जलमांही ॥
तेज विकार तेज मिलि ।
जैहै वायू वाय मिलांही ॥
आकास बिकार मिले आकासहि ।
कारण रहै निदानं ।
यह प्रध्वंसाभाव सुनि शिष ।
जो है सो ठहरानं ॥ २३ ॥

॥ दोहा छंद ॥

जो जातें कारज भयो । सो ताहीमें छीन ॥

ऐसेंही यह जगत सब होइ ब्रह्ममें लीन ॥२४॥

॥ अत्यंताभाव बर्नन ॥ मनहर छंद ॥

ईच्छाही न प्रकृति न महतत्त्व अहंकार ।
त्रिगुन न व्योम आदि सबदादि कोय है ॥
श्रवनादि वचनादि देवता न मन आदि ।
सूच्छम न थूल पुनि एकहि न दोय है ॥
स्वेदज न अंजड जरायुज न उद्भिज ॥
न पशुहि न पंखिहि न पुरुष जोय है ॥
सुंदर कहत ब्रह्म ज्योंको त्योंही देखियत ।
न तौ कछू भयो अब है न कछू होय है ॥ २५

॥ छप्पय छंद ॥

कहत ससाकें सिंग झांखि किनहू नहि देखै ।
वहुरि कुसुम आकाश सु जो काहू नहि पेखै ॥
त्योही वंझापूत । पीघुरें झुलत न कहियें ।
मृगजल मांही नीर कहूं ढुंढत नहि लहियें ॥

रजुमांही सर्प नहि कालत्रय सूक्ति रजतसो
लगति है ।
सिष यह अत्यंताभाव सुनि ऐसेहि सब जगति है
॥ पघडी छंद ॥
सिष यही अत्यंताभाव होई ।
नहि उत्पत्ति प्रलय न स्थिती कोई ॥
नहि आदि अंत नहि मध्यभाव ।
नहि स्रष्टा सृष्टिनको उपाव ॥ २७ ॥
नहि कारण कारज हैं उपाधि ।
नहि ईश्वर जीव परैं समाधि ॥
नहि तत्व अतत्व विभाग भिन्न ।
नहि जोत अजोति कछु न चिन्ह ॥ २८ ॥
नहि काल न कर्म सुभाव आहि ।
नहि विद्या अविद्या लगी ताहि ॥
नहि राग वैराग न बंध मुक्त ।
नहि रूप अरूप अजुक्त जुक्त ॥ २९ ॥

नहि आंहि प्रमाताको प्रमान ।
नहि हैं प्रमेय नहि प्रमा जान ॥
नहि लय विछेप नहि निकट दूरि ।
नहि दिवस न रजनी चंद सूरि ॥ ३० ॥
नहि शुक्ल न कृष्ण न रक्त पीत ।
नहि ह्रस्व न दीर्घ न घाम सीत ॥
नहि अर्थ न धर्म न काम मोक्ष ।
नहि पाप पुण्य अपरोक्ष प्रोक्ष ॥ ३१ ॥
नहि स्वर्गादिक नहि नर्कवास ।
नहि त्रासक कोई न होय त्रास ॥
नहि वेद न शास्त्र न शब्दजाल ।
नहि बर्न अबर्न न स्मृतिकि चाल ॥३२॥
नहि संध्या सूत्र न करन्यास ।
नहि होम न जज्ञ न व्रत उपास ॥
नहि इष्ट उपासन हार कोइ ।
नहि निर्गुन सगुन भेद दोइ ॥ ३३ ॥

नहि सेव्य न सेवक सेवकी न ।
नहि हेत प्रीत नहि प्रेम लीन ॥
नहि नवधा दसधा पराभक्ति ।
नहि सालोक्यादिक चारि मुक्ति ॥३४॥
नहि कर्त्ता कर्म क्रिया न कोई ।
नहि द्रष्टा दर्शन दृश्य होई ॥
नहि साधक साधन साध्य सार ।
नहि सिद्ध असिद्ध न निर्विकार ॥३५॥
नहि व्यक्त अव्यक्त अशुद्ध शुद्ध ।
नहि रक्त विरक्त अबुद्ध बुद्ध ॥
नहि शून्य अशून्य अथीर थीर ।
नहि तर्क वितर्क अधीर धीर ॥ ३६ ॥
नहि चिंत्य अचिंत्य अडोल डोल ।
नहि माप अमाप अतोल तोल ॥
नहि कृश स्थूल नहि जुवा बाल ।
नहि जरा मृत्यु न अकाल काल ॥३७॥

नहि जाग्रत स्वप्न सुषोपतिश्च ।
नहि तुरियासाक्षी त्रय मतिश्च ॥
नहि ज्ञेय ज्ञाता नहि ज्ञान गम्य ।
नहि ध्येय ध्याता नहि ध्यान रम्य ॥३८॥

॥ दोहा छंद ॥

जो कछु सुनियें देखिये । बुद्धि विचारै जाहि
सो सब वाक्य विलास है । भ्रम करि जानै आहि
यहै अत्यंताभाव है । यहै जु तुरियातीत
यह अनुभव साक्षात है । यह निश्चै अद्वीत ॥४०॥
नांहि नांहि करि करि कह्यो । है है कह्यो बखानि
नाही है के मध्य है । सो अनुभव करि जानि ४१
यहही है परि यह नही । नाही है है नाही ॥
यहै यहै जानि तुं यह अनुभव है या माहि ॥४२॥
अब कछु कहिबेकों नही । कहै कहांलो वैन ॥
अनुभव हि करि जानीयें । यह गुंगेकी सैन॥४३॥

जो तेरे संदेह कछु । रह्यो रंच जू होहि ॥
तो शिष अजहूं प्रश्न करि । फिरि समुझाउं तोहि

॥ शिष्य उवाच ॥ चोपाई छंद ॥

हे स्वामी संसय सब भाग्यो ।
वचन तुह्मारे सोवत जाग्यो ॥
अब तो सर्व स्वप्न करि जान्यो ॥
निश्चय मध्य संदेह विलान्यो ॥ ४५ ॥

॥ चर्पट छंद ॥

क्वाहं कत्वं कच संसारं ।
कच परमारथ कच व्यवहारं ॥
कच मे जन्मं कच मे मरणं ।
कच मे देहं कच मे करणं ॥ ४६ ॥
कच मे अद्वज कच मे द्वीतं ।
कच मे निर्भय क्वच मे भीतं ॥
क्वच माया क्वच ब्रह्म विचारं ।
क्वच मे प्रवृत्ति निवृत्ति विकारं ॥ ४७ ॥

क्वच मे ज्ञानं क्वच विज्ञानं ।
क्वच निर्विष क्वच मे विष जानं ॥
क्वच मे तृष्णा वैतृष्ण्यत्वं ।
क्वच मे तत्त्वं क्वच निःतत्त्वं ॥ ४८ ॥
क्वच मे सिष्या क्वच मे दीक्षा ।
क्वच मे आस्तिक नास्तिक पक्षा ॥
क्वच मे कालं क्वच मे देशा ।
क्वच मे गुरु सिष क्वच उपदेशा ॥४९॥
क्वच मे ग्रहणं क्वच मे त्यागं ।
क्वच मे बिरती क्वच वैरागं ॥
क्वच मे चपलं क्वच मे खेदं ।
क्वच मे द्वंद्वं क्वच निर्द्वंद्वं ॥ ५० ॥
क्वच मे बाह्याभ्यंतरभासं ।
क्वच अध ऊर्ध्व मध्य प्रकासं ॥
क्वच मे नाडी साधन जोगं ।
क्वच मे लक्ष विलक्ष वियोगं ॥ ५१ ॥

क्वच नानात्वं क्च एकत्वं ।
क्च मे शुन्याशुन्य समत्वं ॥
जो अवशेषं सो मम रूपं ।
वहूना किं उक्तं च अनूपं ॥ ५२ ॥

॥ दोहा छंद ॥

यह में श्रीगुरुदेवकों । अनुभव कह्यो सुनाय ।
जो प्रभुको परिश्रम कियो । सो फल प्रकट्यो आय ॥ ५३ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ ॥ चोपाई छंद ॥

हे शिष जो ईच्छा करि सोई ।
तोहि न कितहू वाधा होई ॥
तुं निर्धूम भयो निर्दोषा ।
तुं अब पायो जीवन मोषा ॥ ५४ ॥
जो में कह्यो सु हिर्दे आन्यो ।
ताहि कर्म तें ब्रह्महि जान्यो ॥

आप ब्रह्म जग भेद मिटायो।
ज्यों है त्योंही निश्चय आयो ॥ ५५ ॥
देखे सूंने रु पर्सत बोलै।
सुंघत क्रिया कबहू करि डोलै ॥
खान पान वस्त्रादिक जोई।
यह प्रारब्ध देहको तोई ॥ ५६ ॥

॥ दोहा छंद ॥

निरालंब निर्वासना इच्छाचारी येह ॥
संस्कार पवनसें फिरै शुष्क पर्ण ज्यों देह॥५७
जीवनमुक्त संदेहसें लिप्त न कबहु होई ॥
ताकों सोई जानि ले तुम समान जे कोई ॥५८॥
जो यह ज्ञानसमुद्रमें बुडकी मारै आय ॥
सोई मुक्ताफल लहैं दुख दरिद्र सब जाय॥५९॥
सुंदर ज्ञानसमुद्रको । महिमा कहियें कौन ॥
अमृतरस सो है भयों तुम जिन जानो लौन ॥६०
सुंदर ज्ञानसमुद्र महि बहोत रत्न अनमोल ॥

मृतक होयसो पेठि है पेठि न सकहिं लोल ॥ ६१
सुंदर ज्ञानसमुद्रकौ पारावार न अंत ॥
विषयी भाजें झिझकिकें पैठें कोई संत ॥ ६२ ॥
सुंदर ज्ञानसमुद्रके जो चलि आवै तीर ॥
देखतही सुख उपजे । निर्मल जल गंभीर ॥ ६३
यह तो ज्ञानसमुद्र है यह गुरु सिष्य संवाद ॥
सुंदर जोइ कहै सुनै ताके मिटही विषाद ॥ ६४
संवत सत्रहसो गये वर्ष दसोत्तर ओर ॥
भादो शुदि ऐकादसी गुरुवासर सिरमोर ॥ ६५
ता दिन संपूरन भयो ज्ञानसमुद्र सु ग्रंथ ॥
सुंदर अवगाहन करैं । लहैं मुक्तिको पंथ ॥ ६६

इति श्री सुंदरदासविरचिते ज्ञानसमुद्रे गुरुशिष्य संवादे अद्वैतनिरूपणं नाम पंचमोल्लासः ॥ ५ ॥

॥ समाप्तोयं ज्ञानसमुद्रः ॥

॥ श्री सुंदर काव्य ॥

॥ ज्ञानविलासः ॥

॥ प्रारभ्यते ॥

॥ गुरुदेव अंग ॥ दोहा ॥

सुंदर सतगुरु बंदिये । सोई बंदन जोग ॥
औषध शब्द पिवाइ करि । दूर कियो सब रोग
सुंदर सतगुरु पलकमें । दूर करत अग्यान ॥
मन वच क्रम जिज्ञासु व्हैं । शब्द सुनें जो कान २
बेद महा बहू भेद है । जाने बिरला कोइ ॥
सुंदर सो सतगुरु बिना । निरवारो नहि होई ३
परमातमसों आतमा । जुदे रहे बहुकाल ॥
सुंदर मेला कर दियो । सतगुरु मिले दलाल ४
सतगुरु शुद्ध स्वरूप हे । सिष्य देखि गुरुदेह॥
सुंदर कारज क्यों सरे । कैसें बढें सनेह ॥५॥

॥ स्मरण अंग ॥ दोहा ॥

सुंदर सतगुरु यों कह्यो । सकल शिरोमनि नाम ॥
ताकौं निशदिन सुमिरियें । सुख सागर सुखधाम
रंक हाथ हीरा चढ्यौ । ताको मोल अमोल ॥
घर घर जो लै बेचते । सुंदर याही भोल ॥२॥
राम नाम जाके हिये । ताहि नवैं सब कोइ ॥
ज्यों राजाकी शंकतें । सुंदर अति डर होइ ॥३॥

॥ साधु अंग ॥ दोहा ॥

संत समागम कीजियें । तजियें और उपाइ ॥
सुंदर बहुतहिं उद्धरै । सतसंगतमें आइ ॥ १ ॥
सुरता जो हरि मिलनकी । तो करियें सतसंग ॥
बिना परिश्रम पाइयें । अविगत देव अभंग ॥२॥
संत मुक्तिके पौरिया । तिनसों करिये प्यार ॥
कूंची उनके हाथ हे । सुंदर खोलहिं द्वार ॥३॥
सुंदर साध दयाल हे । कहे ग्यान समुझाय ॥
पात्र बिना नहि ठार हे । शब्द निकरि बहिजाय

संतनके यह वनज हे। निशदिन ज्ञान विचार॥
ग्राहक आवे लेनकों। ताहीके दातार ॥ ५॥

॥ देहात्मा विच्छोह अंग ॥ दोहा ॥

देह सुरंगी तव लगें। जवलगि प्राण समीप॥
जीव जोति जाति रही। सुंदर वदरंग दीप १
सुंदर देह परी रही। निकसि गये जव प्रान॥
सव कोऊ यों कहत हे। अव ले जाहू मसान २
सुंदर लोक कुटुंब सव। रहते सदा हजूरि॥
प्रान गए लागे कहन। काढो घरतें दूरि ॥३॥
चेतनतें चेतन भई। अतिगति शोभित देह॥
सुंदर चैतन निकसतें। भई खेहकी खेह ॥४॥

॥ उपदेश चिंतवन अंग ॥ दोहा ॥

सुंदर मानुष देहकी। महिमा वरने साध॥
जामें पैयें परमगुरु। अविगत देव अगाध ॥१॥
सुंदर मनुषा देहकी। महिमा कहियें काहि॥
जाकों वंछे देवता। तुं क्यों खोवे ताहि ॥ २॥

सुंदर साची कहत हों । मति आने कछू रोस ॥
जो तें खोयो रतन यह तो तोहीकों दोस ॥३॥
बेर बेर नहि पाइयें । सुंदर मनुषा देह ॥
राम भजन सेवा सुकृत । यह सौदा करि लेह ॥
सुंदर मनुषा देह यह । तामें दोइ प्रकार ॥
याते बूडे जगतमहि । याये उतरे पार ॥५॥

॥ कालचिंतवन अंग ॥ दोहा ॥

काल ग्रसतहे बावरे । चेतत क्यों न अजान ।
सुंदर काया कोटमें । क्यों हुओ सुलतान ॥१॥
सुंदर काल महाबली । मारे मोटे मीर ।
तुं हे कोनकि गिनतिमें । चेतत काहे न वीर॥२॥
मेरे मंदिर माल धन । मेरो सकल कुटुंब ॥
सुंदर ज्योंको त्यों रह्यो । सप्तलोक आडंब ॥३॥

॥ सोरठा ॥

शिव जु ड्यों कैलास । विष्णु ड्यों बैकुंठमें ॥
सुंदर मानी त्रास । इंद्र ड्यों अमरावति ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

काल दियो जब बंधही । देवलोक सब देव ॥
सुंदर डर्यो कुबेर पुनि । देखि सबनको छेव ॥५

एक रहे कर्त्ता पुरुष । महा कालको काल ॥
सुंदर वह विनसे नही । जाको यह सब ख्याल ६

॥ तृष्णा अंग ॥ दोहा ॥

पलपल छीजे देह यह । घटत घटत घटि जाइ ।
सुंदर तृष्णा नां घटैं । दिन दिन नौतन थाइ ॥१॥

नित नित डोले ताकती । स्वर्ग मृत्यु पाताल ॥
सुंदर तीनों लोकतें । भर्यो न एको गाल ॥२॥

सुंदर तृष्णा करत हे । सबकों बांधि गुलाम ॥
हुकम करे त्योंही चले । गिनत सीत नहि घाम ३

सुंदर तृष्णाके लिये । पराधीन व्है जाइ ॥
दुःसह वचननिकों सहे । यो परहाथ बिकाइ ॥४

॥ देहमलीन अंग ॥ दोहा ॥

सुंदर देह मलीन अति । बुरी वस्तुको भौंन ॥

हाड मांसको कोथरा । भली कहे तिहि कौन॥१
सुंदर पंजर हाडको। चाम लपेट्यो ताहि ।
तामें बैठ्यो फूलिके । मो समान को आहि॥२॥
सुंदर न्हावे बहुतही । बहुत करै आचार ॥
देहमाहि देखे नहि । भर्यो नरक भंडार ॥३॥

॥ आधीन उराहनेको अंग ॥ दोहा ॥

देह रच्यो प्रभु भजनकों ।सुंदर नख सिख साज
एक हमारी बात सुनि । पेट दियो किहिं काज १
श्रवन दिये जस सुननको । नेन देखने संत ।
सुंदर शोभित नासिका । मुख शोभनको दंत २
ओर ठोर मन काढिकें । करी है तुमरी भेट ॥
सुंदर क्यों करि छूटियें । पाप लगायो पेट ॥३॥
कूप भरे वापी भरे । पूरि भरे जलताल ॥
सुंदर पेट न क्यों भरे । कोन बनायो ख्याल ४
सुंदर प्रभुजी पेटकी चिंता दिन अरु रात ॥
सांझ खाई करि सोइयें । बहुरि लगे परभात ५

॥ विश्वास अंग ॥ दोहा ॥

सुंदर तेरे पेटकी । तोकों चिंता कौन ।
विश्व भरन भगवंत हे । पकरि बेठ तुं मौन ॥१॥
सुंदर चिंता मति करे । पाउ पसारे सोइ ।
पेट कियो हे जिन प्रभु । ताकों चिंता होइ ॥२॥
जलचर थलचर व्योमचर । सबकों देत अहार
सुंदर चिंता जिन करे । निशदिन वारंवार ॥३॥
सुंदर प्रभुजी देतहे । पाहनमें पहुचाइ ।
तुं अब क्यों भूखो रहे । काहेकों बिललाइ ॥४॥

॥ दुष्ट अंग ॥ दोहा ॥

घर खोवत हे आपुनो । औरनहूकों जाइ ।
सुंदर दुष्ट स्वभाव यह । दोउ देत बहाइ ॥१॥
दुर्जन संग न कीजियें । सहियें दुःख अनेक ।
सुंदर सब संसारमें । दुष्ट समान न एक ॥२॥
गज मारे ता नाहि दुख । सिंह करै तन भंग ।
सूंदर एसो दुख नही । जेसो दुर्जन संग ॥३॥

सुंदर दुर्जन सारिखा । दुखदायक नहि और
स्वर्ग मृत्यु पाताल हम । देखे सबै ढंढोर ॥४॥
सुंदर दुर्जनको वचन । दुःसह सह्यो न जांइ ॥
सहे सु विरले संत जन । जिनके राम सहाइ॥५

॥ मन अंग ॥ दोहा ॥

मनकों राखत हटक करि । सटकि चहूं दिस जाइ।
सुंदर लटकुर लालची । गटकि विषयफलखाइ १
पलहिंमें मरि जात मन । पलमें जीवत सोइ ॥
सुंदर पारा मुरछिकें । बहुरि सजीवन होइ ॥२॥
साधत साधत दिन गये । करहिं ओरकी ओर ॥
सुंदर एक विचार बिनु । मन नहि पावे ठोर ॥३
सुंदर यह मन रंक हे । कबहु होई मन राऊ ॥
कबहु टेढा है चले । कबहू सूधे पाउ ॥४॥
पाप पुन्य मेनें किये । स्वर्ग नरक हों जाऊं ॥
सुंदर सब कछु मानिले । याहीतें मन नांउ ॥५॥
मनको साधन एक हे । निशदिन ब्रह्मविचार ॥

सुंदर ब्रह्म विचारतें । ब्रह्म होत नहिं वार ॥६॥
देहरूप मन व्है गयो । कियो देह अभिमान ॥
सुंदर समुझे आपको । आपु होय भगवान ॥७॥

॥ सूरातन अंग ॥ दोहा ॥

सुंदर सोई सूरमा । लोट पोट व्है जाई ॥
ओट कछू राखे नहि । चोट मूंह पर खाई ॥१॥
सुंदर सील सनाह करि । तोष दियो सिर टोप ॥
ग्यान खड्ग पुनि हाथ करि। कियो जु मनपर कोप
मारे सब संग्राम करि। पिशुन हुते घटमांहि ॥
सुंदर कोई सूरमा । साधु बराबर नांहि ॥३॥
सुंदर निशदिन साधके । मन मारनकी मूठ ॥
मनके आगें भाजिकें । कबहु न देवैं पूंठ ॥४॥

॥ वचन विवेक अंग ॥ दोहा ॥

सुंदर तबहीं बोलियें । समुझि हियेमें पेठि ॥
कहियें बात बिबेककी । नहि तर चुप व्है बेठि
सुंदर मौन गहे रहे । जानि सके नहि कोइ ॥

बिन बोले गरुवा रहे । बोले हरुआ होइ ॥२॥
सुंदर वेही बोलियें । जा बोलेमें ढंग ॥
नांतर पशु बोलत सदा । कौंन स्वाद रस रंग ॥३
सुंदर वचन कुवचनमें । रात दिवसको फेर ॥
सुवचन सदा प्रकाशमय । कुवचन सदा अंधेर ४
जा वानीमें पाइये । भक्ति ज्ञान बैराग ॥
सुंदर ताकों आदरे । ओर सकलकों त्याग ॥५॥

॥ निजभाव अंग ॥ दोहा ॥

सुंदर अपनो भाव हे । जो कछु दीसे आन ॥
बुद्धि योग विभ्रम भयो । दोउ ज्ञान अज्ञान ॥१
अपनी छाया देखिकें । कूकर जाने आन ॥
सुन्दर अतिहिं जोर करि । भुंसि मरत हे स्वान
सिंह कूपमें आयकें । देखे अपुनी छांहि ॥
सुन्दर जान्यो दूसरो । बूडी मर्यो तामांहि ॥३॥
फटिक शिलासें आयकें । कुंजर तोरे दंत ॥
आगे देखे ओर गज । सुन्दर आगि अनंत ॥४॥

सुन्दर याकों ऊपजे । काम क्रोध अरु मोह ॥
याहीकों हे मित्रता । याहीकों हे द्रोह ॥ ५ ॥

॥ स्वरूप विस्मरण अंग ॥ दोहा ॥

सुन्दर भूल्यो आपुकों । खोइ अपुनी ठोर ॥
देहमांह मिलि देहसो । भयो औरको ओर ॥
ज्यौं मणि काहू कंठमें । ढूंढत पावैं नाहीं ॥
पूछत डोलत ओरकों । सुन्दर आपहि मांहि ॥
सुन्दर चेतन आप यह । चालत जडकी चाल ॥
ज्यों लकडीके अश्व चढि । कूदत डोलत बाल ॥
भूतनि मांहीं मिल रह्यो । तातें होतहि भूत ॥
सुंदर भूल्यो आपकों । उरझानों मन सूत ॥

॥ सांख्य अंग ॥ दोहा ॥

सुंदर सांख्य विचारि करि । समुझे अपनो रूप
नहि तो जडके संगते । बूडत हे भ्रमकूप ॥१॥
मायाके गुन जड सबे । आतम चेतन जानि ॥

सुंदर सांख्य विचारि करि ।
भिन्न भिन्नपहिचानी ॥ २ ॥
पंचतत्त्वकी देह जड । सब्रगुन मिलि चौवीस ॥
सुंदर चैतन आतमा । ताहि मिले पच्चीस ॥३॥
देहरूपही व्है रह्यो । देह आपको मानि ॥
ताहीतें यह जीव है । सुंदर कहत बखानि ॥४
देह भिन्न हों भिन्न हों । जब यह करे विवेक ॥
सुंदर जीव न पाइयें । होइ एकको एक ॥५॥
क्षीण सुपुष्ट शरीर है । शीत उष्ण तिहिं लार ॥
सुंदर जन्म जरा लगै । ए षट देह विकार ॥६॥
क्षुधा तृषा गुन प्रानके । शोक मोह मन होई ॥
सुन्दर साखी आतमा । जाने बिरला कोई ॥७॥
जाकी सत्ता पाइ करि । सब गुन व्है चैतन्य ॥
सुंदर सोई आतमा तुम जिन जानो अन्य ॥८॥

॥ विचार अंग ॥ दोहा ॥

सुंदर साधन सब किये । उपज्यो हिये विचार

श्रवन मनन निदध्यास पुनि। याहि साधन सार
सुंदर यह साधन विना। दूजो नही उपाई ॥२॥
निशदिन ब्रह्म विचारतें। जीव ब्रह्म व्है जाई ॥
दधि मथि घृतकों काढिकें। देत तक्रमें डारि ॥
सुंदर बहुरि मिले नहि। एसें लेहु विचारी ॥३॥
सुंदर ब्रह्मविचार हे। सब साधनको मूल ॥
याहीमें आये सकल। डाल पात फल फूल ॥४॥
सूतो जीव नरेश यह। सुख शज्जा पर आइ ॥
बढी अविद्या नींदमें। सुंदर अति सुख पाइ ॥५॥
आयो कर्म खवास चलि। नृपति जगावन हेत ॥
सुंदर दानी फुट परि। अतिगति भयो अचेत ॥६॥
देखे भक्ति प्रधान जब। राजा जाग्यो नाहीं ॥
सुंदर शंका करि नही। पकरि झंझेरी बांहिं ॥७॥
तब उठि करि बैठो भयो। बहुरि जंभाई खात ॥
सुंदर कियो विचार जब। तब जाग्यो साक्षात् ॥८॥

आत्मानुभव अंग ॥ दोहा ॥

मुखतें कह्यो न जात हैं । अनुभवको आनंद ॥
सुंदर समुझे आपकों । जहां न कोई द्वंद ॥१॥
सुंदर जैसें शर्करा । गुंगे खाई होई ॥
मुखतें कहि आवै नही । काष पडावै साइ ॥२॥
रवि शशि तारा दीप गन । हीरा होइ अनूप ॥
सुंदर इनके तेजतैं । दीशै इनको रूप ॥ ३ ॥
त्यों आतमके तेजतें । आतम करैं प्रकाश ॥
सुंदर इंद्रिय जड सबै । कोइ न जानैं तांश ॥४॥
सुंदर साधन सब करैं । कहैं मुक्तिमें जाहि ॥
आतमके अनुभव विना । और मुक्ति कहुं नांहि
दूरि करैं सब बासना । आशा रहैं न कोइ ॥
वाही सुंदर मुक्तिहै । जीवतहिं सुख होई ॥६॥
श्रवन ज्ञान हैं तब लगैं । शब्द शुनैं चित लाइ ॥
सुंदर मायाजल परैं । पावक ज्यों बुझि जाइ ॥७॥
मननज्ञान नहि जातहे । ज्यौं विजुरी उद्योत ॥

मायाजल बरखत रहैं । सुंदर चमका होत ॥८॥
निदध्यास हैं ज्ञान पुनि । बडवा-अनल समान ॥
मायाजल भच्छन करैं । सुंदर यह हैरान ॥९॥
आतम अनुभव ज्ञान है । मलय कालकी अंच ॥
भस्म करैं सब जारिकैं । सुंदर द्वैत प्रपंच ॥१०॥
नित्य कहत गुरु आतमा । सो हैं शब्द प्रमान ॥
जैसें व्यापक व्योम हैं । सुंदर यह उपमान ॥११॥
जाकी सत्ता इंद्रियनी । यह कहियें अनुमान ॥
सुंदर अनुभव आतमा । यह प्रतच्छ परमान ॥१२॥
सुंदर तत्त्व जुदे जुदे । राख्यो नाम शरीर ॥
ज्यो कदलीके खंभलों । कोन वस्तु हैं वीर ॥१३॥
हैं सो सुंदर हैं सदा । नहि सो सुंदर नांहि ॥
नहि सो परकट देखियें । हैं सो लहियैं नांहि १४

॥ ज्ञानीको अंग ॥ दोहा ॥

सुंदर ज्ञानी जगतमें । विचरैं सदा अलिप्त ॥
ए गुन जाने देहके । भूखे रहैं के तृप्त ॥ १ ॥

निंदा स्तुति हैं देहकी । कर्म शुभाशुभ देह ॥
सुंदर ज्ञानी ज्ञानमय । कछुहु न जाने एह ॥२॥
अज्ञ क्रिया सब करत हे । अहं बुद्धिकों आनि ॥
सुंदर ज्ञानी करत हे । अहंकार बिनु जानि ॥३॥
सुंदर अज्ञ रु तज्ज्ञके । अंतर हैं बहु भांति ॥
वाकें दिवस अनुप हैं । वाहि अंधेरी राति ॥४॥
सुंदर ज्ञान प्रकाशतें । धोखा रहैं न कोइ ॥
भावैं घर भीतर रहैं । भावैं वनमैं होइ ॥५॥

॥ इति श्रीसुंदरदासकृतो ज्ञानविलासः ॥

॥ समाप्तः ॥

अथ श्रीसुंदराष्टकानि प्रारभ्यंते ॥

॥ अथ गुरुमहिमाऽष्टक ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

परमेश्वर अरु परमगुरु । दोनूं एक समान ॥

सुंदर कहत विशेष यह । गुरुतें पावै ज्ञान ॥१॥
दादू सतगुरुके चरण । वंदत सुंदरदास ॥
तिनकी महिमा कहत हूं । जिनतें ज्ञानप्रकाश ॥२॥

॥ भुयंगप्रयात छंद ॥

प्रकाश स्वरूपं । हृदै ब्रह्म ज्ञानं ।
सदाचार येही । निराकार ध्यानं ॥
निरीहं निजानंद जानौ जुगादू ।
नमो देव दादू । नमो देव दादू ॥ ३ ॥
अच्छेदं अभेदं । अनंतं अपारं ।
अगाधं अबाधं । निराधार सारं ॥
अजीतं अभीतं । गहे हैं समादू ।
नमो देव दादू । नमो देव दादू ॥ ४ ॥
हते काम क्रोधं । तजे कालजालं ।
भगे लोभ मोहं । गये सर्व सालं ॥
नही द्वंद्व कोऊ । डरै हैं यमादू ।
नमो देव दादू । नमो देव दादू ॥ ५ ॥

गुणातीत देहादि इंद्री जहालं ।
किये सर्व संहार वैरी तहालं ॥
महा शूरवीरं । नही को विषादू ।
नमो देव दादू । नमो देव दादू ॥ ६ ॥

मनो काय वाचं । तजे हैं विकारं ।
ऊदै भान होतं । गयो अंधकारं ॥
अयोनी अनायास पाये अनादू ।
नमो देव दादू । नमो देव दादू ॥ ७ ॥

क्षमावंत भारी । दयावंत ऐसे ।
प्रमाणीक आगे । भये संत जैसे ॥
गह्यो सत्य सोई । लह्यो पंथ आदू ।
नमो देव दादू । नमो देव दादू ॥ ८ ॥

किये आप आपे । बडे तत्त्व ज्ञाता ।
बडी मौज पाई । नही पक्षपाता ॥
बडी बुद्धि जाकी । तज्यो है विवादू ।
नमो देव दादू । नमो देव दादू ॥९॥

पढै याहि नित्यं । भुयंग प्रयातं ।
लहै ज्ञान सोई । मिलै ब्रह्म तातं ॥
मनो कामना सिद्ध पावै प्रसादू ।
नमो देव दादू। नमो देव दादू ॥ १० ॥

॥ दोहा ॥

परमेश्वरमें गुरु वसै । परमेश्वर गुरुमांहि ॥
सुंदर दोऊ परस्पर। भिन्न भाव कछु नांहि ११
परमेश्वर व्यापक सकल । घट धारे गुरु देव ॥
सब घटकूं उपदेश दे। सुंदर पावै भेव ॥१२॥

॥ इति गुरुमहिमाऽष्टक ॥ १ ॥

॥ अथ गुरुदयाऽष्टक ॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

अलख निरंजन वंदिके । गुरु दादूके पाय ॥
दोऊ कर तब जोर कर। संतनकूं शिर नाय ॥१॥

सुंदर मोहि दया करी । सतगुरु ग्रह्यो हाथ ॥
माता था अति मोहमें।राता विषया साथ ॥२॥

॥ त्रिभंगी छंद ॥

तौ मैं मत माता । विषया राता ।
बहिया जाता । इन बाता ॥
तब गोते खाता । दुबता जाता ।
होती घाता । पछताता ॥
उन सब सुख दाता । काढयो नाता ।
आप विधाता । गहिलेला ॥
दादूका चेला । चेतन भेला ।
सुंदर मारग । बूझेला ॥ ३ ॥
तौ सतगुरु आया ॥ पंथ बताया ॥
ज्ञान गहाया । मन भाया ॥
सब कृत्रम माया । यूं समुझाया ।
अलख लखाया । सच पाया ॥
हुं फिरंता धाया । उन्मुनि लाया ।

त्रिभुवन राया । दत देला ॥
दादूका चेला । चेतन भेला ।
सुंदर मारग । बूझेला ॥ ४ ॥
तौ माया छटके । कालहि झटके ।
ले करि पटके । सब गटके ॥
ए चेटक नटके । जानहि तटके ॥
नेक न अटके । तब सटके ॥
जी डोलत भटके । सतगुरु हटके ।
बंधन घटके । काटेला ॥
दादूका चेला । चेतन भेला ।
सुंदर मारग । बूझेला ॥ ५ ॥
तौ पाई जरिया । शिरपर धरिया ।
विषै उखरिया । तन तरिया ॥
जी अब नहि डरिया । चंचल थिरिया ।
गुरु उच्चरिया । सो करिया ॥
सब उमग्यो हरिया । अमृत झरिया ।

घट भरिया । छूटै रेला ॥
दादूका चेला । चेतन भेला ।
सुंदर मारग । बूझेला ॥ ६ ॥
तौ देख्या सीना । मांझ नगीना ।
मारग झीना । पग हीना ।
अब होइ न दीना । दिन दिन छीना ।
जलमें मीना । यूं लीना ॥
जी सो परवीना । रसमें भीना ।
अंतर कीना । मन मेला ॥
दादूका चेला । चेतन भेला ।
सुंदर मारग । बूझेला ॥ ७ ॥
तौ बैठा छाजं । अंतर गाजं ॥
रणमें राजं । नहि भाजं ॥
सो कीया काजं । जोड्या साजं ।
तोडी लाजं । यह पाजं ॥
उन सब शिरताजं । तबहि निवाजं ।

आनँद आजं । आकेला ॥
दादूका चेला । चेतन भेला ।
सुंदर मारग । बूझेला ॥ ८ ॥

॥ इति गुरुदयाऽष्टक ॥ २ ॥

॥ अथ गुरुकृपाऽष्टक ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

दादू सतगुरुके चरण । अधिक अरुण अरविंद
दुःख हरण तारण तरण । मुक्त करण सुखकंद
नमस्कार सुंदर करत । निशिदिन वारंवार ॥
सदा रहौ तम शीश पर । सतगुरु चरण तुह्मार

॥ त्रिभंगी छंद ॥

तै। चरण तुह्मारा । प्राण हमारा ।
तारण हारा । भव पोतं ॥

जो गहै विचारा । लगै न वारा ।
विन श्रम पारा । सो होतं ॥
सब मिटै अँधारा । होइ उजारा ।
निर्मल सारा । सुखराशी ॥
दादू गुरु आया । शब्द सुनाया ।
ब्रह्म बताया । अविनाशी ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

तन मन इंद्रिय वश करण । ऐसा सतगुरु शूर ॥
शंक न आनै जगतकी । हरिसूं सदा हजूर ॥४॥

॥ त्रिभंगी छंद ॥

तौ सदा हजूरं । अरिदल चूरं ।
भागै दूरं । भकभूरं ॥
तब बाजै तूरं । आतम मूरं ।
जिल मिल नूरं । भरपूर ॥
पुनि यहि अंकूरं । नाही ऊरं ।
प्रेम हलूरं । बरखासी ॥

दादू गुरु आया । शब्द सुनाया ।
ब्रह्म बताया । अविनाशी ॥ ५ ॥

॥ दोहा ॥

द्वंद्वरहित निर्मल सदा । सुख दुःख एकसमान॥
भेदाभेद न देखिये । सतगुरु चतुर सयान ॥६॥

॥ त्रिभंगी छंद ॥

तौ चतुर सयानं । भेद न आनं ।
अविचल थानं । जिन जानं ॥
अरु सब भ्रम भानं । नाही छानं ।
पद निर्वानं । मन मानं ॥
जो रहै निदानं । सो पहिचानं ।
पूरण ज्ञानं । मम आसी ॥
दादू गुरु आया । शब्द सुनाया ।
ब्रह्म बताया । अविनाशी ॥ ७ ॥

॥ दोहा ॥

समदृष्टी शीतल सदा । अद्भुत जाकी चाल ॥

ऐसा सतगुरु कीजिये । पलमें करै निहाल ॥८॥

॥ त्रिभंगी छंद ॥

तौ करै निहालं । अद्भुत चालं ।
भया निरालं । तजि जालं ॥
सो पिवै पियालं । अधिक रसालं ।
ऐसा हालं । यह ख्यालं ॥
पुनि वृद्ध न बालं । कर्म न कालं ।
भागै सालं । चतुराशी ॥
दादू गुरु आया । शब्द सुनाया ।
ब्रह्म बताया । अविनाशी ॥ ९ ॥

॥ दोहा ॥

मनसा वाचा कर्मणा । सबहीसूं निर्दोष ॥
क्षमा दया जिनके हृदय । लिये सत्य संतोष१०

॥ त्रिभंगी छंद ॥

तौ सत संतोषं । है निर्दोषं ।

क्तिहु न रोषं । सब्र पोषं ॥
पुनि अंतःकोषं । निर्मल चोषं ।
नांही दोषं । गुण सोषं ॥
तिह सम सर जोषं । कोई न होषं ।
जीवन मोषं । दरसासी ॥
दादू गुरु आया । शब्द सुनाया ।
ब्रह्म बताया । अविनाशी ॥ ११ ॥

॥ दोहा ॥

भानु उदय ज्यूं होत है । रजनी तमको नाश ॥
सुखदाई शीतल सदा । जिनके हृदय प्रकाश १२

॥ त्रिभंगी छंद ॥

तो हृदय प्रकाशं । रटते श्वाशं ॥
भया उजासं । तम नाशं ॥
पुनि धरणि अकाशं । मध्य निवासं ।
कीया वासं । अनयासं ॥

सो है निज दासं । प्रभुके पासं ।
करत विलासं । गुण गासी ॥
दादू गुरु आया । शब्द सुनाया ।
ब्रह्म बताया । अविनाशी ॥ १३ ॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु प्रगटे जगतमें । मानहु पूरण चंद ॥
घटमांही घटसो पृथक । लिपत न कोऊ द्वंद१४

॥ त्रिभंगी छंद ॥

तौ लिपत न द्वंद्वं । पूरण चंदं ।
नित्यानंदं । निष्पंदं ॥
सो गुरु गोविंदं । एक पसंदं ।
गावत छंदं । सुखकंदं ॥
जे हैं मतिमंदं । बाधे फंदं ।
वे सब रंदं । मुरझासी ॥
दादू गुरु आया । शब्द सुनाया ।
ब्रह्म बताया । अविनाशी ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु सुधा समुद्र है । सुधामयी है नैन ॥
नखशिख सुधा स्वरूप है । सुधा सु बर्षै बैन १६

॥ त्रिभंगी छंद ॥

तौ जिनकी बानी । संतन मानी ।
अमृतखानी । सुखदानी ॥
जी नीकरि प्रानी । हिरदय आनी ।
बुद्धि थरानी । उन जानी ॥
ए अकथ कहानी । प्रगट प्रमानी ।
नाहि न छानि । गंगासी ॥
दादू गुरु आया । शब्द सुनाया ।
ब्रह्म बताया । अबिनाशी ॥ १७ ॥

॥ छप्पय छंद ॥

सतगुरु ब्रह्म स्वरूप । रूप धारै जगमांही ।
जिनके शब्द अनूप । सुनत संशय सब जांही ॥

उरमें ज्ञानप्रकाश । होत कछु लगै न बारा ।
अंधकार मिटि जाइ । कोटि सूरज उजियारा ॥
दादू दयाल दहूं दिश प्रगट ।
झगरि झगरि द्वै पख थकी ॥
कहि सुन्दर ग्रंथ प्रसिद्ध यह ।
सांप्रदाय परब्रह्मकी ॥ १८ ॥

॥ इति गुरुकृपाऽष्टक ॥ ३ ॥

॥ अथ भ्रमविध्वंसाऽष्टक ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

सुन्दर देख्या शोधिके । सब काहूका ज्ञान ॥
कोई मन मानै नही । बिना निरंजन ध्यान ॥१॥
षट्दर्शन हम खोजिया । योगी जंगम शेष ॥
संन्यासी अरु सेवडा । पंडित भक्ता भेष ॥२॥

॥ त्रिभंगी छंद ॥

तौ भक्त न भावै । दूर बतावै ।
तीरथ जावै । फिर आवै ॥
जी कृत्रम गावै । पूजा लावै ।
झूठ दृढावै । बहिकावै ॥
अरु माला लावै । तिलक बनावै ।
क्यूं पावै गुरु बिन गैला ॥
दादूका चेला । भर्म पछेला ।
सुन्दर न्यारा । व्है खेला ॥ ३ ॥
तौ योगि गहेला । देख सहेला ।
नांहि लहेला । वे महेला ॥
वे मांस भखेला । मद्य पिवेला ।
भूत जपेला । पूजेला ॥
जी गोरख कहेला । सो न करेला ।
बिनहि चहेला । बोधेला ॥

दादूका चेला । भर्म पछेला ।
सुंदर न्यारा । व्है खेला ॥ ४ ॥

तौ तपी संन्यासी । राख लगासी ।
जटा वढासी । भटकासी ॥
जब यौवन जासी । धौला आसी ।
तब कर दासी । बैठासी ॥
सब अक्कल गमासी । लोक हसासी ।
माया पासी । उरझेला ।
दादूका चेला । भर्म पछेला ।
सुंदर न्यारा । व्है खेला ॥ ५ ॥

तौ जंगम अंगा । पडके लंगा ।
फिरे कुढंगा । सब मंगा ॥
वे डसै अनंगा । वडे भुयंगा ।
दीप पतंगा । सरबंगा ॥
पुनि नांही चंगा । देखै रंगा ।
उनको संगा । छाडेला ॥

दादूका चेला । भर्म पछेला ।
सुंदर न्यारा । व्है खेला ॥ ६ ॥
तौ अर्हंत धर्मीं । भारी भर्मीं ।
केश उपर्मीं । बेशर्मीं ।
जी भोजन नर्मीं । खावै खुर्मीं ।
मन्मथ कर्मीं । अत उर्मीं ॥
अरु दृष्टि सु चर्मीं । अंतर गर्मीं ।
नांही नर्मीं । गंठेला ॥
दादूका चेला । भर्म पछेला ।
सुंदर न्यारा । व्है खेला ॥ ७ ॥
तौ शेख मुलाना । पढै कुराना ।
पच्छम जाना । उन ठाना ॥
जी भांग मुलाना । बग्ग निछाना ।
भये दिवाना । शैताना ॥
अरु जीव दुखाना । दर्द न आना ।
कह्या न माना । बरझेला ॥

दादूका चेला । भर्म पछेला ।
सुंदर न्यारा । व्है खेला ॥ ८ ॥
तौ पंडित आए । वेद बुलाए ।
षट् कर्माए । अपनाए ॥
जी संध्या गाए । पढि उरझाए ।
राना राए । ठगि आए ॥
अरु वडे कहाए । गर्व न जाए ।
राम न पाए । थापेला ॥
दादूका चेला । भर्म पछेला ।
सुंदर न्यारा । व्है खेला ॥ ९ ॥
तौ ये मत हेरे सबहन केरे ।
गहि गहि घेरे । बहुतेरे ॥
तब सतगुरु टेरे कानन मेरे ।
जाते फेरे । आघेरे ॥
औ शूर सवेरे । उदय कियेरे ।
सबै अँधेरे । नासेला ॥

दादूका चेला । भर्म पछेला ॥
सुंदर न्यारा । व्है खेला ॥ १० ॥

॥ छप्पय छंद ॥

सतगुरु मिले सुजान । श्रवण जिन शब्द सुनाया
शिरपर दीया हाथ । भर्म सब दूर उडाया ॥
उपज्या आतमज्ञान । ध्यान अभि अंतर लागा
किया ब्रह्मसूं नेह । जगतसूं तोड्या तागा ॥
तौ राम दत्त जब पाइया ।
छूटै वाद विवादतें ॥
अब सुंदरदास सुखी भया ।
गुरु दादू परसादतें ॥ ११ ॥

॥ इति भर्मविध्वंसाऽष्टक ॥ ४ ॥

अथ गुरुज्ञानोपदेशाऽष्टक ॥ ५ ॥

॥ दोहा ॥

दादू सतगुरु शीशपर । उरमें जिनको नाम ॥

सुंदर आए शरण तकि । तिन पायो निज धाम
वहे जात संसारमें । सतगुरु पकडे केश ॥
सुंदर काढे डूबते । दे अद्भुत उपदेश ॥ २ ॥

॥ हरिगीत छंद ॥

उपदेश श्रवण सुनाइ अद्भुत ।
हृदय ज्ञान प्रकाशियो ॥
चिरकालको अज्ञान पूरण ।
सकल भ्रम तम नाशियो ॥
आनंददायक पुनि सहायक ।
करत जन निःकाम है ॥
दादू दयाल प्रसिद्ध सतगुरु ।
ताहि मोर प्रणाम है ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

सुंदर सतगुरु हाथमें । करडी लई कमान ॥
मार्‍या खैंचिक शीश कर । वचन लगाये बान

॥ हरिगीत छंद ॥

जिन वचन बान लगाय उरमें ।
मृतक फेरि जिवाइया ॥
मुखद्वार होइ उचार करि निज ।
सार अमृत पाइया ॥
अत्यंत करि आनंदमें हम ।
रहत आठौ जाम है ॥
दादू दयाल प्रसिद्ध सतगुरु ।
ताहि मोर प्रणाम है ॥ ५ ॥

॥ दोहा ॥

सुंदर सतगुरु जगतमें । परउपकारी होइ ॥
नीच ऊंच सब उद्धरै । शरण जु आवै कोइ ॥ ६

॥ हरिगीत छंद ॥

जो आइ शरणहि होइ प्रापत ।
ताप तिन तनको हरै ॥

पुनि फेर बदले घाट उनको ।
जीवते ब्रह्महि करै ॥
कछु ऊच नीच न दृष्टि जिनके ।
सकलको विश्राम है ॥
दादू दयाल प्रसिद्ध सतगुरु ।
ताहि मोर प्रणाम है ॥ ७ ॥

॥ दोहा ॥

सुंदर सतगुरु सहजमें । किये सु पहिली पार ॥
और उपाय न तरि शकै । भवसागर संसार ॥८॥

॥ हरिगीत छंद ॥

संसार सागर महा दुस्तर ।
ताहि कहु अब क्यूं तरै ॥
जो कोटि साधन करै कोऊ ।
व्रथाही पचि पचि मरै ॥
जिन बिन परिश्रम पार कीये ।
प्रगट सुखके धाम है ॥

दादू दयाल प्रसिद्ध सतगुरु ।
ताहि मोर प्रणाम है ॥ ९ ॥

॥ दोहा ॥

सुंदर सतगुरु यूं कहै । याही निश्चय आन ॥
जो कछु सुनिये देखिये । सर्व स्वप्न करि जान १०

॥ हरिगीत छंद ॥

यह स्वप्न तुल्य दिखाइ दीयो ।
स्वर्ग नरक उभय कहै ॥
सुख दुःख हर्ष विषाद पुनि ।
मानापमानहि सब गहै ॥
जिन जाति कुल अरु वरण आश्रम ।
कहत मिथ्या नाम है ॥
दादू दयाल प्रसिद्ध सतगुरु ।
ताहि मोर प्रणाम है ॥ ११ ॥

॥ दोहा ॥

सुंदर सतगुरु यूं कहै । सत्य कछू नहि रंच ॥

मिथ्या माया बिस्तारी । जो कछु सकलप्रपंच

॥ हरिगीत छंद ॥

उपज्यो प्रपंच अनादिको यह ।
महामाया विस्तरी ॥
नानात्व व्है करि जगत भास्यो ।
बुद्धि सबहनकी हरी ॥
जिन भ्रम मिटाइ दिखाइ दीनो ।
सर्वव्यापक राम है ॥
दादू दयाल प्रसिद्ध सतगुरु ।
ताहि मोर प्रणाम है ॥ १३ ॥

॥ दोहा ॥

सुंदर सतगुरु यूं कहै । भ्रमतें भासै और ॥
सीपिमांहि रूपो दशै । सर्परज्जुकी ठौर ॥१४॥

॥ हरिगीत छंद ॥

रज्जूमँही ज्यूं सर्प भासै ।
सीपिमें रूपो यथा ॥

मृग तृषा जल मति देखही सो ।
विश्व मिथ्या है तथा ॥
जिन लह्यो ब्रह्म अखंड पद ।
अद्वैत सबही ठाम है ॥
दादू दयाल प्रसिद्ध सतगुरु ।
ताहि मोर प्रणाम है ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

सुंदर सतगुरु यूं कहैं । मुक्ति सहजही होइ ॥
या अष्टकतें भ्रम मिटै । नित्य पढै जो कोइ ॥१६

॥ हरिगीत छंद ॥

जो पढै नित्यहि ज्ञानअष्टक ।
मुक्त होइ सु सहजही ॥
संशय न कोउ रहै ताको ।
दास सुंदर यूं कही ॥
जिन न्है कृपालु अनेक तारे ।
सकल विधि उद्दाम है ॥

दादू दयाल प्रसिद्ध सतगुरु
ताहि मोर प्रणाम हैं ॥ १७ ॥

॥ दोहा ॥

सुंदर अष्टक श्रेष्ठ यह । तुम्ह जिन जानै आन ॥
अष्टक याहि कहैं सुनै ॥ ताकूं उपजै ज्ञान॥१८॥

॥ इति गुरुज्ञानोपदेशाऽष्टक ॥ ५ ॥

॥ अथ पीरमुरीदाऽष्टक ॥ ६ ॥

॥ दोहा ॥

सुंदर खोजत खोजते । पाया मुर्षद पीर ॥
कदम जाइ उसके गहे । देख्या अति गंभीर ॥१॥

॥ शंकर (चावर) छंद ॥

अवली कदम उस्तादके मैं । गहे दोऊ दस्त ॥
उन मिहिर मुझपर करी ऐसो । व्है गया मैं मस्त ।
जब सुखन करि मुझकूं कहा । तूं बंदगी कर खूब ।

इस राह सीधा जायगा तब। मिलैगा महबूब॥३
तब उठि अरज उस्तादसूं मैं। करी ऐसी रौंस ॥
तुम मिहिर मुझपर करौ मुर्शद। मैं तुम्हारी कौंस
वह बंदगी किस रौंस करिये ? मुझे देहु बताई।
वह राह सीधा कौन है ? जिस राह बंदा जाइ ५
तब कहै पीर मुरीदसूं तूं। हिरस राह गुजार ॥
यह बंदगी तब होयगी इस नफसकूं गहि मार॥६
भी दूइ दिलतें दूर करिये। और कछु नहि चाह
यह राह तेरा तुझी भीतर। चल्या तूंही जाह ॥७
तब फिर कहा उस्तादसुं यह। राह है बारीक॥
क्युं चलै बंदा बिगर देखे सबैसूं फारीक ?॥८॥
अब मिहिर करि उस राहकूं। दिखलाइ दीजे पीर
मुझ तलब है उस राहकी ज्यूं। पिवै प्यासा नीर ९
तब कहै पीर मुरीदसेंती। बंदगी करि येह ॥
यह राह पहुंचै चुस्तदम कर। नांउ उसका लेह॥
तूं नांउ उसका लेयगा तब। जायगा उस ठौर ॥

जहाँ अरस ऊपर आप बैठा । दूसरा नहि और
तब कहै तालब सुनौ मुर्षद । जहां बैठा आप ॥
वह होइ जैसा कहौ तैसा । जिसे माइ न बाप ॥
बैठा उठा कहिये तिसेहि । बजूद जिसका होइ
बेचून उसकूं कहत हैं अरु । बेनमुनें सोइ ॥१३॥
जब कहा तालब सुखन ऐसा । पीर पकरी मौन
को कहैगा न कहा न किनहुं । अब कहै कहुकौन!
तब देखि और मुरीदकी उन । पीर मूंदे नैन ॥
जो खूब तालब होयगा । तौ समुझि लेगा सैन ॥
हैरान है हैरान है हैरान । निकट न दूर ॥
भी सुखन क्यूं करि कहै तिसकूं।सकल है भरपूर॥
संवाद पीरमुरीदका यह । भेद पावै कोइ ॥
यूं कहै सुंदर सुनै सुंदर । वही सुंदर होइ ॥१७॥

॥ इति पीरमुरीदाऽष्टक ॥ ६ ॥

॥ अथ रामजी अष्टक ॥ ७ ॥

॥ मोहनी छंद ॥

आदि तुमही हुते । और नहि कोइ जी ।
अकह अति अगह गति । वरण नहि होइ जी ॥
रूप नहि रेष नहि । श्वेत नहि श्याम जी ।
तूं सदा एकरस । रामजी रामजी ॥ १ ॥
प्रथमही आपतें । मूल माया करी ।
बहुरि सो त्रिविध व्है । त्रिगुणमय विस्तरी ॥
पंचहू तत्त्वतें । रूप अरु नाम जी ।
तूं सदा एकरस । रामजी रामजी ॥ २ ॥
[1]विधि रजोगुण लिये । जगत उत्पन्न करै ।
विष्णु सतगुण लिये । पालना उर धरै ॥
रुद्र तमगुण लिये । संहरै धाम जी ।
तूं सदा एकरस । रामजी रामजी ॥ ३ ॥

१. ब्रह्मा.

इंद्र आज्ञा लिये । करत नहि और जी ।
मेघ वर्षा करै । सर्वही ठौर जी ॥
शूर शशि फिरत है । आठहू जाम जी ।
तूं सदा एकरस । रामजी रामजी ॥ ४ ॥
देव अरु दानवा । जक्ष रषि सर्व जी ।
साध अरु सिद्ध मुनि । होत निर्गर्व जी ॥
शेषहु सहस्रमुख । भजत निःकामजी ।
तूं सदा एकरस । रामजी रामजी ॥ ५ ॥
जलचरा थलचरा । नभचरा जंत जी ।
चारिहू खानिके । जीव अगनंत जी ॥
सर्व उपजै खपै । पुरुष अरु वामजी ॥
तूं सदा एकरस । रामजी रामजी ॥ ६ ॥
भ्रमत संसार कितहू नहीं दोर जी ।
तीनहू लोकमें । कालको सोर जी ॥
मनुष तन यह वडे । भागतें पाम जी ।
तूं सदा एकरस । रामजी रामजी ॥ ७ ॥

पूर्व दशहू दिशा । सर्वमें आप जी ।
स्तुती को करि शकै । पुण्य नहिं पाप जी ॥
दास सुंदर कहै । देहु विश्राम जी ।
तूं सदा एकरस । रामजी रामजी ॥ ८ ॥

॥ इति रामजी अष्टक ॥ ७ ॥

॥ अथ नामाऽष्टक ॥ ८ ॥

॥ मोहनी छंद ॥

आदि तूं अंत तूं । मध्य तूं व्योमवत् ।
वायु तूं तेज तूं । नीर तूं भूमिवत् ॥
पंचहू तत्त्वतें । देह तेंही करे ।
हे हरे हे हरे । हे हरे हे हरे ॥ १ ॥
चारिहू खानिके । जीव तैंही सृजे ।
योनिही योनिके द्वार आई व्रजे ॥

ते सवै दुःखमें । जे तुह्मै वीशरे ।
　ईश्वरे ईश्वरे । ईश्वरे ईश्वरे　　॥ २ ॥
जो कछू ऊपजै । आधि औ व्याधवे ।
　दूर तूंही करै । सर्वही बाधवे ॥
　वैद्य तूं औषधी । सिद्ध तूं साधवे ।
　माधवे माधवे । माधवे माधवे　　॥ ३ ॥
ब्रह्म तूं विष्णु तूं । रुद्र तूं वेष जी ।
　इंद्र तूं चंद्र तूं । शूर तूं शेष जी ॥
　धर्म तूं कर्म तूं । काल तूं देशवे ।
　केशवे केशवे । केशवे केशवे　　॥ ४ ॥
देवमें दैत्यमें । दक्षमें यक्षमें ।
　योगमें यज्ञमें । ध्यानमें लक्षमें ॥
　तीनहू लोकमें । एक तूंही भजै ।
　हे अजै हे अजै । हे अजै हे अजै ॥ ५ ॥
रावमें रंकमें । शाहमें चोरमें ।
　कीरमें काकमें । हंसमें मोरमें ॥

सिंहमें स्यालमें । मच्छमें कच्छये ।
अक्षये अक्षये । अक्षये अक्षये ॥ ६ ॥
बुद्धिमें चित्तमें । पिंडमें प्राणमें ।
श्रोत्रमें बैनमें । नैनमें घ्राणमें ॥
हाथमें पावमें । शीरमें सोहने ।
मोहने मोहने । मोहने मोहने ॥ ७ ॥
जन्मतें मृत्युतें । पुण्यतें पापतें ।
हर्षतें शोकतें । शीततें तापतें ॥
रागतें द्वेषतें । द्वंद्वतें है परे ।
सुंदरे सुंदरे । सुंदरे सुंदरे ॥ ८ ॥
॥ इति नामाऽष्टक ॥ ८ ॥

अथ आत्म-अचलाऽष्टक ॥ ९ ॥

॥ कुंडलिया छंद ॥

पानी चडस सदा चलै । चलै लाव अरु बैल॥

खांभी चलता देखिये । कूप चलै नहि गैल ॥
कूप चलै नहि गैल । कहैं सब कूवो चालै ॥
ज्यूं फिरतो नर कहै । फिरै आकाश पतालै ॥
सुंदर आतम अचल । देह यह चलै न छानी॥
कूप ठौरको ठौर । चलत हैं चडस रु पानी॥१॥
सृष्टि सवाई चलत है । चलै न कबहू राह ।
अपने अपने कामकूं । चलैं चोर अरु शाह ॥
चलैं चोर अरु शाह । कहैं सब मारग चालै ।
जल हीलत लगि पवन।कहैं प्रतिबिंबहि हालै ॥
सुंदर आतम अचल । देह आवै अरु जाई ।
राह ठौरको ठौर । चलत है सृष्टि सवाई ॥२॥
तेल जरै बाती जरै । दीपक जरै न कोइ ।
दीपक जरता सब कहै । भारी अचरज होइ ।
भारी अचरज होइ । जरै लक्करी अरु घासा ।
अग्नि जरत सब कहै । होइ घर बडा तमासा॥
सुंदर आतम अजर । जरै यह देह विजाती ।

दीपक जरै न कोइ। जरत हैं तेल रु वाती ॥३॥
वादल दौरे जात हैं। दौरत दीसै चंद।
देह संगतें आतमा। चलत कहै मतिमंद॥
चलत कहै मतिमंद। आतमा अचल सदाही।
हलत चलत यह देह। थापि ले आतम मांही॥
सुंदर चंचल बुद्धि। समुझि तातें नहि वौरे।
दौरत दीसै चंद। जात हैं वादल दौरे॥ ४॥
गंगा वहती कहत हैं गंगा वाही ठौर।
पानी वहि वहि जात हैं। कहैं औरकी और॥
कहैं औरकी और। परत है देखत खाडी।
गाडी उखली कहै। कहै चलती को गाडी॥
सुंदर आतम अचल। देह हल चल व्है भंगा।
पानी वहि वहि जात। वहै कबहू नहि गंगा॥५॥
कोलू चलता सब कहै। समुझतही घटमांहि।
पाट लाट मकरी चलै। बैल चलै पुनि जांहि॥
बैल चलै पुनि जांहि। चलत है हाकनहारो।

पैली गालत चलै । चलत सबठाठ विचारो ॥
सुंदर आतम अचल । देह चंचल है मोलू ।
समुझतही घटमांहि।कहत हैं चालत कोलू॥६॥
विन जाने नर कहत है।चल्यो जाय बाजार ।
लोक चले सब जात हैं । हाट न हिले लगार॥
हाट न हिले लगार । विचार कछू नहिं लहते ।
नदी तीरपं वृक्ष । कहैं पानीमें बहते ॥
सुंदर आतम अचल । देह यह चले दिवाने ।
चल्यो जाय बाजार । कहत हैं नर विन जाने ७
सब कोऊ ऐसे कहैं । काटत हैं हम काल ।
काल नाश सबको करै । वृद्ध तरुण अरु बाल॥
वृद्ध तरुण अरु बाल।साल सबहिनको भारी ।
देह आपकूं मानि । कहत हैं नर अरु नारी ॥
सुंदर आतम अमर । देह मर है घर खोऊ ।
काटत हैं हम काल । कहत ऐसेसब कोऊ ॥८॥

॥ इति आत्म-अचलाऽष्टक ॥ ९ ॥

अ। ब्रह्म नीदानं

॥ अथ ब्रह्माऽष्टक ॥ १० ॥

॥ भुजंग-प्रयात छंद ॥

अखंडं चिदानंद देवाधिदेवं ।
मुनींद्रादि रुद्रादि इंद्रादि सेवं ॥
मुनींद्रादि इंद्रादि चंद्रादि मित्रं ।
नमस्ते नमस्ते । नमस्ते पवित्रं ॥ १ ॥

धरात्वं जलाग्नी । मरुत्वं नभस्त्वं ।
घटस्त्वं पटत्वं । अणुत्वं महत्वं ॥
मनस्त्वं वचस्त्वं । दृशस्त्वं श्रुतस्त्वं ।
नमस्ते नमस्ते । नमस्ते समस्त्वं ॥ २ ॥

अडोलं अतोलं । अमोलं अमानं ।
अदेहं अछेहं । अनेहं निदानं ॥
अजापं अथापं । अपापं अतापं ।
नमस्ते नमस्ते । नमस्ते अमापं ॥ ३ ॥

न ग्रामं न धामं । न शीतं न उष्णं ।
न रक्तं न पीतं । न श्वेतं न कृष्णं ॥
न शेषं अशेषं । न रेषं न रूपं ।
नमस्ते नमस्ते । नमस्ते अनूपं ॥ ४ ॥
न छाया न माया । न देशो न कालो ।
न जाग्रं न स्वप्नं । न वृद्धो न बालो ॥
न ह्रस्वं न दीर्घं । न रम्यं अरम्यं ।
नमस्ते नमस्ते । नमस्ते अगम्यं ॥ ५ ॥
न बंधं न मुक्तं । न मौनं न वक्तं ।
न धूम्रं न तेजो । न यामी न नक्तं ॥
न युक्तं अयुक्तं । न रक्तं विरक्तं ।
नमस्ते नमस्ते । नमस्ते अशक्तं ॥ ६ ॥
न रुष्टं न मुष्टं । न इष्टं अनिष्टं ।
न ज्येष्ठं कनिष्ठं । न मिष्टं अमिष्टं ॥
न अग्रं न पृष्ठं । न तुल्यं न ग्रुष्टं ।
नमस्ते नमस्ते । नमस्ते अधिष्ठं ॥ ७ ॥

न वक्त्रं न घ्राणं । न कर्णं न अक्षं ।
न हस्तं न पादं । न शीशं न लक्षं ॥
कथं सुंदरं सुंदरं नाम ध्येयं ।
नमस्ते नमस्ते । नमस्ते प्रमेयं ॥ ८ ॥

इति ब्रह्माऽष्टक ॥ १० ॥

॥ अथ पंजाबीभाषा अष्टक ॥ ११ ॥

॥ चोपाई छंद ॥

बहु दिलदा मालिक दिलदी जाणैं ।
दिलमैं बैठा देखै ॥
दुण तिसनौं कोई क्यूं करि पावै ।
जिसदै रूप न रेखै ॥
वै गौस कुतब पैगंबर थकै ।
पीर अवलिया सेखै ॥

भी सुंदर कहि न सकै कोई ।
तिसनौ जिसदि साफि अलेखै ॥ १ ॥
वहू खोजनहारा तिसनैं पूछै ।
जे बाहिरनौ दौडै ॥
वे कोई जाइ गुफामौ बैठै ।
केई भाजत चौडै ॥
भी दिछे सौक हजारनि दिछे ।
दिछे दिछे लख्यु करोडै ॥
कहि सुंदर खोजु बतावै मजुदा ।
वै केइ जगमो थोडै ॥ २ ॥
भी उसदा खोजु करैं बहुतेरे ।
खोजु तिणादै बोलै ॥
वहु भुलै नौ भुल्ला समुझावै ।
सोभी भुल्ला डोलै ॥
वै जिथैं किथैं फिरैं विचारा ।
फिरि फिरि छिल्लकुं छोलै ॥

कहि सुंदर अपना बंधनुं कापै ।
सोई बंधनुं खोलै ॥ ३ ॥
भी खोजे जती तपी संन्यासी ।
सलोदि छे बड रोगी ॥
बहु उशदा खोजु न पाया किही ।
दिछे रुषि मुनि योगी ॥
वे बहुतै फिरैं उदासी जगमैं ।
बहुते फिरैं वियोगी ॥
कहि सुंदर केई विरले दिठे ।
अमृत रसदे भोगी ॥ ४ ॥
बहु खोजी तिन खोजु न निकलै ।
खोजु न हथ्थौ आवै ॥
पंखिदा खोजु मीनदा मारगु ।
तिसनौं क्यूं करि पावै ॥
है अति बारीकु खोजु न दरसै ।
नदरि कियौं ठहरावै ॥

कहि सुंदर बहुत होई जब नन्हां ।
नन्हें नों दरसावै ॥ ५ ॥
भी खोजत खोजत सभु जगु हट्या ।
खोज किथैं नहि पाया ॥
तुं जिसनौ खोजै खोज तूझिमैं ।
सतगुरु खोज बताया ॥
तैं अपुना आपु सही जब कीता ।
खोज इथांही आया ॥
जब सुंदर जागि पया सुपनैं थौं ।
सभु संदेह गमाया ॥ ६ ॥
भी जिसदा आदि अंतु नहिं आवै ।
मध्यहु तिसदा नाहीं ॥
बहु बाहिर भितरु सर्व निरंतरु ।
अगम अगोचर मांही ॥
वह जागि न सोवै खाई न भुख्या ।
जिसदै धूप्पु न छांहीं ॥

कहि सुंदर आपै आप अखंडित ।
शब्द न पहुंचै जाहिं ॥ ७ ॥
वै ब्रह्मा विष्णु महेस प्रलैमों ।
जिसदि खिसै न रूहीं ॥
भी तिसदा कोई पारु न पावै ।
सेसु सहस्रु फणु सूंहीं ॥
भी यहु नाहिं यहु नहि यहु नहि होवै ।
इसदे परै स तूही ॥
वह अवशेष रहै जो सुंदर ।
सो तूंही सो हूंही ॥ ८ ॥
॥ इति पंजाबीभाषा अष्टक ॥ ११ ॥

॥ अथ ज्ञान झूलनाऽष्टक ॥ १२ ॥

उस्तादके कदम सिर धरौं ।
अब झूलना खूब बखानता हूं ॥

अरवाहमैं आप विराजता है ।
वह जानका जान है जानता हूं ॥
उसहीके झुलायें डोलता हूं ।
दिल खोलता बोलता मानता हूं ।
उसहीके दिखाये देखता हूं ।
अरु सुंदर यौं पहिचानता हूं ॥ १ ॥
कोइ नेरै कहै कोई दूरै कहै ।
वह आपुहीं नेरे न दूर है रे ॥
दिल भीतरि बाहर एकसा है ।
असमान ज्यूं वो भरपूर है रे ॥
अनुभौ बिना नहि जानि सकै ।
निरसंध निरंतर नूर है रे ॥
उपमा उसकी अब कौन कहै ।
नहि सुंदर चंदर सूर है रे ॥ २ ॥
कोइ वार कहै कोइ पार कहै ॥
उसका कहूं वार न पार है रे ॥

कोइ मूल कहै कोइ डाल कहै ।
उसके कहूं मूल न डाल है रे ॥
कोइ सून्य कहै कोई थूल कहै ।
वह सून्य हू थूलतैं न्यार है रे ॥
कोइ एक कहै कोइ दोइ कहै ।
नहिं सुंदर द्वंद्व लगार है रे ॥ ३ ॥
कोइ योग कहै कोइ याग कहै ।
कोइ त्याग बैराग बतावता है ॥
कोइ नाम रटै कोई ध्यान जटै ।
कोइ खोजतही थकी जावत है ॥
कोइ औरही और उपाव करै ।
कोइ ज्ञानगिरा करि गावता है ॥
वह सुंदर सुंदर सुंदर है ॥
कोइ सुंदर होई सु पावता है ॥ ४ ॥
नहिं बैठताहै नहिं ऊठताहै ।
नहिं आवनेका नहिं जावनेका ॥

नहिं बोलता है न अबोलता है ॥
नहिं देखता है न दिखावनैका ॥
नहिं सूंघता है न असूंघता है ।
नहिं सूनता है न सुनावनैका ॥
नहिं सोवता है नहिं जागता है ।
नहिं सुंदर सखुन पावनैका ॥ ५ ॥
कहु कौन कहै कहु कौन सुनै ।
वह कहेन सुननतैं भिन्न है रे ॥
कहुं ठौर नहिं कहुं ठाम नहिं ।
कहुं गांव नहिं तिन किन्न है रे ॥
तहां शीत नहिं तहां घाम नहिं ।
तहां धाम न राति न दिन्न है रे ॥
तहां रूप नहिं तहां रेष नहिं ।
तहां सुंदर कछु न चिन्ह है रे ॥ ६ ॥
नहिं रोम है रे नहिं नैन हे रे ।
नहिं मुख है रे नहिं वैन है रे ॥

नहिं ऐन है रे नहिं गैन है रे।
नहिं सैन है रे न असैन है रे॥
नहिं पेट है रे नहिं पीठ है रे।
नहिं कड़ुवा है नहिं मीठ है रे॥
नहिं दुस्मन है नहिं मित्र है रे।
नहिं सुंदर दीठ अदीठ है रे ॥ ७ ॥
नहिं सीस है रे नहिं पाव है रे।
नहिं रंक है रे नहिं राव है रे॥
नहिं खावनै पीवनै चाव है रे।
नहिं हार नहिं जीत दाव है रे॥
नहिं नीर है रे नहिं नाव है रे।
नहिं खाक है रे नहि वाय है रे॥
नहिं मोति है रे नहिं आव है रे।
नहिं सुंदर भाव अभाव है रे ॥ ८ ॥
॥ इति श्री ज्ञानझूलनाऽष्टक ॥ १२ ॥

॥ अथ अजबख्याल अष्टक ॥ १३ ॥

॥ दोहा छंद ॥

सिजदा सिरजनहारकों । मुरसीदकों ताजीम ॥
सुंदर तालिब करत है । बंदोंकों तसलीम ॥१॥
सुंदर इस औजूदमैं । अजब चीज है बाद ॥
तब पावै इस भेदकों । खूब मिलै उस्ताद ॥२॥

॥ गीतक छंद ॥

उस्ताद सीरपर चुस्त दम ।
करम कर इश्क अल्लाह लाइये ॥
गुजरान इसकी बंदीसैं ।
इश्क बिन कां पाईये ॥
यह दिल फकीरी दस्तगीरी ।
दस्त गुंज सिना लहै ॥
यौं कहत सुंदर कब्ज दूंदूर ।
अजब ऐसा ख्याल है ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

सुंदर रत्ता एकसौं । दिलमौं दूजा नेश ॥
इश्क महबति बंदगी । सो कहिये दुरबेश ॥४॥

॥ गीतक छंद ॥

दुरवेश दरकी खबर जानै । दूर दिलकी काफिरि
दरदबंद खिरा दूरूनैं । उसी बिच मुसाफिरि ॥
है बेतमा इस मर्दुमीसैं । पाक दिलदर हाल है ।
यौं कहत सुंदर कब्ज दूर । अजब ऐसा ख्याल है

॥ दोहा ॥

सुंदर सीने बीच है । बंदेका चौगान ॥
पहुंचावैं उस हालकौं । इहै गूइ मैदान ॥ ६ ॥

॥ गीतक छंद ॥

कम दस्त इस मैदानमैं । चौगान खेलै खूब है ।
असवार ऐसा तुरी वैसा । प्यार उस महबूब है ॥
इम गूइको लै जायके । पहुंचाइ दे उस हाल है ।
यौं कहत सुंदर कब्ज दूंदूर । अजब ऐसा ख्याल है

॥ दोहा छंद ॥

सुंदर उसका नांव ले । एक उसीकी चाह ॥
रब्बु रहीम करीम वह । कहि येहही अल्लाह ॥८॥

॥ त्रिभंगी छंद ॥

अल्लाह खुदाइ करिम कादिर ।
पाक परवरदिगार है ॥
सुबहान तूं सत्तार साहिब ।
साफ सिरजनहार है ॥
मुश्ताक तेरे नांव ऊपर ।
खूब खूबां लाल है ॥
यौं कहत सुंदर कब्ज दूंद्दर ।
अजब ऐसा ख्याल है ॥ ९ ॥

॥ दोहा छंद ॥

सुंदर इस औजूदमौं । इश्क लगाई झूक ॥
आशिक ठंडा होइ तब । आइ मिलै माशूक ॥

॥ त्रिभंगी छंद ॥

माशूक मौला हकताला ।
तूं जिमी असमानमौं ॥
है आब अरु इस वाद कशांनें ।
खबरदार जिहांनमौं ॥
मालिक मुल्क मालूप जिसकौं ।
दुरस दिल हरसाल है ॥
यौं कहत सुंदर कब्ज दूंदूर ।
अजब ऐसा ख्याल है ॥ ११ ॥

॥ दोहा छंद ॥

सुंदर जो गाफिल हुवा । तो वह सांई दूरि ।
जो बंदा हाजर हुवा । तौ हाजर उ हजूरि ॥ १२ ॥

॥ गीतक छंद ॥

हाजरां हजुर गुसईहां । गाफिलौंकौं दूर है ।
निरसंध इकरस आप वोहि । तालिबां भरपूर है ॥

बारीकसौं बारीक कहिये बडौं बडा ओ
विसाल है ।
यौं कहत सुंदर कब्ज दूंद्र । अजब ऐसा ख्याल है

॥ दोहा छंद ॥

सुंदर सांई हक्क है । जहां तहां भरपूर ॥
एक उसीके नूरसौं । दीसै सारे नूर ॥ १४ ॥

॥ गीतक छंद ॥

उस नूरतैं सब नूर दीसैं । तेजतैं सब तेज हैं ।
उस जोतिसौं सब जोति चमकै। हैजसौं सब हैज हैं
अफताब अरु महताब तारे।हुकम उसकै चाल हैं
यौं कहत सुंदर कब्ज दूंद्र।अजब ऐसा ख्याल है

॥ दोहा छंद ॥

सुंदर आलिम इलम सब । खूब पढ्या आखून।
परि उसकौं क्यूं कहि सकै। जो कहिये बेचून १६

॥ गीतक छंद ॥

बेचून उसकौं कहत बुजर ।
कबी निमूरत उसै कहैं ॥
अरु औलिया वै अंबिया भी ।
गौस कुतब खडे रहै ॥
को कहि सकै न कह्या न किनहूं ।
सुखन परै निराल है ॥
यौं कहत सुंदर कञ्ज दूंदर ।
अजब ऐसा ख्याल है ॥ १७ ॥

॥ दोहा छंद ॥

ख्याल अजब उस एकका । सुंदर कह्या न जाइ
सखुन तहां पहुंचै नहीं। थक्या उरैंहि आइ ॥ १८

॥ इतिश्री अजबख्याल अष्टक संपूर्ण ॥ १३ ॥

|| श्री परमात्मने नमः ||

|| अथ ग्रंथसर्वांगयोग लिख्यते ||

—∞—

|| दोहा छंद ||

बंदत हौं गुरुदेवके । नित चरणांबुज दोइ ।
आतमज्ञान प्रगट भयो।संसय रह्यो न कोइ ॥१॥
भक्तियोग हठयोग पुनि।सांख्य सुयोग विचार
भिन्न भिन्नकरि कहतहौं । तिनहुंको विस्तार ॥२॥
सनकादिक नारदमुनि।शुक अरु ध्रुव प्रहलाद ।
भक्तियोग सो इन कियो।सद्गुरकै जु प्रसाद ॥३
आदिनाथ मछेंद्र अरु । गोरख चरपट मीन ।
काणेरी चौरंगि पुनि। हठ सु योग इन कीन ॥४
ऋषभदेव अरु कपिलमुनि । दत्तात्रेय वशीष्ट ।
अष्टावक्र रु जडभरत । इनकै सांख्य सुदृष्ट॥५॥
महापुरुष जे इन मतै । तिनकी मैं बलि जांउ ॥

मारग आये दशदिशा । पहुंचे एकहि गांउ ॥६
भक्तियोग है चारिविधि । चहूंविध हठहु जानि
चतुर्भांति आचार्यनि । सांख्यसु कह्यो बखांनि॥
प्रथम भक्ति अरु मंत्र लय। चरचा सहित सुनाइ।
भिन्न भिन्न परकार करि । आगे कहिहौं न्याइ
दुतिये हठ अरु राज पुनि । लक्षसहित अष्टंग ।
यामैं कहिहों बहुत विधि। चारिहुके जु प्रसंग ९
तृतिय सांखि सुज्ञान मुनि । ब्रह्मयोग अद्वैत ॥
ये चार्यौ जो जानि यहि । मिटै सकल भवभीत ॥
इन विन और उपाय है। सो सब मिथ्या जानि॥
छह दरसन अरु छांनवै । पाखंड कहूं बखानि॥

॥ चोपा छंद ॥

केचित करहि यज्ञ विधिवेदा ।
वाजपेय गो अरु बहु भेदा ॥
केचित् तीरथ तीरथ धावैं ।
दहनावरव यहुमिदै आवैं ॥ १२ ॥

केचित शौचि अचारहि धरमां ।
संध्या तरपण अरु षटकरमा ॥
केचित वरण आश्रमा धारी ।
ब्रह्मचर्य पालहि ब्रह्मचारी ॥ १३ ॥
केचित गारहस्त बहु भांती ।
पुत्र कलत्र बंधे दिन राती ॥
केचित बानप्रस्थ व्रत लीनां ।
कामनिसहित गवन बन कीनां ॥ १४ ॥
केचित परमहंस संन्यासी ।
साखा सूत्र तजी बहु पासी ॥
केचित नित्य जु करहि सनाना ।
सांझ काल प्रातः मध्याना ॥ १५ ॥
केचित नियम व्रतहि बहु धारैं ।
चांद्रायण उपवास बिचारैं ॥
केचित करैं देवकी पूजा ।
पाती पुष्प तोरै हैं दूजा ॥ १६ ॥

केचित माला तिलक बनावैं ।
विष्णुउपासी भक्त कहावैं ॥
केचित शिव शिव जपैं अपारा ।
गरै लिंग अरु लावहिं छारा ॥ १७ ॥
केचित करम स्थापहि जैनीं ।
केश लुंचाइ करहिं अति फैनी ॥
केचित मुद्रा पहरैं काना ।
कापालिक ब्रह्मत जाना ॥ १८ ॥
केचित नास्तिक बाद प्रचंडा ।
ते तौ करहिं बहुत पाखंडा ॥
केचित देवीशक्ति मनावैं ।
जीव हनन करि तांहिं चढावैं । ॥ १९ ॥
केचित बहुविधि होम कराहीं ।
तिल जव घृत अगनि मुख माहीं ॥
केचित यजन करहिं चल देवा ।
धूप दीप करि ताकी सेवा ॥ २० ॥

केचित मलिनमंत्र आराधैं ॥
वशीकरण उच्चाटन साधैं ॥
केचित मुये मसाण जगावैं ।
थंभन मोहन अधिक चलावैं ॥ २१ ॥
केचित वनिता करषण करहिं ।
भूषनि मोहि धूर्त धन हरहीं ॥
केचित करहिं कलंक पसारा ।
धात रसायन मारहिं पारा ॥ २२ ॥
केचित गुटक सिद्धि कमावै ।
बनस्पतीके पात चरावै ॥
केचित खड्ग अगनि जल बांधै ।
शिला उठाइ धरहिं पुनि कांधै ॥ २३ ॥
केचित करहिं बिबिध बैढंगा ।
बूटि जरि ठंठोरहिं अंगा ॥
केचित जोतिष गण तिथि वारा ।
घडी मुहूरत गृह व्योहारा ॥ २४ ॥

केचित तुला रत्न भू दानां ।
अन्न वसन पुस्तक विधि नाना ॥
केचित कहैं संस्कृत वानी ।
कउनहि श्लोक सुनावहिं जानी ॥ २५ ॥
केचित तर्कशास्त्रके पाठी ।
कौशल विद्या पकराहिं काठि ॥
केचित वाद विविध मत जानै ।
पठि व्याकरण चातुरी ठानै ॥ २६ ॥
केचित कविता कवित्त सुनावैं ।
कुंडलिया अरु अरिल बनावैं ॥
केचित छंद सवईया जोरै ।
जहां तहांके अक्षर चारै ॥ २७ ॥
केचित बीणा वेणु बजीता ।
ताल मृदंग सहित संगीता ॥
केचित नटकी कला दिखावै ।
हस्त बिनोद मधुर सुर गावै ॥ २८ ॥

केचित करहि कष्ट तन भारी ।
भोजन पंचग्रास आहारी ॥
केचित अन्न हस्तिमुख खाही ।
घुटरिनि परहिं अकलि कछु नाहिं ॥२९॥
केचित कर धरि भिक्षा पावैं ।
हाथ पूछि जंगलकौं धावैं ॥
केचित घर घर मांगहि टूका ।
बासी कूसी रूखा सूका ॥ ३० ॥
केचित अपरस पाक बनावैं ।
मुख मूंदि नरहिं दिखरावैं ॥
केचित जिमत कूटहिं थारी ।
करि करि ग्रास देइ कर नारी ॥ ३१ ॥
केचित धोवण धावण पीवै ।
रहै मलीन कहौ क्यौं जीवै ॥
केचित मता अघोरी लीया ।
अंगीकृत दोऊका कीया ॥ ३२ ॥

केचित अभक्ष भक्ष न संकाही ।
मदिरापान मांस पुनि खाहि ॥
केचित बपुरे दूधाधारी ।
खांज खोपरा द्राख छुहारी ॥ ३३ ॥
केचित कंदमूल खनि खाही ।
एका एक रहै बनमांहि ॥
केचित काष्टा आदिक पहरै ।
जपहि जापे पैठि जल गहरै ॥ ३४ ॥
केचित रक्त पीत पट कीने ।
पुनि वस्तर वोढहि अति झीने ॥
केचित दीसै रंगा चंगा ।
पाट पटंबर वोढहि अंगा ॥ ३५ ॥
केचित रंगि काथमहिं कपरा ।
करि प्रपंच बैठै अति लपरा ॥
केचित टाट पहरि दिखरावै ।
बहुत भांतिकरि लोक रिझावै ॥ ३६ ॥

केचित चिरकट बीनहि पंथा ।
निरगुण रूप दिखावै कंथा ॥
केचित मृगछाली बाघंबर ।
करते फिरहि बहुत आडंबर ॥ ३७ ॥
केचित वोडहि वलक्कल चीरा ।
शीत घाम कछु ववे न नीरा ॥
केचित नग्न उघारी देहा ।
होहि दिगंबर लावहिं खेहा ॥ ३८ ॥
केचित जटा जूट नख कीने ।
नानारूप जांइ नांहिं चीन्हे ॥
केचित करहि अग्यान कसोटी ।
पंचअगनि वारहि मति छोटी ॥ ३९ ॥
केचित मेघाडंबर वैठै ।
शीत काल जलशाई पैठै ॥
केचित धूम पान करि भूलै ।
औंधे होई वृक्षसौं झूलै ॥ ४० ॥

केचित मरहिं खड्गकी धारा ।
नृपति होनकै काज गंवारा ॥
केचित मगर मोज तन करहीं ।
झंपापाति देह पर हरहीं ॥ ४१ ॥
केचित जाइ हिमालय सीझै ॥
मनके मूढ तहां अति रीझै ॥
केचित गरा सार तन त्यागै ।
यातैं कछु पाई है आगै ॥ ४२ ॥
केचित कर पर्वतहि निवासा ।
पुनि सो करहि गुफामैं वासा ॥
केचित एक न ठौर रहाही ।
आज इहां काल्हि उहां जाही ॥ ४३ ॥
केचित तृणकी सेज बनावै ।
केचित लय कंकरहि बिछावै ॥
केचित ब्रतहि गहै अति गाढे ।
द्वादशवर्ष रहै पग ठाढे ॥ ४४ ॥

केचित रहैं जाइ मसाना ॥
हम अवधूत करहीं अभिमाना ॥
केचित रूख वृच्छ तर बासा ।
हम काहू की करहि न आशा ॥ ४५ ॥
केचित मौनि गहे नहिं बोलै ।
सैनहिसैं अंतरगति खोलै ॥
केचित चंदन खोरि वनावै ।
पग पावरी नैन मटकावैं ॥ ४६ ॥
केचित मेलहि मूढ ठगौरी ।
सब लै जांहि देखतें त्यौंरी ॥
केचित सिंदुर लगावहि अंगा ।
बालक चलै लागि करि संगा ॥ ४७ ॥
केचित मूठि चलावै काहू ।
नारसिंह भैरव तुम जाहू ॥
केचित आक धतूरा खाहीं ।
पुनि अंगार मेलहि मुख मांहीं ॥ ४८ ॥

केचित आफु खाय सतभंगी ।
निपट मूढमति आहि तरंगी ॥
ऐसे भ्रमत कहांलग कहिये ।
समझि समझि गुरके पग गहिये ॥ ४९ ॥

॥ दोहा छंद ॥

बहुतभांति मत देखिकै । सुंदर किया विचार ।
सद्गुरुके जु प्रसादतैं । भ्रमे नहीं सु लगार ॥५०

॥इति श्री सुंदरदासविरचितायां सर्वांगयोगप्रदीपिकायां प्रपंचप्रहारनाम प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

॥ चौपाई छंद ॥

भक्तियोग अब सुनहु सयाना ।
बुद्धिप्रवीन जु करौं बखाना ॥
भक्ति करनका यह आरंभा ।
महल उठै जो थिर व्है थंभा ॥ १ ॥

प्रथमहिं पकरै दृढ वैरागा ॥
ग्रह त्रिष आस करै सब त्यागा ॥
जितेंद्रिय अरु रिदै उदासी
अथवा गृह अथवा बनवासी ॥ २ ॥
माया मोह करै नहिं काहू।
रहै सबनसौं बेपरवाहू ॥
कनक कामिनी छांडे संगा।
आशा तृष्णा करै न अंगा ॥ ३ ॥
शील संतोष क्षमा उर धारै ।
धीरज सहत दया प्रतपारै ॥
दीन गरीबी राखै पासा ।
देखै निर्पख भया तमासा ॥ ४ ॥
मान महातम कछू न चाहै ।
एकै दसा सदा निरबाहै ।
राव रंककी संक न आनै ।
कीरी कुंजर सम करि जानै ॥ ५ ॥

आत्मदृष्टि सकल संसारा ।
संतनकौं राखै अधिकारा ॥
वैरभाव काहू नहिं करई ।
सतगुरु शब्द हृदैमैं धरई ॥ ६ ॥
सार ग्रहै कूकस सब नाखै ।
रमता राम इष्ट सिर राखै ॥
आन देवकी करै न सेवा ।
पूजे एक निरंजन देवा ॥ ७ ॥
मनमांहैं सबसौं जस थापै ।
बाहिरके बंधन सब कापै ॥
शून समुंदर अधिक अनूपा ।
ता महिं मूरति जोतिसरूपा ॥ ८ ॥
सहज सुखासन बैठै स्वामी ।
आगै सेवक करै गुलामी ॥
सज मन उदक सनान करावै ।
परमप्रीतिके पुष्प चढावै ॥ ९ ॥

चित चंदन लै चरचै अंगा ।
ध्यान धूप खेवै ता संगा ॥
भोजन भाव धरै ले आगे ।
मनसा वाचा कछू न मागे ॥ १० ॥
ज्ञानदीप आरती उतारै ।
घंटा अनहद शब्द विचारै ॥
तनमन सकल समरपन करई ।
दीन होइ पुनि पाइ न परई ॥ ११ ॥
मगन होइ नाचै अरु गावै ।
गदगद रोमांचित होइ आवै ॥
सेवकभाव कदी नहिं छारै ।
दिनदिन प्रीति अधिकहीं जोरै ॥ १२ ॥
ज्यूं पतिव्रता रहै पति पासा ।
ऐसे स्वामीके ढिग दासा ॥
काहू दशा भूलि जो जाई ।
तौ पतिव्रता जु कहिए नाई ॥ १३ ॥

नैकु न पाव आन दिस धारै ।
जो पति कहै सो आज्ञा पारै ॥
सदा अखंडित सेवा लावै ।
सोइ भक्ति अनन्य कहावै ॥ १४ ॥

॥ दोहा छंद ॥

यह सो भक्ति आलिंगिनी । विरला जानै भेव।
भाग होइ तौ पाईये । समझावै गुरुदेव ॥ १५ ॥

॥ चोपाई छंद ॥

मंत्रयोग अब सुनि यहु भाई ।
सद्गुरु बिना न जान्यो जाई ॥
जाके कछु रूप नहिं रेषा ।
कौन प्रकार जाइ सो देखा ॥ १६ ॥
सब संतन मिलि कियो विचारा ।
नांव बिना नहिं लगे पियारा ॥
कहू न दीसै ठौर न ठाऊं ।
ताको धरहिं कौन विधि नाऊं ॥ १७ ॥

अपनै सुखके कारनि दासा ।
काढ्यो सोध सु परमप्रकाशा ॥
ताको नाम राम तब राख्यो ।
पीछै त्रिविध भाति बहू भाख्यो ॥१८॥
सहस्र नामकी कौन चलावै ॥
नाम अनंत पार को पावै ॥
राममंत्र सबके सिरिमोरा ।
ताहि न कोई पूजन ओरा ॥ १९ ॥
राममंत्र सब महि तत सारा ।
और आहि जगके व्यौहारा ॥
राममंत्रसैं सिला तिरानी ।
पथ्थर कहां तिरै कहुं पांनी ॥ २० ॥
राममंत्रके ऐसे कामा ।
पत्रन उठ्यो लिख्यो जब नामा ॥
राममंत्र शिव गौरि सुनायो ।
सोई नारद ध्रुवहिं पठायो ॥ २१ ॥

पुनि महलाद ग्रह्यो सोई मंत्रा ।
सहि कसौटी काढै जंत्रा ॥
जरे न मरे खडगकी धारा ।
राममंत्रके ये उपकारा ॥ २२ ॥
सुगम उपाइ और सद रोजी ।
राममंत्रको जो ले खाजी ॥
प्रथम श्रवन सुनि गुरके पासा ।
पुनि सो रसना करै अभ्यासा ॥ २३ ॥
ता पीछे हिरदैमैं धारै ।
जिभ्या रहित मंत्र उच्चारै ॥
निसदिन मन तासौं रहै लागो ।
कबहु नेक न टूटै धागो ॥ २४ ॥
पुनि तहां प्रगट होई राकारा ।
आपुहि आप अखंडित धारा ॥
तनमन बिसरि जाइ तहँ सोई ।
रोमहि रोम राम धुनि होई ॥ २५ ॥

जैसें पानी लून मिलावै ।
ऐसें धुनि माहिं सुरति समावै ॥
राममंत्रका इह परकारा ।
करै आपुसें लगै न बारा ॥ २६ ॥

॥ दोहा छंद ॥

मंत्रयोग इहि विधि करौ । जे कोई चाहै राम ॥
सत्‌गुरुके जु प्रसादतैं । मन पावे विश्राम ॥ २७ ॥

॥ चौपाई छंद ॥

अब लययोग कहूं बहु भाति ।
लयबिन भय व्यापै दिन राति ॥
लयबिन जनम मरन नहीं छूटै ।
लयबिन काल आइकै कूटै ॥ २८ ॥
लय समान नहिं और उपाई ।
जो जन रहै रामलय लाई ॥
निसिवासर ऐस लय लागै ।
आवा गवन सकल भ्रम भागै ॥ २९ ॥

जैसे चातक करै पुकारा ।
पीव पीव करि वारंवारा ॥
ऐसी विधि लय लावै कोई ।
प्रथम स्थान समावै सोई ॥ ३० ॥
जैसे कूंजी अंड संभारै ।
पुनि सो कूरम दृष्टि न टारै ॥
जो कोऊ लय लावै ऐसी ।
ताकों जरा मृत्यु कहु कैसी ॥ ३१ ॥
जैसे बालक सरप कुरंगा ।
थकित सु होइ नादकै संगा ॥
ऐसी लय कोई जो लावै ।
योनि संकट बहुरि न आवै ॥ ३२ ॥
जैसे बरत वांस चडि नटनी ।
वारंवार करै तहां अटनी ॥
इतउत कहूं नेक नहिं हेरे ।
ऐसी लय जन हरी तन फेरे ॥ ३३ ॥

जैसे कुंभ लेइ पनिहारी ।
सिर धरि हसै देय कर तारी ॥
सुरति रहै गागरिके मंझा ।
यौं जन लय लावै दिन संझा ॥ ३४ ॥
जैसे गाइ जंगलकों धावै ।
पानी पीव घास चरि आवै ॥
चित रहै बछुराकै पासा ।
ऐसी लय लावे हरिदासा ॥ ३५ ॥
ज्यूं जननी गृह काज सराई ।
पुत्र पिंघूरै पौढत भाई ॥
उर अपनैतैं छिन न बिसारै ।
ऐसी लय जनकौं निसतारै ॥ ३६ ॥
जैसैं कीट भृंगकी त्रासा ।
पलटि जाइ यहु बडा तमासा ॥
ऐसी विधि लय लागै जाकी ।
बार बार बलिहारी ताकी ॥ ३७ ॥

सब प्रकार हरिसौं लय लावै ।
होइ विदेह परमपद पावै ॥
छिन छिन सदा करै रस पाना ।
लयतैं होई ब्रह्म समाना ॥ ३८ ॥

॥ दोहा छंद ॥

यह लययोग अनूप है । करै ब्रह्म समान ॥
भाग्य बिना नहिं पाइये । सत्गुरु कहै सुजान॥

॥ चौपाई छंद ॥

अब यह चरचा योग बखानौ ।
मति उनमान कछू जो जानौ ॥
निराकार है निंज स्वरूपं ।
अचल अभेद छांह नहीं धूपं ॥ ४० ॥
अव्यक्त पुरुष असंग अपारा ।
कैसैंकै करिये निरधारा ॥
आदिअंत कछु जाइ न जानी ।
मध चरित्र सू अकथ कहानी ॥ ४१ ॥

प्रथमही कीन्हो है ॐकारा ।
तातैं भयो सकल बिस्तारा ॥
जावत यह दीसै ब्रह्मांडा ।
सातौसायर अरु नवखंडा ॥ ४२ ॥
चंद सूर तारा दिन राती ।
तीनहुं लोक सुजे बहु भाति ॥
चारि खानि करि सृष्टि उपाइ ।
लक्षचुरासी जाति बनाई ॥ ४३ ॥
सृजे ब्रह्मादिक विष्णु महेसा ।
गण गंधर्व असुर सुर सेसा ॥
भूत पिशाच मनुष्य अपारा ।
पशु पंखी जल थल संसारा ॥ ४४ ॥
खान पान नानाविधि वानी ।
भिन्न सुभाव किये कछु जानी ॥
हलन चलन सब हिया चलाई ।
सहजें सब कछू होता जाई ॥ ४५ ॥

आप निरंजन परमप्रकासा ।
देखै न्यारा भया तमासा ॥
ताहीं कछू लियै नहीं छीपै ।
घट घट मांहि आपुही दीपै ॥ ४६ ॥
चरचा करौं कहां लग स्वामी ।
तुह्म सबहीके अंतरजामी ॥
सृष्टी कहत कछू अंत न आवै ।
तेरा पार कौंन धौं पावै ॥ ४७ ॥
तूंज अगाध अपार सुदेवा ।
निगम नेति जाने नहिं भेवा ॥
तेरा को करि सकै बखाना ।
थकित भये सब संत सुजाना ॥ ४८ ॥
तेरी गति तूंही पहिछानें ।
मेरी मती कैसी जु प्रमानै ॥
कीरी परवत कहा उचावै ।
उदधि थाह कैसैं करि आवै ॥ ४९ ॥

भक्ति मंत्र लय कीनी चरचा ।
समझै संत करै जो परचा ॥
एक किये त्रिहुं लोक बडाई ।
चार्‍यौंकी कछू कही न जाई ॥ ५० ॥

॥ दोहा छंद ॥

ये चारि अंग भक्तिके । नौधा इनहीं मांहिं ॥
सुंदर घट महिं कीजिये।बाहिर कीजै नाहिं॥५१॥

इति श्रीसुंदरदासविरचितायां सर्वांगयोगप्रदीपिकायां भक्तियोगो नाम द्वितीयोपदेशः ॥ २ ॥

॥ चौपाई छंद ॥

अबहि कहूं हठयोग सुनाई ।
आदिनाथकै वंदो पाई ॥
रवि शशि दोऊ एक मिलावै ॥
याहीतैं हठयोग कहावै ॥ १ ॥

प्रथम सुधर्म देश कहूं ताकै।
भलौ राज कछु दखल न जाकै॥
तहां चाइकै मठिका करई।
अल्पद्वार अरु छिद्र सु भरई ॥ २॥
लिपति करै चहुं वोर सुगंधा।
कूपसहित मठ इहि बिधि बंधा॥
तामहिं पैठि करै अभ्यासा।
सुर गनि हठ करि जीते सासा ॥ ३॥
श्रम न करै बकवाद न मांडै।
होइ असंगहीं चेष्टा छांडै॥
अति उत्साह मन माहैं करई।
निश्चय राखि धैर्य पुनि धरई ॥ ४॥
हठकरि आसन साधै भाई।
हठकरि निद्रा तजतौ जाई॥
हठही करि आहार घटावै।
खाटौ खारौ कछू न खावै ॥५॥

हठकरि तीक्ष्ण कटुक सु त्यागै ।
सिरसुं तिल मद मांस न मागै ॥
हरित साक कबहुं नहि खाई ।
हिंगु लहसुन सव देई बहाई ॥ ६ ॥
देह कष्ट पुनि करै न सोई ।
प्रातसनान उपास न कोई ॥
गौंहूं सालि सु करै अहारा ।
साठी चांवर अधिक पियारा ॥ ७ ॥
खीर खांड घृत मधु पुनि सानि ।
सूंठि पटोल निर्मल अतिपानी ॥
यहु भोजन सु करै हठयोगी ।
दिन दिन काया होई निरोगी ॥ ८ ॥
षट्कर्मन करि देह पछालै ।
नाडी शुद्ध होई मल टालै ॥
विधिकरि करै क्रिया है जेती ।
धोती बस्ति अरू पुनि नेती ॥ ९ ॥

त्राटक निरखै नौली फेरै ॥
कपाल भाथी नीकै हेरै ॥
ये षट्कर्म सिद्धिके दाता ।
इनतैं सूक्ष्म होइ सुगाता ॥ १० ॥
आंम पित्त कफ रहै न कोइ ।
नख सिषलौं वपु निर्मल होई ॥
सदाभ्यासतैं होई स्वछंदा ।
दिनदिन प्रगटै अति आनंदा ॥ ११ ॥

॥ दोहा छंद ॥

या हठयोग प्रभावतैं । प्रगट होई आनंद ॥
विचरै तीनहुं लोकमैं । जब लग सूरज चंद १२

॥ चौपाई छंद ॥

राजयोगका कठिन बिचारा ।
समके बिना न लागै प्यारा ॥
राजयाग सब ऊपर छाजै ॥
जो साधै सो अधिक विराजै ॥ १३ ॥

राजयोग कीना शिवराई ।
गौरी संग अनंग न जाई ॥
घृत नहिं ठरै अग्निके पासा ।
राजयोगका बडा तमासा ॥ १४ ॥
नाडीचक्र भेद जो पावै ।
तो चढि विंद आपूठौं आवै ॥
करनी कठिन आहि अतिभारी ।
वसि बर्त्तनी दोइ जौं नारी ॥ १५ ॥
दीसै संग रहै पुनि मुक्ता ।
अष्टप्रकार भोगको भुक्ता ॥
पाय पुनि कछु परसै नांहीं ।
जैसैं कमल रहै जल मांहीं ॥ १६ ॥
सदा प्रसन्न परमआनंदा ।
दिनदिन कला वधै ज्यौं चंदा ॥
ऐसी भाति रहै पुनि न्यारा ।
राजयोगका यह विचारा ॥ १७ ॥

राजयोगिके लक्षण ऐसै ।
महापुरुष बोले हैं तैसै ॥
जाकौं सुख अरु दुःख न होई ।
हर्ष शोक व्यापै नहिं कोई ॥ १८ ॥
जाकों क्षुधा तृषा न सतावै ।
निद्रा आलस कबहु न आवै ॥
शीत उष्ण जाकों नहीं भाई ।
हरख शोक व्यापै नहिं काई ॥ १९ ॥
अग्नि न जरै न बूडे पानी ।
राजयोगकी यह गति जानी ॥
अजर अमर अति वज्र शरीरा ।
खड्ग धार कछुं भिदै न तीरा ॥ २० ॥
जाको सब बैठैहीं सूझै ।
अरु सबहिनकी भाषा बूझै ॥
सकल सिद्ध आज्ञा महिं जाकै ।
नवनिधि सदा रहै ढिग ताकै ॥ २१ ॥

इच्छा परै तहां सो जाई ।
तीनलोकमैं अटक न काई ॥
स्वर्ग जाई देवन महिं बैठै ॥
नागलोक पातालमु पैठै ॥ २२ ॥
मृत्युलोक महिं आपु छिपावै ।
कै बहु प्रगट सु होई दिखावै ॥
हृदै प्रकास रहै दिन राती ।
देखै जोति तेलबिन बाती ॥ २३ ॥

॥ दोहा छंद ॥

राजयोगके चिन्ह ये । जानै बिरला कोइ ॥
वृथा संग मति कीज यहु । जो ऐसा नहिं होइ २४

॥ चौपाई छंद ॥

लक्षयोग है सुगम उपाई ।
सतगुर बिना न जान्यो जाई ॥
रोग न होइ आपु बहु बाधे ।
लक्षयोग जो कोई साधे ॥ २५ ॥

प्रथमहीं अधौ लक्षकों जानै ।
नासा अग्रदृष्टि थिर आनै ॥
यातैं मन पवना थिर होई ।
अधौ लक्ष जौ साधै कोई ॥ २६ ॥
अधर लक्ष करैं इहि भांती ।
दृष्टाकाश रहै दिनराती ॥
विविध प्रकार होइ उजियारा ।
गोप्य पदारथ दीसहीं सारा ॥ २७ ॥
मध्यलक्ष मन मध्य विचारै ।
वपुप्रमान कोइ रूप निहारै ॥
यातैं सात्विक उपजै आई ।
मध्यलक्ष जो साधै भाई ॥ २८ ॥
ब्रह्मलक्ष और पुनि जानहु ॥
पंचतत्त्वका लक्ष सु ठानहु ॥
अग्र नासिका अंगुल चारि ।
नीलवरण नभ देखि विचारी ॥ २९ ॥

नासा अग्र अंगुल छह देखै ।
धूम्रहिं वरण वायु तत्त्व पेखै ॥
अंगुल अष्ट नासिका आगै ।
रक्तवरण सु वन्हि तत्त्व जागै ॥ ३० ॥
नासा अग्र अंगुल दश तांई ।
स्वेतवरण जल देखि तहांई ॥
नासा अग्रसु अंगुल बारा ।
पीतबरण भू देखि अपारा ॥ ३१ ॥
बाह्यलक्ष और बहुतेरी ।
सो जानै जो पावै सेरी ॥
सतगुरु कृपा करै जो कबहीं ।
देई बताई छनकमैं सबहीं ॥ ३२ ॥
अंतर लक्ष जु सुनहु प्रकासा ॥
ब्रह्मनाडीका करहु अभ्यासा ॥
अष्टसिद्धि नवनिधी जहांलौं ।
टरहि न कबहूं जिवै तहांलौं ॥ ३३ ॥

बहुरि लक्षकरि मध्य लिलारा ।
जैसा एक बडा होइ तारा ॥
याकौं किये बहुत गुण होई ।
घट महिं रोग रहै नहिं कोई ॥ ३४ ॥
रक्तवरण भ्रमरा उन्माना ।
लक्ष करै त्रिकुटी सु स्थाना ॥
यातैं सबको लगै पियारा ।
बात न देखै बारंबारा ॥ ३५ ॥

॥ दोहा छंद ॥

लक्षयोग जो साधई । बैठत ऊठत कोइ ॥
सतगुरुके जु प्रसादतैं । अति सुख पावै सोइ ॥३६

॥ चौपाई छंद ॥

अब यहु कहूं जोग अष्टंगा ।
भिन्न भिन्न बहु भांति प्रसंगा ॥
प्रथमहिं यम अरु नियम बिचारै ।
पकरि टेक्क दस दसहिं प्रकारै ॥ ३७ ॥

बहुऱ्यौं करै जु आसन सबहीं ।
　निर्मल शरीर होइ पुनि तबहिं ॥
　तामहिं सारभूत व्है साधै ।
　सिद्धासन पद्मासन बांधै　　॥ ३८ ॥
प्राणायाम करै विधि ऐसी ।
　सतगुरु संधि बतावै तैसी ॥
　इडा नाडी करि पूरै वाई ।
　रंच करै पिंगला जाई　　॥ ३९ ॥
पूरि पिंगला इडा निकारै ।
　द्वादश वार मंत्र विधि धारै ॥
　द्विगुण त्रिगुण करि प्राणायाम ।
　उत्तम मध्यम कनिष्ठ नाम　　॥ ४० ॥
कुंभक अष्टभांतिके जानै ।
　मुद्रा पंचप्रकारसु ठानै ॥
　बंध तीन नीकी बिधि लावै ।
　और भेद सतगुरुतैं पावै　　॥ ४१ ॥

प्रत्याहार पकरि मन राखै ।
विषयस्वाद कबहू नहि चाखै ॥
जैसें कुरम संकुचै अंगा ।
ऐसैं इंद्री राखै संगा ॥ ४२ ॥
पंच धारणा तत्त्व प्रकासा ।
भू जल तेज वायु आकासा ॥
अक्षर सहित देवतनि ध्यावै ।
पंच पंच घटिका लप लावै ॥ ४३ ॥
ध्यान सु आही दोइ प्रकारा ।
एक सगुण इक निर्गुण सारा ॥
सगुण सु कहिये चक्रस्थानं ।
निर्गुण रूप आतमा ध्यानं ॥ ४४ ॥
प्रथम चक्र आधार कहावै ।
कंचन वरण चतुर दल ध्यावै ॥
द्वितीय चक्र है स्वाधिष्ठानं ।
माणिक्याकृति ध्याय सु जानं ॥ ४५ ॥

नाभिस्थान चक्र मणिपूरा ।
तरुण अर्क निभ ध्यावहु सूरा ॥
हृदयस्थान चक्र अनुहातू ।
विज्जुल प्रभा ध्याई संगातू ॥ ४६ ॥
कंठस्थान सु चक्र विशुद्धा ।
पीक प्रभा जु ध्याय प्रबुद्धा ॥
आज्ञाचक्र नीलनिभ ध्यावै ।
भ्रूमध्ये परमेश्वर पावै ॥ ४७ ॥
इति षट्चक्र ध्यान जो जानै ।
तबहिं जाइ निर्गुन पहिचानै ॥
गगनाकार ध्याय सब ठौरा ।
प्रभा मरीचिर जल नहि औरा ॥ ४८ ॥
अब समाधि ऐसी विधि करई ।
जैसे लौन नीरमहिं गरई ॥
मन इंद्रीकी वृत्ति समावै ।
ताको नाम समाधि कहावै ॥ ४९ ॥

जीवातम परमातम दोई ।
सम रस करि जब येकै होई ॥
बिसरै आप कछू नहीं जानै ।
ताको नाम समाधि बखानै ॥ ५० ॥
काल न खाइ शस्त्र नहि लागै ।
जंत्र मंत्र देवता भागै ॥
शीतल उष्ण कहूं नहीं होई ।
परमसमाधि कहावै सोई ॥ ५१ ॥

॥ दोहा छंद ॥

यह हठयोग सु चारिविधि । नीकै कह्यो सुनाइ ।
साधनहारे पुरषकी । सुंदर बलि बलि जाइ ५२

॥ इति श्री सुंदरदास विरचितायां सर्वांगयोगप्रदीपिकायां हठयोगो नाम तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥



॥ चोपाई छंद ॥

अब सु सांख्य योगह सुनि लेहु ।
पीछे हमकों दोस न देहू ॥
आतम अनआतमा विचारा ।
याहीतैं सु सांख्य निरधारा ॥ १ ॥

आत्म शुद्ध सु नित्यप्रकासा ।
अनआतमा देहका नाशा ॥
आत्म सूक्ष्म अति व्यापक मूला ।
अनआत्मा सो पंच स्थूला ॥ २ ॥

पृथ्वी तेज वायु अपु गगना ।
ये पंचौ आतम संलग्ना ॥
पंचनमैं मिलि और बिकारा ।
तिन यह किया प्रपंचपसारा ॥ ३ ॥

शब्द स्पर्श रूप रस गंधा ।
तनमात्रका पंच तन बंधा ॥

श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राणं ।
ज्ञान इंद्रिया किया बखाणं ॥ ४ ॥
वाक्यहिं पाणि पाद अरु पायू ।
उपस्थ सहित पंच समझायु ॥
कर्म सु इंद्रिय इनको नाम ।
तत्पर अपनै अपनै काम ॥ ५ ॥
मन अरु बुद्धि चित्त अहंकारा ।
चतुष्टय अंतहकरण बिचारा ॥
तिनके ये लक्षण भिन्न भिन्न ।
महापुरुष समझावै चिन्ह ॥ ६ ॥
संकल्पै अरु विकल्प करै ।
मनसौ लक्षण ऐसो धरै ॥
बुद्धि सुलक्षण बोध हिं जानि ।
नीकौ बुरौ लेइ पहिचानि ॥ ७ ॥
चैतन लक्षण चित्त अनूप ।
अहंकार अभिमान सरूप ॥

नवतत्त्वनको लिंग शरीर ।
पंद्रहतत्त्व स्थूल गंभीर ॥ ८ ॥
ये चौबीसतत्त्व बंधानं ।
भिन्न भिन्न करि कियो वखानं ॥
सबको प्रेरक कहिये जीव ।
सो क्षेत्रज्ञ निरंतर शीव ॥ ९ ॥
सकल वियापक अरु सरवंग ।
दीसै संगी आहि असंग ॥
साक्षीरूप सबनतैं न्यारा ।
ताहिं कछु नहीं लिपै विकारा ॥ १० ॥
एक आत्मा अनातम निरना ।
समझै ताको जरा न मरना ॥
सांख्य सु मत याहीं सौं कहिये ।
सतगुरु विना कहौ क्यौं लहिये ॥ ११ ॥

॥ दोहा छंद ॥

सांख्ययोग सो यह कह्यो । भिनि हि भिन्न प्रकार

आत्मा नित्य स्वरूप है। देह अनित्य बिचार १२

॥ चौपाई छंद ॥

ज्ञान योग अब ऐसै जानै ।
कारण अरु कारज पहिचानै ॥
कारण आत्म आहि अखंडा ।
कारज भयो सकल ब्रह्मंडा ॥ १३ ॥
ज्यूं अंकुरतें तरु विस्तारा ।
बहुत भांति करि निकसी डारा ॥
शाखा पत्र और फल फूला ।
यौं आतमा विश्वको मूला ॥ १४ ॥
जैसै नभमैं बादर होई ।
तामाहिं लीन भये पुनि सोई ॥
ऐसै आतम विश्व विचारा ।
महापुरुष कीनो निरधारा ॥ १५ ॥
जैसै उपजै वायु बघूरा ।
देखतको दीसहि पुनि भूरा ॥

आंटी छूटे पवन समांहिं ।
आत्म विश्व भिन्न यौं नांहिं ।
ज्यूं पावकतैं दीसत न्यारा ।
दीप मसाल जु विविध प्रकारा ॥
तांहो मांझ होइ सो लीना ।
यौं आतमा विश्व लै चीन्हा ॥ १७ ॥
जैसै उपजै जलके संगा ।
फैन बुदबुदा और तरंगा ॥
तांही मांझ लीन सो होई ।
यौं आत्मा वस्तु है सोई ॥ १८ ॥
ज्यूं पृथ्वीतैं भांजन भाई ।
विनसि गये ता मांज बिलाई ॥
यौं आत्मातैं विश्व प्रकासै ।
कहत सुनतकौं दूजा भासै ॥ १९ ॥
ज्यूं कंचनके भूखन नाना ।
भिन्न भिन्नकरि नाम बखाना ॥

गारें सर्व अेकही हूवा ।
यूं आत्मा विश्व नहिं जूवा ॥ २० ॥
जैसैं तंतुहिं पट लै वाना ।
ओतप्रोत सो तंतु समाना ॥
भेद भाव कछु भिन्न न होई ।
यौं आत्मा बिश्व नहिं दोई ॥ २१ ॥
जैसैं करी सूत्रकी माला ।
मनका सूत्र न होइ निराला ॥
यौं आत्मा बिश्व नहिं भेदा ।
कहत पुकारे प्रकट जु बेदा ॥ २२ ॥
ज्यूं प्रतिमा पाहनमैं दीसै ।
दूजी वसत न बिस्वावीसै ॥
यौं आत्मा विश्व नहिं न्यारा ।
ज्ञानयोगका यही बिचारा ॥ २३ ॥

॥ दोहा छंद ॥

ज्ञानयोग सो जानि है । जाको अनुभव होइ ॥

कहे सुनै कहा होतहै । जबलग भासत दोइ २४

॥ चौपाई छंद ॥

ब्रह्मयोग अब कहिये ऐसा ।
उपजै संशय रहै न कैसा ॥
ब्रह्मयोगका कठिन विचारा ।
अनुभव विना न पावै पारा ॥ २५ ॥
ब्रह्मयोग अति दुर्लभ कहिये ।
परिचय होइ तबहीं तौ लहिये ॥
ब्रह्मयोग पावै निहकामी ।
भ्रमत सु फिरै इंद्रियारामी ॥ २६ ॥
ब्रह्मयोग सोई भल पावै ।
पहलै सकल साधि करि आवै ॥
ब्रह्मयोग सब ऊपर सोई ।
ब्रह्मयोग बिन मुक्ति न होई ॥ २७ ॥
ब्रह्मयोग जो उपजै आई ।
तौ दूजा भ्रम जाइ बिलाई ॥

होइ अव्यापक कछू न व्यापै ।
ब्रह्मयोग तब उपजै आपै ॥ २८ ॥
सब संसार आपमैं देखै ।
पूरण आपु जगत महिं पेखै ॥
आपुहि कर्ता आपुहि हर्ता ।
आपुहि दाता आपुहि भर्ता ॥ २९ ॥
आपु ब्रह्म कछु भेद न आनै ।
"अहं ब्रह्म" ऐसैं करि जानै ॥
अहं परात्पर अहं अखंडा ।
व्यापक अहं सकल ब्रह्मंडा ॥ ३० ॥
अहं निरंजन अहं अपारा ।
अहं निरामय अरु निरकारा ॥
अहं निर्लेप अहं निजरूपं ।
निरगुण अहं अहं सु अनूपं ॥ ३१ ॥
अहं सुखरूप अहं सुखरासी ।
अहं सु अजर अमर अविनाशी ॥

अहं अनंतं अहं अद्वीता ।
अहं सु अज अव्यय रु अभीता ॥ ३२ ॥
अहं अभेद अछेद अलेखा ।
अहं अगाध सु अकल अदेखा ॥
अहं सदोदित सदा प्रकासा ।
साक्षी अहं सरब महि वासा ॥ ३३ ॥
अहं शुद्ध साक्षात सु न्यारा ।
कर्ता अहं सकल संसारा ॥
अहं सीव सूक्षम सब स्रष्टा ।
अहं जगन्नाथ अहं जगदीसा ॥
अहं गोविंद अहं गोपालं ।
अहं ज्ञानघन अहं निरालं ॥ ३४ ॥

॥ दोहा छंद ॥

अहं परम आनंदमय । अहं जोति निज सोइ ॥
ब्रह्मयोग ब्रह्महिं भया । दूजा रहा न कोइ ३५

॥ चौपाई छंद ॥

अब अद्वैत सुनहू जु प्रकासा ।
नाहं नात्वं ना यहु भाषा ॥
नहिं प्रपंच तहां नहीं पसारा ।
नहिं तहां सृष्टि न सिरजनहारा ॥३६॥

नहिं तहां प्रकृति पुरुष नहीं इच्छा ।
नहिं तहां काल कर्म नहीं बंछा ॥
नहिं तहां शून अशून न मूला ।
नहिं तहां सूक्षम नहीं सथूला ॥ ३७॥

नहिं तहां तत्त्व अतत्त्व बिभेदा ।
नहिं तहां बसत बिबस्तु न बेदा ॥
नहिं तहां बरण बिबरण बिनाना ।
नहिं तहां रूप अरूप सथाना ॥ ३८॥

नहिं तहां जापक व्यापक सेखा ।
नहिं तहां रूप नहीं तहां रेखा ॥

नहिं तहां जोति अजोति न कोई ।
नहिं तहां एक नहिं तहां दोई ॥ ३९ ॥
नहिं तहां आदि न मध्य न अंता ।
नहिं प्रतिपाल नहीं तहां हंता ॥
नहिं तहां शक्ति नहीं तहां शीवा ।
नहिं तहां जनम नहीं तहां जीवा ॥ ४० ॥
नहिं तहां लेख न लेखनहारा ।
नहिं तहां कर्म नहीं करनारा ॥
नहिं तहां स्वर्ग रु नरक निवासा ।
नहिं तहां त्रासक नहिं तहां त्रासा ॥४१॥
नहिं तहां धर्म अधर्म न करता ।
नहिं तहां पाप न पुन्य न धरता ॥
नहिं तहां पंडित मूरख कौना ।
नहिं तहां वाद विवाद न मौना ॥ ४२ ॥
नहिं तहां शास्त्र रु बेद पुराना ।
नहिं तहां होम न यज्ञ विधाना ॥

नहिं तहां संध्या सूत्र न साखा ।
नहिं तहां देव मनुष्य न भाखा ॥ ४३ ॥
नहिं तहां इष्ट उपासनहारा ।
नहिं तहां सगुण न निर्गुण सारा ॥
नहिं तहां सेवक सेव्य न सेवा ।
नहिं तहां प्रेम नहीं तिन लेवा ॥ ४४ ॥
नहिं तहां भाव नहीं तहां भक्ति ।
नहिं तहां मोक्ष नहिं तहां मुक्ति ॥
नहिं तहां जाप्य नहीं तहां जापि ।
नहिं तहां मंत्र नाहिं लय थापी ॥ ४५ ॥
नहिं तहां साधक सिद्धि समाधि ।
नहिं तहां जोग न युक्ताराधी ॥
नहिं तहां मुद्रा बंध न लागै ।
नहिं तहां कुंडलिनी नहिं जागै ॥ ४६ ॥
नहिं तहां चक्र न नाडि प्रचारा ।
नहिं तहां बेध न बेधनहारा ॥

नहिं तहां लिंग अलिंग न नाशा ।
नहिं तहां मन बुद्धि चित्त प्रकासा ॥४७॥
नहिं तहां सत रज तम गुन तीना ।
नहिं तहां इंद्रिय द्वार न कीना ॥
नहिं तहां जाग्रत स्वप्न न धरिया ।
नहिं तहां सुषुप्त नहिं तहां तुरिया ॥४८॥

॥ दोहा छंद ॥

ज्ञे ज्ञाता नहिं ज्ञान तहां॥ध्ये ध्याता नहीं ध्यान॥
कहनहार सुंदर नहीं । यह अद्वैत बखान ॥४९॥

॥इति श्री सुंदरदासविरचितायां सर्वांगयोगप्रदी-पिकायां सांख्ययोगो नाम चतुर्थोपदेशः संपूर्णः॥४॥



॥ अथ सुखसमाधिनामा ग्रंथःप्रारभ्यते ॥

॥ अथ सवाईया छंद ॥

नमस्कार गुरु देवही मेरो।
जिन यह कियौ ज्ञान प्रकाश ॥
घीसो घोटि रह्यो घट भीतरि।
सुखसौं सोवै सुंदरदास ॥ १ ॥
गइ गोपि व्है भक्ति आगली।
काढि प्रगट पुरातन खास ॥ घीसो ॥ २ ॥
तक्र त्यागि तत लियो काढिकै।
भोजन उहै अमृतको ग्रास ॥ घीसो ॥ ३ ॥
कण हरि नाम सार संग्रह करि।
और क्रिया को काटै घास ॥ घीसो ॥ ४ ॥
आतम तत्त्व विचार निरंतर।
कीयो सकलकर्मको नाश ॥ घीसो ॥ ५ ॥

ओर कछू उरमै नहिं आवै ।
भावै कोउ कहौ पचास ॥ ॥ घीसो ॥ ६ ॥
कौन करै जप तप तीरथ व्रत ।
कौन करै यम नियम उपास ॥ घीसो ॥७॥
इडा पिंगला सुखमन नाडी ।
कौ अब करै योग अभ्यास ॥ घीसो ॥८॥
कोउक दिन लौं आसन साधि ।
कोउक दिन लौं खैंचे स्वास ॥ घीसो ॥९॥
कोउक दिनसौं रजनी जागै ।
कोउक दिन लौं फिरे उदास ॥ घीसो ॥१०॥
नाना मते ऋषिनिके देखे ।
वर्णाश्रम आदिक संन्यास ॥ घीसो ॥ ११ ॥
अर्थ धर्म अरु काम जहां लौं ।
मोक्ष आदि सब छांडी आस ॥ घीसो ॥१२॥
को वकवाद करै काहुसौं ।
मिथ्या जान्यौं बचन बिलास ॥ घीसो ॥१३॥

कोउ निंदा करै बहुतविधि ।
कोऊ करै प्रसंशा हास ॥ घीसो ॥ १४ ॥
समझ परी संशे नहीं कोउ ।
सम करि जाने गृह बनवास ॥घीसो॥ १५ ॥
काहू संग मोह नहीं ममता ।
देखहि निर्पख भये तमास ॥ घीसो ॥ १६ ॥
कौन करे या तनकी चिंता ।
जो प्रारब्ध सु आवे पास ॥ घीसो ॥ १७ ॥
स्वर्ग नरक संशै नाहिं कोऊ ।
आवागवन न जमकी त्रास ॥ घीसा ॥ १८ ॥
कीयो श्रवन मनन पुनि कीयो ।
ता पीछै कीयो निदिध्यास॥ घीसा ॥१९॥
बार बार अब कासौं कहिये ।
हूओ हृदय कमल बिकास ॥ घीसो ॥२०॥
अंधकार मिट गयो सहजमैं ।
बाहिर भीतरि भयो उजास ॥ घीसो ॥२१॥

देह नित्य उपजिकरि विनसै ।
आत्मनित्य अजर अविनास ॥ घीसो ॥२२॥
जाकौ अनुभव होइ सु जानै ।
पायो परमानंद निवास ॥ घीसो ॥ २३ ॥
कस्तूरी कर्पूर छिपावै ।
कैसैं छानि रहे सुवास ॥ घीसो ॥ २४ ॥
जलतैं पाला पालातैं जल ।
आत्मा परमात्मा इकलास ॥ घीसो ॥२५॥
जैसैं नदी समुद्र समावै ।
द्वैतभाव तजि है जलरास ॥ घीसो ॥२६॥
पूरनब्रह्म अखंड अनावृत ।
यह निश्चय याही विश्वास ॥ घीसो ॥२७॥
रज्जुमैं सर्प सीपमैं रूपौ ।
मृगतृष्णा जल ज्यौं आभास ॥ घीसो ॥२८॥
देखैं सुनै सपर्शै बोलैं ।
सूंघै अनाशक्ति अनयास ॥ घीसो ॥२९॥

जगत क्रिया देखै ऊपरकी ।
आसय पाइ सकै नहिं तास ॥ धीसो ॥३०॥
सद्गुरु बहुत भांति समुझायो ।
भक्ति सहित यह ज्ञानउलास ॥
घीसो घोटि रह्यो घट भीतरि ।
सुखसौं सोवै सुंदरदास ॥३१॥

॥ इति श्री सुखसमाधिः संपूर्णः ॥

॥ ग्रंथ स्वप्नबोध ॥

॥ दोहा छंद ॥

स्वप्नेमें मेला भयो । स्वप्नेमांहि बिछोह ॥
सुदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहीं मोह निर्मोह ॥१॥
स्वप्नेमैं संग्रह कीयो । स्वप्नेहीमैं त्याग ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना कछु राग विराग॥२॥

स्वप्नेमांही पति भयो । स्वप्नैं कामी होइ ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । कामी पती न कोइ ॥३॥
स्वप्नेमैं पंडित भयो । स्वप्ने मूरख जान ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहीं ज्ञान अज्ञान ॥४॥
स्वप्नेमैं राजा कहैं । स्वप्नेहीमैं रंक ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहिं साथरौ प्रयंक ॥५॥
स्वप्नेमैं हत्या लगी । स्वप्ने न्हायौ गंग ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । पाप न पुन्य प्रसंग ॥६॥
स्वप्ने सूरातन कियो । स्वप्ने चाल्यो भागि ॥
दोन जु मिथ्या व्है गये । सुंदर देख्यो जागि ॥७॥
स्वप्ने गयो प्रदेशमैं । स्वप्ने आयो भौन ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । आयो गयो सु कौन ॥८॥
स्वप्ने खोई वस्तुकौं । पाई स्वप्नेमांहि ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । पाई खोई नाहिं ॥९॥
स्वप्नेमैं भूल्यो फिर्‍यो । स्वप्ने पाई बाट ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । आघट रह्यो न घाट ॥१०॥

स्वप्नै चौरासी भ्रम्यो । स्वप्ने यमकी मार ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहिं डूब्यो नहिं पार ११
स्वप्नेमैं मरिवो करै । स्वप्ने जन्मै आइ ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । को आवै को जाइ ॥१२॥
स्वप्नेमांहि स्वर्ग गयो । स्वप्नै नरकहिं दीन ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं। धर्म अधर्म न कीन ॥१३॥
स्वप्नेमैं दुर्बल भयो । स्वप्नेमांहि सुपुष्ट ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहीं रूप नहिं कुष्ट ॥१४॥
स्वप्नेमैं सुख पाइयो । स्वप्ने पायो दुःख ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना कछु सुख नहिं दुःख१५
स्वप्नेमैं योगी भयो । स्वप्नेमैं संन्यास ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना घर ना बनवास॥१६॥
स्वप्नेमैं लोका भयो । स्वप्नैमांहि मयेन ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना कछु लेन न देन १७
स्वप्नेमैं ब्राह्मन भयो । स्वप्नेमैं शूद्रत्व ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहिं तम रज कहिं सत्व१८

स्वप्नेमैं यम नियम व्रत। स्वप्ने तीरथ दान ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं। एक सत्य भगवान ॥१९॥
स्वप्ने दौड्यो द्वारिका। स्वप्ने जगन्नाथ ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं। ना को संग न साथ॥२०
स्वप्नेमैं मथुरा गयो। स्वप्नेमैं हरिद्वार ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं।नहिं बदरि केदार ॥२१॥
स्वप्नेमैं काशी मुवो। स्वप्नेमैं घरमांहिं ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं।मुक्ति रासीओ नांहिं ॥२२॥
स्वप्ने दुःकर तप कियो। स्वप्ने संशय ताप ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं। नांहिं आसीस न श्राप २३
स्वप्नेमैं निंदा भई। स्वप्नेमांहि प्रसंस ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं। नहीं कृष्ण नहि कंस॥२४॥
स्वप्नेमैं भारथ भयो। स्वप्ने यादव नाश ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं। मिथ्या वचन विलास २५
स्वप्न सकल संसार है। स्वप्ना तीनौ लोक॥

सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । तब सब जान्यो फोक २६

॥ इति श्रीं स्वप्नबोधः संपूर्णः ॥

॥ ग्रंथ वेद विचार ॥

॥ दोहा छंद ॥

परमात्महिं प्रणाम करि । गुरु संतनु सिर नाइ ॥
वेदविचारहिं कहत हौं।सुनहु सकल चित लाई १
वेद प्रगट ईश्वर वचन । तामहिं फेर न सार ॥
भेद लहै सद्गुरु मिलै । तब कछु करै विचार॥२
वेद बहुत विस्तार है । नानाविधिके शब्द ॥
पढतैं पार न पाईयें । जो बीतैं बहु अब्द ॥ ३॥
वेद वृक्षकरि वरनियो । पत्र पुष्प फल जाहि ॥
त्रिविध भांति सोभित सघन।ऐसै तरु यह आहि
एक वचन हैं पत्र सम । एक वचन हैं फूल ॥
एक वचन हैं फल सम।समझि देखि मति भूल ५

कर्म पत्र करि जानिये । मंत्र पुष्प पहिचानि ॥
अंत ज्ञान फलरूप है । कांड तीन यौं जानि ६
विषई देख्यो जगत सब । करत अनीति अधर्म॥
इंद्रिय लंपट लालची । तिनहि कहै विधि कर्म ॥७
निषिध छुडावण कारणे । भय उपजायो आइ ॥
मद्य मांस परत्रिय गवन । इनतैं नरकहि जाइ ८
जो सत्कर्मनि आचरै । तिनकों भाख्यो स्वर्ग ॥
नाना विधि सुख भोगवै । सो जानै अपवर्ग ॥९॥
ज्यूं बालकके रोग व्है । औषध कटुक न खात॥
मोदक वस्तु दिखाइकै । औषध प्यावै मात ॥१०
यौं सतकर्मनिकौं कहै । निषध छुडावण काज ॥
मूरिख जानै सत्यकरि । सुख स्वर्गपुर राज ॥११
ज्यूं पसु हरिहाई करहिं । खेत बिराने खाहि ॥
खूटे बांधे आनि सब । छुटि न कितहू जाहि १२
वर्णाश्रम बंधेज करि । अपने अपने धर्म ॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पुनि । सूद्र दृढाये कर्म॥१३

ब्रह्मचर्य ग्रहचर्य हू । वानप्रस्थ संन्यास ॥
अपने अपने धर्मतें । है स्वर्गपुर वास ॥ १४॥
जोग यज्ञ जप तप क्रिया । दान पुन्य निहगर्व॥
तीरथ व्रत अरु त्याग पुनि । यम नियमादिक सर्व
जो इन कर्मनिकौ करै । तजै काम आसक्ति ॥
सकल समर्पै ईश्वरहि। तबहि उपजै भक्ति १६
कर्म पत्र महिं नीकसै । भक्ति जु पुष्प सुवास॥
नवधा विधि निसदिन करै । छांडि कामना आस
पीछै बाधा कछु नहीं । प्रेम मगन जब होइ ॥
नवधाऊ तब थकि रहै । सुधि बुधि रहै न कोइ
तबही प्रगटे ज्ञान फल । समझै अपनौ रूप ॥
चिदानंद चैतन्य घन । व्यापक ब्रह्म अनूप १९
बेद वृक्ष यौं वरनियो । याहि अर्थ विचारि ॥
कर्म पत्र ताकै लगै । भक्ति पुष्प निरधारि २०
ज्ञान सुफल झटिति लग्यो । जाहि कहै बेदांत॥

महा बचन निश्चै धरै । सुंदर तब ह्वै शांत २१

॥ इति श्रीवेदविचारग्रंथः संपूर्णः ॥

॥ अथ ग्रंथ उक्त अनूप ॥

॥ दोहा छंद ॥

नमस्कार गुरु देवकों । बार बार कर जोरि ॥
सुंदर जिनि प्रभु शब्दसों।काटे बंधन कोरि ॥१॥
तिनकी आज्ञा पाइकै । भाख्यो ज्ञान अनूप ॥
अनुसमुझे भवजल वहै । समझे ह्वै चिद्रूप॥२॥
तमगुण रजगुण सत्त्वगुण। तिनको रचित शरीर
नित्यमुक्त यह आतमा । भ्रमतैं मानत सीर॥३॥
तीनि गुननिकी वृत्यमहिं । है थिर चंचल अंग ॥
ज्यूं प्रतिबिंबहि देखिये । हालत जलके संग॥४॥
तीन गुननिकी वृत्यमहिं । तिनमैं तैसो होइ ॥

जडसौ मिलि जडवत भयो । चेतन सत्ता खोइ ५
परधन परदारा गमन । चौरि हिंसा कृत्य ॥
निद्रा तंद्रा आलस । ये तमगुणकी वृत्य ॥६॥
तामस गुणकी वृत्यसैं । होइ तामसी आप ॥
कष्ट परै जब आइकै । मानै दुःख संताप ॥७॥
राजसगुणकी वृत्य ये । कर्म करै बहु भाति ॥
सुख चाहै अरु उद्यमी । जंक न परै दिनराति८
राजसगुणकी वृत्यतैं । सुख दुख आवहि दोइ ॥
ते सब मानै आपकौ । क्यूं करि छूटे सोइ ॥९॥
रज सत मिश्रित वृत्य ये । जप तप तीरथ दान॥
योग यम औ नेम व्रत । वंछे स्वर्गस्थान ॥१०॥
बहुत भांतिकी कामना । इंद्रलोककी चाहि ॥
सत्यलोक जो पाइये । तहां बहुत सुख आइ ॥११
कोउक सात्विक शुद्ध व्है । सबतैं भयो उदास॥
दुहूं लोकको त्याग करि । मुक्ति हेत जज्ञास १२
जनि सद्गुरुको आइकै । पूछ्यो यह संदेह ॥

मैं हौं कौंन कृपाल कहै। दूर करौ भ्रम येह ॥१३॥
सद्गुरु देख्यो शुद्ध अति। मन वच काइ सहेत॥
भलि भूमिमैं बोइये। तब वह निपजे खेत॥१४॥
तासौं सद्गुरु यों कह्यो। तूं है ब्रह्म अखंड ॥
चिदानंद चैतन्य घन। व्यापक सब ब्रह्मंड ॥१५
उनि वह निश्चय धारिकै। मुक्त भयो ततकाल॥
देख्यो रजुको रजु तहां। दूरि भयो भ्रम व्याल१६
ज्यूं रविके उद्योतसैं। अंधकार मिटि जाइ ॥
तैसैं ज्ञान प्रकासतें। भ्रम सब गयो बिलाइ॥१७
शुद्ध हृदै सुनि मनन करि। निदिध्यास पुनि होइ
याहि साधन साधिकै। भयो वस्तुमय सोइ॥१८॥
शुद्ध हृदैमैं ठाहरै। यह सद्गुरुको ज्ञान ॥
अजर वस्तुकौं जांनिकै। होइ रहै गुलतान ॥१९
कनकपात्रमांहि रहै। ज्यूं सिंहनिको दूध ॥
ज्ञान तहांहि ठाहरै। हृदै होइ जब शुद्ध ॥२०॥

शुद्ध हृदै जाको भयो । उहि कृतारथ जानि ॥
सोई जीवन्मुक्त है । सुंदर कहत बखानि॥२१॥

॥ इति श्रीग्रंथउक्तअनूपः संपूर्णः ॥

॥ अथ ग्रंथ सुंदर बावनी ॥

॥ दोहा छंद ॥

गुरु अविनाशी पुरुष है । घटका दादू नांव ॥
सुंदर शोभा का कहुं । नख शिख पर बलि जांव
शब्द सुनत मुक्ता भया । काटे कर्म अनेक ॥
मनसा वाचा कर्मना । हृदये राखे एक ॥ २॥
एक अक्षर है एक रस । सबहिनको आधार ॥
तरवर ज्यूंका त्यूं रहै । छाया बहुत प्रकार॥३
बावन अक्षर अगम घर । बूझै संत सुजान ॥
ताकी गम कछु कहत हूं । जातैं तिरै अजान ॥४

॥ चौपाई छंद ॥

ॐकार आदि उत्पन्ना ।
ॐकार त्रिविध भयो भिन्ना ॥
ॐकार उरै यह माया ।
ॐकार यहै हरि राया ॥ ५ ॥

नमस्कार निशदिन है ताकौं ।
नित्य निरंतर नमिये वाकौं ॥
निकट न दूरि नजर नहिं आवै ।
" नेति नेति " कहि निगम सुनावै ॥६॥

मनतैं अगम मरै नहिं जीवै ।
मुक्त न बंध शक्ति नहिं शीवै ॥
मौन अमौन कह्या नहिं जाई ।
मोल माप नहिं रह्या समाई ॥ ७ ॥

सित न असित कछु हरित न पारा ।
ससि अरु सूर न सूनहि सारा ॥

सीस न पाव श्रवन नहिं नाशा ।
सरस न निरस शब्द नहिं स्वासा ॥८॥
द्वंद्व अद्वंद्व धूप नहिं छाया ।
धीर अधीर न भूखा धाया ॥
धन्यो अधर नहिं रूप कुरूपं ।
ध्येय ध्याता नहिं ध्यान स्वरूपं ॥ ९ ॥
अकह अगह अति अमिति अपारा ।
अकल अमल अज अगम विचारा ॥
अलख अभेव लखै नहिं कोई ।
अति अगाध अविनाशी सोई ॥ १० ॥
आदि न अंत मध्य कहु कैसा ।
आसा पाश नहीं कछु ऐसा ॥
आवै जाई न सुप्त न जागै ।
आजि अखंडित पीछै आगै ॥ ११ ॥
इत उत जित कित है भरपूरा ।
इडा पिंगलातैं अति दूरा ॥

इच्छारहित इष्टकौं ध्यावै ।
इतनी जानै तौ इत पावै ॥ १२ ॥
ईश्वर एक और नहिं कोई ।
ईस सीस पर राखहु सोई ॥
ईहां और ईरषा भानौ ।
ईतरता कबहू नहीं आनौ ॥ १३ ॥
उत्तम उहै उनमुनी लावै ।
उरमैं पैसि अपूठा आवै ॥
उरैं उरैं उरझ्यो संसारा ।
उलटा चलै सु उतरै पारा ॥ १४ ॥
ऊच नीच सम देखै दोऊ ।
ऊरा पूरा है नहि कोऊ ॥
ऊपद तरै एक पहिचानै ।
उहावाई जगतहीं जानै ॥ १५ ॥
एकै ब्रह्म अनेक दिखावै ।
एकाकी हूये तिन पावै ॥

ए मेरे ए तेरे कीये
एहि अंतर इन करि लीये ॥ १६ ॥
ऐया बुझि तुह्मारी जानी ।
ऐयत कोटिनि दृष्टि सुलानी ॥
ऐश्वर्यहिं मनकौं मति लावै ।
ऐसा ज्ञान गुरू समुझावै ॥ १७ ॥
ओतप्रोत औ व्यापक सारै ।
ओछी बुद्धि औस जल धारै ॥
ओर छौर बाकौ कहुं नांही ।
ओट आंखिकी आवहि जांही ॥ १८ ॥
औषध याहि एक बिचारा ।
और उपाई सकल अंधियारा ॥
औसर बीत फिरि पछितावै ।
औतरि पर तहांतैं आवै ॥ १९ ॥
अंस उहै बोले या मांहिं ।
अंजनमांहि निरंजन छाहीं ॥

अंध न लहै और दिश दौरै ।
अंतक आइ आइ सिर फोरै　॥ २० ॥
अह अह उपजै आतमज्ञाना ।
अह न अह न वाही ध्याना ॥
अहलताहि कबहू नहीं होई ।
अहटि रहै तौ बूजै सोई　॥ २१ ॥
कका करि कायामैं वासा ।
काया माया कमल प्रकाशा ॥
कमलमांहि करताकों जोई ।
करता मिलैं करम नहिं कोई　॥ २२ ॥
खखा खेल पसारा वाका ।
खल कहि ते जु खसम होइ ताका ॥
खेंचि खेंचि मनसौं मन लावै ।
खरी बात बालककौं भावै　॥ २३ ॥
गगा गुप्त कहै गुरु देवा ।
ज्ञान गुफामैं अलख अभेवा ॥

गल गल स्वादत जे गुण सारै ।
गगन गहै गोविंद निहारै ॥ २४ ॥
घघा घटमैं औ घट कहिये ।
घटही मांहि घाटकौं लहिये ॥
घाटमांहि घनघुरे निसानी ।
घंटा घोर सुनैं को कानी ॥ २५ ॥
नना नेह निरंजन लागै ।
नारी तजै नरकतैं भागै ॥
निशदिन नैनहुं नींद न आवै ।
नर तबही नारायन पावै ॥ २६ ॥
चचा चित्त चहुं दिशतैं फेरै ।
चौकहिं बैठि चहुं दिश हेरै ॥
चलत चलत जब आगै जाई ।
चारि पदारथ लागै पाई ॥ २७ ॥
छछा छाया देखि न भूली ।
छलबल करै छलैगी ऊली ॥

छिन्न भिन्न जो तरु तत पीवै ।
छाकि रहै तौ जुगि जुगि जीवै ॥ २८ ॥
जजा जानत जानत जानै ।
जतन करै तौ सहज पिछानै ॥
जोग जुगति तनमनहिं जरावै ।
जरा न व्यापै जोति जगावै ॥ २९ ॥
झझा झरत रहैं झल देखै ।
झुकि झुकिनी झर पिवै अलेखै ॥
झूंकी कटकि उलटा रस बूझै ।
झलमल झाल दशौदिश सूझै ॥ ३० ॥
नना नाव लिये निसतरियै ।
निरवर उपाई कछू नही करियै ॥
नारी नखसिख करै शृंगारा ।
नाकि बिना फजीहति वारा ॥ ३१ ॥
टटा टेरि कह्या गुरु ज्ञाना ।
टूक टूक व्है मरि मैदाना ॥

टगै न टेक टूटि नहिं जाई ।
टलै काल औरहिकौं खाई ॥ ३२ ॥
ठठा ठगनीकौं मति धीजै ।
ठगै फरीकै तवका कीजै ॥
ठौर छोडि जिनि तकै पसारा ॥
ठगनी पैठि करै घट छारा ॥ ३३ ॥
डडा डारि देह डर सबहीं ।
झोरि पकरि झिगै नहीं कबहीं ॥
डंड कमंडल डिढ करि राखी ।
डेरै गयै सु बोलै साखी ॥ ३४ ॥
ढढा ढरतहि ढारै पासा ।
ढारै अब जिनि देखि तमासा ।
ढूंढै चौपडि ढलि मलि जाई ।
ढुवका तब काहेकौं खाई ॥ ३५ ॥
णणा रुणझुण वाजै वीणा ।
नारायण मारग अति झीणा ॥

णाम प्रवीण दोइ जे कोई ।
णागर मरण मिटावै सोई ॥ ३६ ॥
तता तरली लगै शरीरा ।
तनमन भूलै पैली तीरा ॥
तब त्रिभुवन पति पकरै बाहि ।
तत्त्वै तत्त्व मिलै तूं नाहीं ॥ ३७ ॥
थथा थावर जंगम थाना ।
थिरहिं रह्या सबमांहि समाना ॥
थिर है ई थकियो जिनि राहा ।
थाहत थाहत मिलै अथाहा ॥ ३८ ॥
ददा दमगहि दिलकौं धोई ।
दिलमैं दर्द मिलैगा सोई ॥
दहदिश तोहि होई दीदारा ।
देइ अभैपद सिरजनहारा ॥ ३९ ॥
धधा धाम धणीका कीसै ।
धूध मार जो नान्हा पीसै ॥

ध्यान धरै धुनिसौं लै लावै ।
नाहिं कछु तहां मन मानैं ॥ ४० ॥
नना निरनै करि निरधारा ।
निकटि निरंजन सबतैं न्यारा ॥
न्यारैकौं नीकै करि जानै ।
नाहीं तहां कछु मन मानै ॥ ४१ ॥
पपा परमिति है न कोई ।
परम पुरुष परलै नहिं होई ॥
पानि पादौ पेट न पृष्ठी ।
पंचतत्त्वतैं पैला इष्टी ॥ ४२ ॥
फफा फूल बिना फल खावै ।
फल जाई तौ फिरिकरि नावै ॥
फटकि पिछौडि झारि चतुराई ।
फूकि देह सब मानि बडाई ॥ ४३ ॥
बबा बानिक बनि है तेरा ।
बंद लगाइ शब्द सुनि मेरा ॥

बार बार बहुसौं नहिं भेटा ।
बेगि न मिलै बापकौं बेटा ॥ ४४ ॥
भभा भया सिंधुका मेला ।
भारी भेट बूझि लै चेला ॥
भिष्ठाभोजन भरि भरि खाई ।
भंझारा गुरु बांट्या आई ॥ ४५ ॥
ममा मरि ममता मति आनै ।
मोम होइ तब मेरम जानै ॥
मदहीं मान मैल होइ दूरी ।
मनमैं मिलै सजीवनि मूरी ॥ ४६ ॥
यया याकौं याही पावै ।
याहि पकरि याकै घर ल्यावै ॥
याकौ याही बेरी होई ।
याकौ इहै मित्र है सोई ॥ ४७ ॥
ररा रती रती समुझाया ।
रेरे रंक सुमरि लै राया ॥

रमति राम रह्या भरपूरा ।
राखि रिदे पण छांडि न सूरा ॥ ४८ ॥
लला लगिकरि उठै भभूका ।
लंबा गुरू लगावै लूका ॥
लूंटि लाटि लोगनिकौं खाई ।
लंका छोडि अलंका जाई ॥ ४९ ॥
ववा वोरा ज्यूं गरि जावै ।
वैसा होइ उसी लय लावै ॥
वासौं कोई कहै न जूवा ।
वाहि वाहि करि वाहि हूवा ॥ ५० ॥
ससा स्वेत पीत नहिं स्यामा ।
सकल सिरोमनि जिसका नामा ॥
संसकारतैं सुमरै कोई ।
सोधे मूल सुखी सो होई ॥ ५१ ॥
खखा खतकौं फाडि जलावै ।
खोडि तजै खोटा नहिं खावै ॥

खुसी होइ खग चडि आकाशा ।
खाईं अभख तब निहचलवासा ॥५२॥
शशा साहिब सेवक संगा ।
शुरति करै जब सिमटै अंगा ॥
शो रस पिस्या होइ ऐसा ।
शंकर शेख रसिक है जैसा ॥ ५३ ॥
हहा हौणहार परि राखे ।
हरखि हरखि करि हरिरस चाखै ॥
हाल हाल होइ हेत लगावै ।
हसि हसि हसैं हंस मिलावै ॥ ५४ ॥
क्षक्षा क्षिरि क्षिरि गए अनेका ।
क्षण क्षणमांहि खबरि करि एका ॥
क्षर संसार क्षाल जिनि कीया ।
क्षालि सही खराकरि लीया ॥ ५५ ॥
ज्ञान उहै कोई जो पावै ।
ज्ञाताकै हृदये ठहरावै ॥

ज्ञेय वस्तुकौं जानै सोई ।
ज्ञानी उहै और नहिं कोई ॥ ५६ ॥
करत करत अक्षरका जोरा ।
निशा वितीत प्रगट भयो भोरा ॥
सुंदरदास गुरूमुख जाना ।
खिरै नहिं तासौं मन माना ॥ ५७ ॥

॥ दोहा छंद ॥

क्षरमांही अक्षर लिख्या । सतगुरुके जु प्रसाद ॥
सुंदर ताहि बिचारतैं । छूटा सहजि विषाद ॥५८॥

इति श्रीग्रंथ सुंदर बावनी संपूर्णः ॥

॥ अथ ग्रंथ सहजानंद ॥

॥ चौपाई छंद ॥

प्रथमहिं निराकार निजबंद ।
गुरु प्रसाद सहजै आनंद ॥

पूरणब्रह्म अकल अविनाशी ।
पंचतत्वकी सृष्टि प्रकाशी ॥ १ ॥
चिन्ह विना सब कोई आये ।
इहां भये दोह पंथ चलाये ॥
हिंदु तुरक ऊठ्यो यहु भर्मा ।
हम दोऊका छांड्या धरमा ॥ २ ॥
ना मैं कृतम कर्म बखानौ ।
ना मैं मूलका कलिरा जानौ ॥
ना मैं तीन ताग गलि नाऊं ।
ना मैं सुनति करी बोराऊं ॥ ३ ॥
माला जपौं न तसबी फेरौं ।
तीरथ जाउं न मक्का हेरूं ॥
न्हाइ धोइ नहिं करूं अचारा ।
वूजूतैं पुनि हूवा न्यारा ॥ ४ ॥
एकादशी न ब्रतहिं बिचारौं ।
रोजा धरौं न बांग पुकारौं ॥

देव पितर नहिं पीर मनाऊं।
धरतीकाडौं न देह जलाऊं ॥ ५ ॥
॥ दोहा छंद ॥
हिंदूकी हद छांडिकै। तजी तुरककी राह ॥
सुंदर सहजै चीन्हिया। एकै राम अल्लाह ॥६॥
॥ चौपाई छंद ॥
तौ और अचंभा सुनि यहु भाई।
जो मुहि सतगुरू दिया बताई ॥
सहजै नाम निरंजन लीजे।
और उपाइ कछू नही कीजे ॥ ७ ॥
सहजै ब्रह्म अगन परि जारी।
सहज समाधी उनमनी तारी ॥
सहजै सहजै राम धुनि होई।
सहजहिं मांहिं समावै सोई ॥ ८ ॥
अब मोतैं कछु होइ न आवै।
ब्रह्मा विष्णु महेस बुझावै ॥

ना मुहि यज्ञ योगकी आसा ।
ना मैं करौं पठन अभ्यासा ॥ ९ ॥
ना मैं कोई आसन साधौं ।
ना मैं सूती शक्त्याराधौं ॥
प्राणायाम धारणा ध्यानं ।
ना मैं रेचक पूरक ठानं ॥ १० ॥
ना मैं कुंभक त्राटक लाऊं ।
नौलि भवंगम दूरि वहाऊं ॥
नेती धोती करौं न कर्मा ।
उलटी पलटी रासभ भर्मा ॥ ११ ॥

॥ दोहा छंद ॥

जोई आरंभ कीजिये । सोई संसै काल ॥
सुंदर सहज सुभाव गही । मेटचो सब जंजाल १२

॥ चौपाई छंद ॥

देह कष्ट मैं करौं न कोई ।
सहजै सहजै होइ सु होई ॥

ना मैं पंचाअग्नि जलाउं ।
जातैं राज पाट कछु पाऊं ॥ १३ ॥
ना मैं मेघा डंबर भीजौं ।
सीतकाल जलमैं नहिं छीजौं ॥
ना मैं सिरपरि करवत सारौं ।
ना मैं नींद भूख तिस मारौं ॥ १४ ॥
ना मैं मरौं गलैमैं पासा ।
मुये मुक्तिकी करौं न आसा ॥
ना मैं गलौं हिमालै माहीं ।
स्वर्ग लोककौं वंछौं नाहीं ॥ १५ ॥
ना मैं लटकि अधोमुख झूलौं ।
धूमपान करि मैं नहिं भूलौं ॥
ना बनमैं बसि करौं तपस्या ।
कंद मूलकी करौं न हिंस्या ॥ १६ ॥
पुहमी दैवनदहीं ना वर्ता ।
नागे पाय फिरौ न मरता ॥

औरै बहु

॥ ... जानै नहिं मेरा ॥

॥ दोहा छंद ॥

कहि समुझाइया । निजमत वारंवार ।
कष्ट कहा करै । पाया सहज विचार॥१८

॥ चौपाई छंद ॥

तौ सहज निरंजन सबमैं सोई ।
सहजै संत मिलै सब कोई ॥
सहजै शंकर लागे सेवा ।
सहजे सनकादिक सुकदेवा ॥ १९ ॥
सहजै सेश भये लै लीना ।
सहजै तत्त्व हनुमत चीन्हा ॥
सहजै ध्रुव कीनौ अहलादा
सहज सुभाव ग्रह्यो प्रहलादा ॥ २० ॥
पहलैं गोरख कर्म दृढाया ।
संत मिलै तिन सहज बताया ॥

॥

सहज ... भरथरी ल.
...वदं सहजहीं सीधा ॥ १३ ॥
नामदेव जब सहज पिछाना ।
आत्माराम सकलमैं जाना ॥
दास कबीर सहज सुख पाया ।
सबमैं पूरणब्रह्म बताया ॥ २२ ॥
सोका पीपा सहज समाना ।
सेन धना सहजै रसपाना ॥
जन रैदास सहजकूं बंदा ।
गुरु दादु सहजै आनंदा ॥ २३ ॥

॥ दोहा छंद ॥

एकै सहज सुभाव गहि । संतनि कियो बिलास
मनसा वाचा कर्मना । तिहि पंथि सुंदर दास २४

॥ इति श्रीग्रंथ सहजानंद: संपूर्ण: ॥

॥ अथ गृह वैराग बोध ॥

॥ चौपाई छंद ॥

गृही कहै जु सुनहु वैरागी ।
कहा विरक्त भये है जू ॥
कै तुमसैं परमेश्वर रूसै ।
कै तुमका हूवा हेतु ॥ १ ॥
वैरागी बोलै जु गृही सुनि ।
मेरै ज्ञान प्रकाशा जू ॥
मिथ्या देखि सकलसंसार ।
तातें भये उदासा जू ॥ २ ॥
गृही कहै बूरी तुम कीनी ।
कछू बिचार न आयो जू ॥
जनक बसिष्ठ और पुनि साध ।
तिन वरहीमैं पायो जू ॥ ३ ॥

वैरागी बोलै सुगृही सुनि ।
विरक्त बहुतसु ना जंजू ॥
ऋषभदेव अरु भरत आदि दै ।
केतै और बताऊं जू ॥ ४ ॥
गृही कहै जु बडौ सुख गृहमैं ।
पुत्र कलत्र रु माया जू ॥
ताहि छांडि जो मुक्ति कहत है ।
तिन तौ ज्ञान न पाया जू ॥ ५ ॥
वैरागी बोलै जु गृही सुनि ।
गृह दुःखको भंडार जू ॥
मुक्ति हौनकी सो कहा जानै ।
अंधकूपमैं डारा जू ॥ ६ ॥
गृही कहै जु पुत्र धन देखत ।
सब दुःख दूरि बिसारूं जू ॥
नव जोबन जबहि हसि बोलै ।
कोटि मुक्ति गहि वारूं जू ॥ ७ ॥

वैरागि कहै जो जहां राता ।
सोइ तहां सुख पावै जू ॥
नरकही रचै नरकका कीडो ।
चंदन ताहि न भावै जू ॥ ८ ॥
गृही कहै जु त्रिया मृगनैनी ।
कटि केहरि गज चाला जू ॥
अधरपान जिन कीयो नाहीं ।
तिनके भागन भाला जू ॥ ९ ॥
वैरागी कहै हाड चाम सब ।
नैननी झलकत पानी जू ॥
मज्जा मेद उदरमैं विष्ठा ।
तहां न भूलै ज्ञानी जू ॥ १० ॥
गृही कहै चंद्रबदनी त्रिय ।
अंग अंग छवि सो है जू ॥
चंदन लेपन कुच मंडल पर ।
देव दानवा मोहै जू ॥ ११ ॥

बैरागी कहै नवद्वारमैं ।
निशदिन नरक बहाई जू ॥
लोह मांस कूचनके भीतरि ।
ताकी कहा बडाई जू ॥ १२ ॥
गृही कहै नव आशा त्यागी ।
त्रियाहि तुमनै त्यागी जू ॥
माया तुमपैं छूटी नाहीं ।
काहेकै बैरागी जू ॥ १३ ॥
बैरागी कहै माया सोई
आश पराई धावै जू ॥
और सकल यह वरतनि कहिये ।
अनवंछीही आवै जू ॥ १४ ॥
गृही कहै जु नहीं अनवंछी ।
करहु हमारी आशा जू ॥
बार बार घर घर तन चितवै
चीत उडै आकाशा जू ॥ १५ ॥

बैरागी कहै आशा हरिकी ।
देह रहै जगमांहि जू ॥
जैसै कँवल रहै जल भीतरि ।
जलसूं सनमुख नाहीं जू ॥ १६ ॥
गृही कहै जु वडो गृह आश्रम ।
जती तहां चलि आवै जू ॥
मन तौ तवही होई सु निश्चल ।
भिक्षा भोजन पावै जू ॥ १७ ॥
वैरागी कहै धर्म देहको ।
याहि भाति वनायो जू ॥
पंचदोष तेरे तव छूटै ।
जती आई कछु पायो जू ॥ १८ ॥
बिरक्त धर्म रहै जु गृहीतैं ।
गृहीकौं बिरक्त तारै जू ॥
ज्यौं बन करै सिंघकी रक्षा ।
सिंघ सु वनहि उबारैं जू ॥ १९ ॥

बिरक्त सु तौ भजै भगवंतहि ।
गृही सु ताकी सेवा जू ॥
अस्वके कान बराबर दोऊ ।
जति सतिको भेवा जू ॥ २० ॥
गृह बैराग बोध यहु कीनौ ।
सुनियो संत सुजाना जू ॥
सुंदरदास जु भिन्न भिन्न करि ।
नीकी भांति बखाना जू ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीगृहवैरागबोधः संपूर्णः ॥

॥ अथ ग्रंथ विवेकचिंतामणिः ॥

॥ चौपाई ॥

आपु निरंजन है अविनाशी ।
जिनि यह बहुविधि सृष्टि प्रकाशी ॥

अब तूं पकरि उसीका सरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ १ ॥
जो तूं जन्म जगतमैं आया ।
तौ तूं करि लै इहै उपाया ॥
निशदिन रामनाम उच्चरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ २ ॥
माया मोह मांहिं जिनि भूलै ।
लोक कुटंब देखि मत फूलै ॥
इनकै संगि लागि क्या जरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ३ ॥
मात पिता बंधव किस केरे ।
सुत दारा कोउ नहीं तेरे ॥
छिनकमांहिं सबसौं बीछरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ४ ॥
अपने अपने स्वारथ लागै ।
तूं मति जानै मो संग चालै ॥

इनकौ पहिलै छोडि निसरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ५ ॥
जिनकै हेत दसौंदिसि धावै ।
कोऊ तेरै संग न आवै ॥
धामधूम धंधा परिहरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ६ ॥
गृहको दुःख न बरन्यो जाई ।
मानहु अग्नि चहुं दिशि लाई ॥
तामैं कहु कैसी बिधि ठरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ७ ॥
करना है सौ करि कि न लेहू ।
पीछै हमकों दोस न देहू ॥
इकदिन पाऊं पसारि तुळरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ८ ॥
या शरीरसौं ममता कैसी ।
याकी तौ गति दीसत ऐसी ॥

ज्यूं पालाका पिंड पघरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ९ ॥
मृत्यु पकरिकैं सबनि हलावै ।
तेरा बारी नहीं घरि आवै ॥
जैसैं पात वृछसैं छरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ १० ॥
दिन दिन छीन होतहै काया ।
अंजुरिमैं जल किन ठहराया ॥
ऐसै जानि बेगि निस्तरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ११ ॥
देह खेह मांहे मिलि जाई ।
काग स्वान कै जंतुक खाई ॥
तेल फुलेल कहा चोपरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ १२ ॥
खंड विहंड काल तन करि है ।
शंकट महा एक दिन परि है ॥

चाकी मांहिं मूंग ज्यौं दरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ १३ ॥
काहेकौं कछु मनमैं धारै ।
मौतसु तेरी वोरि निहारै ॥
वाला गिनै न बूढा तरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ १४ ॥
साप गहै मूसाकौं जैसें ।
मंजारी सूवाकौं तैसें ॥
ज्यूं तीतरकौं बाज विथुरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ १५ ॥
बोक निलज्ज चरत नित डोलै ।
बकरी संग काम रत बोलै ॥
पकरि कसाई पटकी पिछरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ १६ ॥
काल खरा सिर ऊपर तेरै ।
तूं क्यूं गाफिल उत इत हेरै ॥

जैसैं वधिक हतै तकि हरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ १७ ॥
क्षणभंगुर यहु तन है ऐसा ।
काचा कुंभ भऱ्या जल जैसा ॥
पलकमांहि वैठैही ठरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ १८ ॥
जोरि जोरि धन भरे भंडारा ।
अर्ब खर्ब कछु अंत न पारा ॥
खोखी हांडी हाथ पकरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ १९ ॥
हीरा लाल जवाहिर जेते ।
मानक मोती घरमैं केते ॥
धऱ्या रहै रूपा सौवरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ २० ॥
रीता आया रीता जाई ।
उहै भली जो खरची पाई ॥

माया संचि संचि क्या करना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ २१ ॥
देश विलाइत घोरा हाथी ।
इनमैं कोउ न तेरा साथी ॥
पीछे व्है है हाथ मसरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ २२ ॥
मंदिर माल छोडि सब जाना ।
होइ बसेरा बीच मसाना ॥
अंबर वोढन भूमि पथरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ २३ ॥
बहुविधि संत कहत हैं टेरै ।
जमकी मार परै सिर तेरै ॥
धर्मरायको लेखा भरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ २४ ॥
पाप पुन्यका ब्यौरा मागै ।
कागद निकसै तेरै आगै ॥

रती रतीका व्है है निरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ २५ ॥
कंटक ऊपर चलि है भाई ।
ताते थंभनसौं लपटाई ॥
ऐसी त्रास जानि अति करना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ २६ ॥
कहूं काहू दुःख न दीजै ।
अपनी घात आप क्यूं कीजै ॥
वार वार चौरासी फिरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ २७ ॥
जो वोहै लुनियेगा सोई ।
अमृत खाइ कि विषफल होई ॥
इहै विचारि असुभसों टरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ २८ ॥
वेद पुराण कहै समुझावै ।
जैसा करै सु तैसा पावै ॥

तातैं देखि देखि पग धरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ २९ ॥
भोग न करै नृपति सो होई ।
गुरू शिष्य भावै कि न होई ॥
अपनी करनी पार उतरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ३० ॥
काम क्रोध वैरी घटमांहीं ।
और कोउ कहां वैरी नाहीं ॥
रात दिवस इसहीसौं लरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ३१ ॥
मनकौं दंड बहुत विधि दीजै ।
याही दगाबाज वश कीजै ॥
और किसीसैंती नहिं अरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ३२ ॥
जिनकै राग द्वेष कहुं नाहीं ।
ब्रह्मविचार सदा उरमाहीं ॥

उन संतनिकै गहियैं चरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ३३ ॥
काचा पिंड रहत नहीं दीसै ।
यह हम जानी बिसवावीसै ॥
हरि समरन कबहू न बिसरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ३४ ॥
जो तूं स्वर्गलोक चलि जावै ।
इंद्रलोक पुनि रहन न पावै ॥
ब्रह्माहूकै घरतै गिरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ३५ ॥
गर्व न करिये राजा राना ।
गये बिलाइ देव अरु दाना ॥
तिनकै कहू खोजहू खुरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ३६ ॥
धरती मापी एक डगरतैं ।
हाथों ऊपर परवत धरतैं ॥

केते गये जाहि नहिं बरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ३७ ॥
आसन साधि पवन पुनि पीवै ।
कोटि बरस लगि काहे न जीवै ॥
अंते तज तिनका घट परना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ३८ ॥
कंपै धर जल अग्नि समंदा ।
वायू व्योम तारागन चंदा ॥
कंपै सूर गगन आभरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ३९ ॥
जुदा न कोई रहनै पावै ।
होई अमर जो ब्रह्म समावै ॥
सुंदर और कहुं न उबरना ।
समझि देखि निश्चैकरि मरना ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीसुंदरदासविराचितो विवेक-
चिंतामणिः संपूर्णः ॥

॥ अथ त्रिविध अंतःकरण भेद ॥

॥ चौपाई छंद ॥

प्रश्नः–कौन बहिर्मन कहिये स्वामी ।
अंतरमन कहि अंतर्जामी ॥
कौन परममन कहिये देव ।
सुंदर पूछत मनको भेव ॥ १ ॥

उत्तरं–उहै बहिर्मन भ्रमत न थाकै ।
इंद्रियद्वार विषैसुख जाकै ॥
अंतरमन यौं जानैं कोहं ।
सुंदर ब्रह्म परममन सोहं ॥ २ ॥

प्रश्नः–बहिर्बुद्धि अब कहौ गुसांई ।
अंतरबुद्धि रहै किहिं ठांई ॥
परमबुद्धिका कहौ बिचारा ।
सुंदर पूछ शिष्य तुह्मारा ॥ ३ ॥

उत्तरं–बहिरबुद्धि रज तम गुण रक्ता।
अंतरबुद्धि सत्व आसक्ता॥
परमबुद्धि त्रयगुणतैं न्यारी।
सुंदर आतमबुद्धि विचारी ॥ ४ ॥
प्रश्नः–बहिश्चित्त कैसैं पहिचानै।
अंतरचित्त कवन विधि जानै॥
परमचित्त कैसैंकरि कहिये।
सुंदर सद्गुरुबिन नहिं लहिये॥ ५॥
उत्तरं–बहिश्चित्त चितवै अनेकं।
अंतरचित्त चितवन् एकं॥
परमचित्त चितवन नहिं कोई।
चितवन करत ब्रह्ममय होई ॥ ६॥
प्रश्नः–बहिर अहं सु कौन प्रकारा।
अंतः अहं कौन निर्द्धारा॥
परम अहं कैसैं करि पइये।
सुंदर सद्गुरु मोहि लखइये ॥ ७॥

उत्तरं-बहिर अहं देह अभिमानी ।
चारि वर्ण अंत्यज लौं प्रानी ॥
अंत अहं कहै हरिदासं ।
परम अहं हरि स्वयं प्रकाशं ॥ ८ ॥
चतुष्ट अंतहकरण सुनाये ।
त्रिधा भेद सद्गुरुतैं पाये ॥
यह नीकै करि समुझौ प्रानी ।
सुंदर नौ चौपांई बखानी ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीत्रिविधोऽन्तःकरणभेदः संपूर्णः ॥

॥ अथ सुंदरदासजीके पद लिख्यते ॥

॥ राग गोडी ॥ पद ॥ १ ॥

देह कहै सुनि प्रानिया । काहे होत उदासवे ।
अरस परस हम तुम मिले ज्यौं पहुप अरु वास वे

इक पहुप वास मिलाप।जैसो दुध घृत ज्यूं मेलवे।
काष्ठमैं ज्यौं अग्नि व्यापक।तिलनिमैं ज्यौं तेलवे
जैसैं उदकलवनामध्यगञ्जना। एकमेकञ्खांनिया
सुंदरदास उदास काहै। देह कहै सुनि प्रानिया१
जीव कहै काया सुनौ। हम तुम होई बियोगवे।
हम निर्गुन तुम गुनमई। कैसैं रहत संयोगवे॥
संयोग कैसैं रहत तोसौं।हौं अमर अविनाशवे।
तूं क्षणभंगुर आहि बौरी।कौन ताकी आसवे॥
इक आस ताकी कहा करिये। नाश होवै तिहिं तनौ।
सुंदरदास उदास यातैं।जीव कहै काया सुनौ २
देह कहै सुनि प्रानिया। तोहि न जानत कोईवे।
प्रगट सु तौ हमतैं भयो।कृतघनि जिनि होइवे॥
इक होई जिन कृतघनी कबहु।भोग बहुत बिधि तैं किये।
१ सपरस रूप रस।पुनि गंधनिके करि लिये

इक लिये गंधसुवास परिमल । प्रगट हमतैं जा-
नियां ।
सुंदरदास विलास कीनै। देह कहै सुनि प्रानिया
जीव कहै काया सुनौ । तूं काहू नहीं कामवे ।
सोभा दई हम आईकै।चैतन्य कीया चांमवे ॥
इक चांम चेतन आइ कीया।दीया जैसैं भौनवे।
बोलन चालन तबहीं लागी ।नहिं त होती मौनवे
यही मौनतेरो जब हिं छूटै।तबहिं तुम नीको बनौ
सुंदरदास प्रकास हमतैं।जीव कहै काया सुनौ ४
देह कहै सुनि प्रानिया।तेरै आंखि न कानवै ।
नासा मुख दीसै नहीं।हाथ न पाव निसानवे ॥
इक हाथ पाव न सीस नाभि।कहां तेरो देखिये।
भिन्न हमतैं जबहिं बोलै।तबहिं भूत विसेखिये॥
डरै सब्ब कोई शब्द सुनिकै । भरम भै करि मा-
निया ।
सुंदरदास आभास ऐसो।देह कहै सुनि प्रानिया

जीव कहै काया सुनौ । तोमहिं बत बिकारवे।
हाड मांस लोहू भरी । मज्जा मेद अपार वे ॥
इक मेद मज्जा बहुत तोमैं।चर्म ऊपरि लाइया।
जा घरी हम होहिं न्यारे। सबै देखि घिनाइया॥
घिन करै सब देखि तोकौं।नाक मूंदै जन जनौं।
सुंदरदास सुबास हमतैं।जीव कहै काया सुनौं ६
देह कहै सुनि प्रानिया । तेरै ठोर न ठांववे।
लेत हमारो आसिरो । धरत हमहिंको नांववे ॥
तुं नांव कैसैं धरत हमकौं । बात सुनिये एक वे।
जाहाडीमैं खाई चलिये।ताहि न करिये छेकवे॥
अबछेक कीये नांहिं सोभा । करि हमारी का-
नियां।
सुंदरदास निवास हममैं।देह कहै सुनि प्रानिया
जीव कहै काया सुनौ । मेरे ठौर अनंत वे।
आवो थो इस कामकौं।भजन करन भगवंतवे॥
वंत भजनै करनि आयो।प्रभु पठायो आपवे

पीछली सुधि सबै बिसरी।भयो लोहि मिलापत्रै
इक मिलै तोसौं कहा कासौं।अंतरा पाऱ्यो घनौ
सुंदरदास बिसास घातनि ।जीव कहै काया-
सुनौ ॥ ८ ॥

पद ॥ २ ॥

अलख निरंजन ध्यावउं । और न जाच झंरे ॥
कोटी मुकति देई कोई । तौ ताहि न राचऊंरे
॥ टेक ॥
ब्रह्मा कहि येइ । आदि पार नहीं पावैरे ।
कीयो करम कुलाल । सु मन नहिं भावैरे ॥१॥
विष्णूहुते अधिकारी । सु तौ ग्रभ जनम्योरे ॥
संकट माहे आई । दशोदिश भरम्योरे ॥ २ ॥
संकर भोला नाथ । हाथ बरु दीनौरे ॥
अपनो काल उपाइ । मरम नहीं चीन्हौरे ॥३॥
औरों देविय देव । सेव हम त्यागिरे ॥
सबतैं भयो उदास । ब्रह्म लय लागिरे ॥ ४ ॥

जाचक व्है अवास । आसधरि गावैरे ॥
बाहरि ठाडौ रेह । कि भीतरि आवैरे ॥ ५ ॥
खबरि भई दातार । सारमोहि बुझियेरे ॥
इहां आवनकी गैल । तोहि कस सुझियेरे ॥६॥
जाचक बोलै बैन । सकल फिरि आयोरे ॥
तोहि जैसो कोउ । अवर नही पायोरे ॥ ७ ॥
सब साहिन पर साहि । नृपति पर राईरे ॥
सब देवत पर देव । सुन्यो सुख दाईरे ॥ ८ ॥
खुसि ये भये दातार । कहा तुम मागैरे ॥
रिद्धि सिद्धि मुक्ति भंडार । सु तेरै आगैरे ॥९॥
जाकर ईनकीय चाहि। ताहिकौं दीजैरे ॥
हमकूं नाम पियार । सदा रस पीजैरे ॥ १० ॥
देख्यो बहुत झुलाइ । न कित वै डोलैरे ॥
दियो अभेपद दान । जा नहीं तोलैरे ॥११॥
जाचक देइ असीस । नाम लैई काकोरे ॥
माइ बाप कुल जाति । बरन नहीं वाकोरे ॥१२॥

सब तेरो परिवार । न तेरै कोईरे ॥
बहुत कहा कहु तो हि।सबद सुनि दोईरे॥१३॥
धनि धनि सिरजन हार । तौ मंगल गायोरे ॥
जन सुंदर कर जोरि । सीस तोहि नायोरे १४

पद ॥ ३ ॥

ताहि न यहु जग ध्यावई।(जातैं) सब सुख आ-
नंद होईरे ॥
आन देवको ध्यावतैं।सुख नहिं पावै कोईरे॥टेक
कोइ सिव ब्रह्मा जपैरे । कोइ विष्णु अवतार ॥
कोई देवी देवतारे।कोई अरझि रह्यौ संसार॥१॥
घटधारी सब एक हैंरे । तासौं प्रीति न लाई ॥
भेड सरन गहै भेडका । तौ कैसैं उबऱ्या जाई २
प्राण पिंड जिनि सिरजियारे । सो तौ बिसरे
दूरि ॥
और औरके व्है गये । (तातैं) अंत परै मुख धूरि
लोक कहै हम करत है रे। सेवा पूजा ध्यान ॥

काँति मुई यव जनम लौं । वह भयो कपास
निदान ॥ ४ ॥
गुनधारि गुनसौं रंजैरे।निरगुण अगम अगाध॥
सकल निरंतर रमि रह्या । ताहि सुमिरै कोइक
साध ॥ ५ ॥
जरा मरनतें रहत है रे । कीजै ताकी सेव ॥
जन सुंदर वासौं लग्या।जो है अविनाशि देव ६

पद ॥ ८ ॥

देखो भाई कामनि जगमैं ऐसी ।
राजा रंक सबनिके घटमैं । बाघनि व्हैकरि
बैसी ॥ टेक ॥
कबहीं हंसै कबहीं इक रोवै।कोई मरम न पावै॥
झीनी पैसी हरै बुधि सबकी । छलबलकरि
झहकावै ॥ १ ॥
ज्ञानी गुनी सुर कवि पंडित।होते चतुर सयाना
सनमुख होइ परै फंदमांहीं । जुवती हाथ बि-
काना ॥ २ ॥

वस्ती छांडी बसै वनमांहीं । चाबै सूकै पाता ॥
दाव परै उनहूं कौंमारै । दे छातिपरि लाता ३
नागलोक नगपत्नी कहिये। मृत्युलोकमैं नारी॥
इंद्रलोक रंभा व्है बैठी। मोरी पासि पसारी॥४॥
तीन लोकमैं बच्यो न कोई। दीये डाढ तरि सारै
सुंदरदास लगै हरि सुमिरना।ते भगवंत उबार ५

पद ॥ ५ ॥

लोक वेदको संग त्यजोरे।साधु समागम कीन ॥
माया मोह जंजालतैं।हम भागि किनारो दीन १
नाम निरंजन लेत है रे। और न कछु न सुहाई ॥
मनसा वाचा कर्मना। सब छांडी आन उपाई २
पिंडब्रह्मंड जहां तहांरे। वा विन और न कोई ॥
सुंदर ताका दास है । जातैं सब पैदाइस होई ३

पद ॥ ६ ॥

काहेकों तूं मन आनत भैरे ॥
जग विलास तेरो भ्रम हैरे ॥ टेक ॥

जन्म मरन देहनिकों कहिये ॥
सोऊ भ्रम जब निश्चय ग्रहिये ॥ १ ॥
स्वर्ग नरक दोउ तेरी शंका ॥
तूंहिं राव भयो तूं रंका ॥ २ ॥
सुख दुःख दोउ तेरे कीये ॥
तैं बंध मुक्त करि लीये ॥ ३ ॥
द्वैतभाव तजि निर्भय होई ॥
तब सुंदर सुंदर है सोई ॥ ४ ॥

॥ राग माली गौडो ॥ पद ॥ ७ ॥

हरि नामतैं सुख उपजै।मन छांडि आन उपाई रे
तन कष्ट करि करि जो भ्रमैं। तौ मरन दुःख
न जाईरे ॥ टेक॥
गुरु ज्ञानको विश्वास गहि। जिनि भ्रमैं दूजी
ठौररे।
योग यज्ञ कलेस तप व्रत।नाम तुलत न औररे१
सबसंत यौंहीं कहत हैं।श्रुति सुमृति ग्रंथ पुरानरे।

दास सुंदर नामतैं गति। लहै पद निरबानरे ॥२॥

पद ॥ ८ ॥

सतसंग नित प्रति कीजिये । मति होई निरमल सारर ॥
नित प्रानपतिसौं उपजै । अति लहै सुख अपाररे ॥ टेक ॥
मुख नाम हरि उच्चरै। श्रुति सुनै गुन गोविंदरे॥
रटि ररंकार अखंड धुनि। तहां प्रगट पूरन चंदरे
सतगुरु बिना नहिं पाइए। यह अगमउलटा खेलरे
कहि दास सुंदर देखतैं। होइ जीव ब्रह्महिं मेलरे२

पद ॥ ९ ॥

ब्रह्मज्ञान विचारकरि। ज्यौं होइ ब्रह्म स्वरूपरे ॥
सकल भ्रम तम जाय मिटि । उर उदित भान अनूप रे ॥ टेक ॥
यह दूसरो कहि जबहिं देखै। दूसरो तब होइ रे ॥
फेर अपनी दृष्टिहींको। दूसरो नहि कोइरे ॥ १ ॥

दिव्य दृष्टिकरि देखिये तब सकल ब्रह्मविलासरे
अज्ञानतैं संसार भासैकहत सुंदरदास रे ॥ २ ॥

पद ॥ १० ॥

परब्रह्म है परब्रह्म है ।
परब्रह्म अमिति अपार रे ॥
नहिं जगत है नहिं जगत है ॥
नहिं जगत सकल असार रे ॥ टेक ॥
नहिं पिंड नहिं ब्रह्मांड है ।
नहिं स्वर्ग मृत्यु पाताल रे ॥
नहिं आदि है नहिं अंत है ।
नहिं मध्य माया जाल रे ॥ १ ॥
नहिं जनम है नहिं मरन है ।
नहिं काल करम सुभाव रे ॥
जीव नहिं जमदूत नहिं ।
अनुस्यूत सुंदर गाव रे ॥ २ ॥

पद ॥ ११ ॥

जगतैं जन न्यारा रे। करि ब्रह्मविचारा रे।
ज्यूं सूर उज्यारा रे ॥ टेक ॥
जल अंबुस जैसे रे। निधि सीप सु तैसे रे।
मणि अहि मुख ऐसे रे ॥ १ ॥
ज्यूं दर्पनमांहि रे। दीसै परछांहीं रे।
कछु परसै नाहीं रे ॥ २ ॥
ज्यूं घृतहिं समीपै रे। सब अंग प्रदीपै रे।
रसना नहिं छीपै रे ॥ ३ ॥
ज्यूं है आकासा रे। कछु लिपै न तासा रे।
यौं सुंदरदासा रे ॥ ४ ॥

पद ॥ १२ ॥

गुरू ज्ञान बताया रे जग झूठ दिखाया रे।
यौं निश्चय आया रे। टेक ॥
ज्यूं मृगजल दीसै रे। कोइ पिया न पीसै रे।
यौं बिस्वाबीसै रे ॥ १ ॥

ज्यूं रैनि अंधारि रे । रज्जु सर्प निहारी रे ।
भ्रम भागा भारी रे ॥ २ ॥
ज्यूं सीप अनूपा रे । करि जान्यूं रूपा रे ।
कोइ भया नभूपा रे॥ ३ ॥
वंध्यासुत झूलै रे । आकाशके फूलै रे ।
नहीं सुंदर भूलै रे ॥ ४ ॥

॥ राग कल्याण ॥ पद ॥ १३ ॥

तोहि लाभ कहा नरदेहको ।
जो नहिं भजे जगत्पति स्वामी ।
तौ पसु वनमैं छेहको ॥ टेक ॥
खान पान निद्रा सुख मैथुन ।
सुत दारा धन गेहको ॥
यह तौ ममत आहि सबहिनकों ।
मिथ्या रूप सनेहको ॥ १ ॥
समझि विचारि देखि या तनको ।
बंध्यो पुतरा खेहको ॥

सुंदरदास जानि जग झूठो ।
इनमैं कोउ न केहको　　॥ २ ॥

पद ॥ १४ ॥

नर राम भजन करि लीजिये ।
साध संगति मिलि हरि गुन गाइये ।
प्रेमसहित रस पीजिये ॥ टेक ॥
भ्रमत भ्रमत जगमैं दुख पायो ।
अब काहेकों छीजिये ॥
मनुषा जन्म जानि अति दुर्लभ ।
कारिज अपनो कीजिये　　॥ १ ॥
सहज समाधि सदा लय लागै ।
इहि विधि जुग जुग जीजिये ॥
सुंदरदास मिलै अविनासी ।
डंड काल सिर दीजिये　　॥ २ ॥

पद ॥ १५ ॥

नर चिंतन करि ये पेटकी ।

हलै चलै तामैं कछु नाहीं ।
कलमल खोजो ठेटकी ॥ टेक ॥
जीव जंत जलथलके सबहीं ।
तिनि निधि कहा समेटकी ॥
समय पाय सबहिनकों पहुंचै ।
कहां बाप कहां बेटकी ॥ १ ॥
जको जितनो रच्यो बिधाता ।
ताको आवै तेटकी ॥
सुंदरदास ताहि किन सुमरो ।
जो है ऐसा चेटकी ॥ २ ॥

पद ॥ १६ ॥

जग झूठो है झूठो सही ।
पूरन ब्रह्म अकल अबिनासी ।
मन बच क्रम ताको गही ॥ टेक ॥
उपजै बिनसैं सो सब बाजी ।
बेद पुराननिमें कही ॥

नाना बिधिके खेल दिखावै ।
बाजीगरका खेल उही ॥ १ ॥
रज्जुभुजंग मृगतृष्णा जैसी ।
यह माया बिस्तारी ॥
सुंदर वस्तु अखंड एकरस ।
सो काहू बिरलै लही ॥ २ ॥

॥ पद ॥ १७ ॥

थेई थत थेई ताधीनागडधी नागडधी नाग-
डधीनाधी ॥ टेक ॥

थुंग निथुंग निथुंग निथुंग ॥
त्रिघट उघटित ततुरिय उतंगा ॥ १ ॥
तननन तननन तननन तन्ना ॥
शुद्ध गगनवत् आत्मभिन्ना ॥ २ ॥
तत् त्वं तत्त्वं तत् सो त्वं असि ॥
सामवेद यौं बदत तत्त्वमसि ॥ ३ ॥

अद्भुत नृतत नाशत सोहं ॥
सुंदर गावत सोहं सोहं ॥ ४ ॥
॥ राग कानडो ॥ पद ॥ १८ ॥
संत सुखी दुःखमय संसारा ।
संत भजन करि सदा सुखारै ।
जगत दुखी गृहकै विवहारा ॥ टेक ॥
संतनिकै हरिनाम सकल निधि ।
नाम सजीवनि नाम अधारा ॥
जगत अनेक उपाइ कष्टकरि ।
उदर पूरना करै दुखारा ॥ १ ॥
संतनिको चिंता कछु नाहीं ।
जगत सोच करि करि मुख कारा ॥
सुंदरदास संत हरि सन्मुख ।
जगत विमुख पचि मरै गंवारा ॥ २ ॥
॥ पद ॥ १९ ॥
संत समागम करिये भाई ।

जानि अजानि छुवै पारसकों ।
लोह पलटि कंचन होइ जाई ॥ टेक ॥
नानाविधि बनराई कहावन ।
भिन्न भिन्न करि नाम धराई ॥
जाकों बास लगै चंदनकी ।
चंदन होवत बावन काई ॥ १ ॥
नवका रूप जानि सत संगति ।
तामैं सब कोई बैठहु आई ॥
और उपाई नही तरिबेको ।
सुंदर काठी राम दुहाई ॥ २ ॥

॥ पद २० ॥

हरिसुखकी महिमा सुक जानै ।
इंद्रपुरी शिवब्रह्मलोक पुनि ।
वैकुंठादिक नजरि न आनै ॥ टेक ॥
ता सुख मगन रहें सनकादिक ।
नारदहू निर्मल गुन गानै ॥

ऋषभदेव दत्तात्रय तनमैं ।
वामदेव महासुक्त बखानै ॥ १ ॥
ता सुखको क्षय होई न कबहू ।
सदा अखंडित संत प्रमानै ॥
सुंदरदास आस वा सुखकी ।
प्रगट होई तबहीं मन मानै ॥ २ ॥

॥ पद ॥ २१ ॥

सब कोउ आय काहवत ज्ञानी ।
जाको हरख शोक नहि व्यापै ।
ब्रह्मज्ञान किये निसानी ॥ टेक ॥
ऊपर सब व्यवहार चलावै ।
अंतहकरण सून्य करि जानि ॥
हानि लाभ कछु धरै न मनमैं ।
इह बिधि बिचरै निरअभिमानी ॥ १ ॥
अहंकारकी ठौर उठावै ।
आत्मदृष्टि एक उर आनी ॥

जीवन्मुक्त जानि सोइ सुंदर।
और बातकी बात बयानी ॥ २ ॥

॥ पद ॥ २२ ॥

तूं अगाध परब्रह्म निरंजन।
का अब तोहि लहै ॥
अजर अमर अबिगति अविनासी।
कौनै रेहनि रहै ॥ टेक ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद।
शेषहु गम्या कहै ॥
सुंदरदास बुद्धि अति थोरि।
कैसैं तोहि गहै ॥ १ ॥

॥ पद ॥ २३ ॥

ज्ञान तहां जहां द्वंद्व न कोई।
बाद बिबाद नहि काहूसों।
गरक ज्ञानमैं ज्ञानी सोई ॥ टेक ॥
भेदाभेद दृष्टि नहिं जाके।

हर्ष सोक उपजैं नहिं दोई ॥
समता भाव भयो उर अंतर ।
सार लियो सब ग्रंथ बिलोई ॥ १ ॥
स्वर्ग नरक संशय कछु नाहीं ।
मनकी सकल बासना धोई ॥
वाहीकै तुम अनुभव जानो ।
सुंदर उहै ब्रह्ममय होई ॥ २ ॥

॥ पद ॥ २४ ॥

पंडित सो जु पढै यह पोथी ।
जामैं ब्रह्मविचार निरंतर ।
और बात जानी सब थोथी ॥ टेक ॥
पढत पढत केते दिन बीते
विद्या पढि जहांलगु जो थी ॥
दोष बुद्धि जो मिटि नहीं कहुं ।
यातें और अविद्या को थी ॥ १ ॥

लाभ पड़े को कछू न हूवो ।
पूंजी गई गांठिकी सो थी ॥
सुंदरदास कहै समुझावै ।
बुरो न कबहु मानो मोथी ॥ २ ॥

॥ राग बिहागडो ॥ पद ॥ ॥ २५ ॥

हमारे गुरु दीनी एक जरी ।
कहा कहौं कछु कहत न आवै ।
अमृत रसही भरी ॥ टेक ॥
ताको मरम संत जन जानत। बस्तु अमोल खरी
यातैं मोहि पियारी लागत।लैकरि सीस धरी १
मन भुजंग अरु पंच नागिनी।सूंघत तुरत मरी॥
डायनी एक खात सब जगकों।सोभी देखि डरी
त्रिविध विकार तापनि भागि। दुरमति सकल हरी ॥
ताको गुन सुनि मीच पलाई और कवन बपुरी

निस बासर नहिं ताहि बिसारत। पल छिन आधघरी ॥
सुंदरदास भयो घट निरविख । सबही व्याधि टरी ॥ ४ ॥

॥ पद ॥ २६ ॥

मन मेरे झलटि आपुको जानी ।
काहेको उठि चहु दिसि धावै ।
कौन परी यह बानी ॥ टेक ॥
सतगुरु ठौर बताई तेरी ।
सहज सुनि पहिचानी ॥
तहां गये तोहि काल न व्यापै ।
होइ न कबहू हानी ॥ १ ॥
तूंही सकल बियापी कहिये ।
समझि देखि भ्रम भानी ॥
तूंही जीव सीव पुनि तूंही ।
तूंही सुंदर मानी ॥ २ ॥

॥ पद ॥ २७ ॥

हाहारे मन हाहा ।
हा इहांइ तोंहि टेरि कहत हौं ।
अब चलि सूधी राहा ॥ टेक ॥
बार बार समझायो तोकों ।
देदे लंबी धाहा ॥
निकसि जाइ पलमांहि धूम ज्यौं ।
कितहू ठौर न ठाहा ॥ १ ॥
तेरो वार पार नही दीसै ।
बहुत भांति औगाहा ॥
डुबकी मारि मारि हम थाकै ।
कितहु न पायो थाहा ॥ २ ॥
जो तूं चतुर प्रवीन जान अति ।
अबकै करि निरबाहा ॥
छांडि कलपना रामनाम भजि ।
यातैं और न लाहा ॥ ३ ॥

चंचल चपल चाहि मायाकी ।
यह गुलाम गतिकाहा ॥
सुंदर समझि बिचारि आपुको ।
तूं तौ है पति साहा ॥ ॥ ४ ॥

॥ पद ॥ २८ ॥

तूंहीरे मन तूंहीं ।
कौन कुबुद्धि लागी यह तोकौं ।
होत सिंघतैं चूही ॥ टेक ॥
छानत छा फिरही निसबासर ।
कौडीको सब भूही ॥
अमृत छांडी निलज्ज मूढमति ।
पकरत नीरसछूही ॥ १ ॥
अंत न पार कलपना तेरी ।
ज्यूं वरिखा रिति फूही ॥
सुख निधान अपनो सुख तजिकै ।
कित व्है दुःख समूही ॥ २ ॥

शिव सनकादि पुनि ब्रह्मादिक ।
प्रहलाद अरु ध्रुवही ॥
नाम कबीरा सोझा पीपा ।
कहै सतगुरु दादूही ॥ ३ ॥
वाती देखि कहां तूं भूलै ।
यह तौ है सब रूही ॥
सुंदर ऐसे जानि आपुको ।
सुंदर काही न हूही ॥ ४ ॥

॥ राग केदारो ॥ पद ॥ २९ ॥

व्यापक ब्रह्म जानहु एक ।
और भ्रम सब दूरि करिये ।
इह परम बिवेक ॥ टेक ॥
ऊंच नीच भलो बुरो ।
सुभ असुभ यह अज्ञान ॥
पुन्य पाप अनेक सुख दुःख ।
स्वर्ग नरक बखान ॥ १ ॥

द्वंद्व ज्यौंलौं जगत तौंलौं ।
जनम मरण अनंत ॥
हृदैमें जब ज्ञान प्रगटै ।
होई सबको अंत ॥ २ ॥
दृष्टिगोचर श्रुति पदारथ ।
सकल है मिथात ॥
स्वप्नतैं जाग्यो जबहि ।
तब सब प्रपंच विलात ॥ ३ ॥
यथा भान प्रकासतैं ।
कहुं तम रहै न लगार ॥
कहत सुंदर समझि आई ।
तब कहां संसार ॥ ४ ॥

पद ॥ ३० ॥

देखहु एक है गोविंद । द्वैतभावहि दूर करिये
होई तब आनंद ॥ टेक ॥

आदि ब्रह्मा अंति कीटहु । दूसरो नहि कोई
जो तरंग विचारिये । तौ वहै एकै तोई ॥ १ ॥
पंचतत्त्व रु तीनगुनको । कहत है संसार ॥
तउ दूजो नहीं है एक । बीजको विस्तार ॥२॥
अनंत निरसन कीजिये । तौ द्वैत नहीं ठहि-
रायी ॥
नहिं नहिं करतै रहै । तहां वचनहू नहीं
जाई ॥ ३ ॥
हरि जगतमैं जगत हरिमैं । कहत है यौं वेद ॥
नाम सुंदर धर्‍यो जबही । भयो तबहीं भेद॥४

पद ॥ ३१ ॥

ज्ञानबिन अधिक अरुझत हेरे । नैन भये तौ
कौन कामके । नेक न सुझत हैरे ॥ टेक ॥
सबमैं व्यापक अंतर जामी । ताहि न बूझत
हेरे । भेददृष्टिकरि भूलि पर्‍यो है । तातैं झू-
लत हैरे ॥ १ ॥

कठिन करमकी परत भाखसी । मांहि अमूझत
हैरे ॥
सुंदर घटमैं कामधेनु हरि । निसदिन दूझत हैरै

पद ॥ ३२ ॥

हरिबिन सब भ्रम भूलि परे हैं । नाना बिधिकै
क्रिया कर्म करि । बहु बिधि फलन फरै हैं
॥ टेक ॥
कोऊ सिरपरि कर्वत धारै । कोऊ हीम गरै है ॥
कोऊ झंपापात लेइकरि । सागर बूडि मरै है १
कोऊ मेघाडंबर भीजहि । पंचाअग्नि जरै हैं ॥
कोऊ शीतकाल जल पैठै । बहु कामना भरैहैं२
कोऊ लटकि अधोमुख झूलहि । कोई रहत खरै
है ॥
कोऊ वनमें खात कंद खणि । वलकल व-
सन धरै है ॥ ३ ॥

कोऊ तीरथ कोऊ व्रतकरि। कष्ट अनेक करै है।
सुंदर तिनकों को समुझावै। पुहपित वचन छरै हैं

॥ राग मारु ॥ पद ॥ ३३ ॥

जूवारी जूवा छांडोरे। हारि जाहुगे जनमको।
मति चौपडी मांडोरे ॥ टेक ॥
चौपड अंतहकरणकी। तीनौ गुन पासारे ॥
सारी कुबुद्धि धरतहो। यौं होइ विनासारे॥१॥
लखचौरासी घर फिरै। अब नरतन पायोरे ॥
पाकीकाचि सारि व्है। जो दाउ न आयोरे ॥ २
झुठी बाजी है मंडी। तामें मति भूलो रे ॥
जीव जुवारी बापुडा। काहेकों फूलो रे ॥ ३ ॥
सारि समुझिके दीजिये। तब कबहू न हारोरे॥
सुंदर जीतौ जनमको। जो राम संभारो रे ॥४॥

पद ॥ ३४ ॥

ऐसी मोहि रैनि बिहाइहो। कौन सूनै कासौं
कहौं बरनी नहिं जाई हो ॥ टेक ॥

पूरनब्रह्म विचारतैं। मोहि नींद न आई हो ॥
जागत जागत जागिया। सुतै न सुहाइ हो ॥१॥
कारण लिंग स्थूलकी। सब संक मिटाई हो ॥
जाग्रत स्वप्न सुषोपति। तीनौं बिसराई हो॥२॥
तुरिया पद अनुभयो। ताकी सुधि पाई हो ॥
अहं ब्रह्म यौं कहतहीं। गयो बिलाई हो ॥३॥
वचन तहां पहुंचै नहीं। यह सैन बताई हो ॥
सुंदर तुरीयातीत मैं। सुंदर ठहराई हो ॥ ४ ॥

पद ॥ ३५ ॥

ज्ञानी ज्ञानको जाने हो। मुक्त भयो विचरै सदा।
कछु संक न आनेहो ॥ टेक ॥
समझि बूझि चुप चाप व्है। वकबाद न ठाने हो
दूरी भई सब कल्पना। भ्रम भेदहि भाने हो॥१॥
देखै हस्तामलक ज्यौं। कछु नाहिं न छाने हो॥
सुंदर ऐसो व्है रहै। तबही मन मानै हो ॥ २ ॥

॥ राग भैरव ॥ पद ॥ ३६ ॥

सोई है सोई है। सोई है सबमैं ॥
कोई नहीं कोई नहीं। कोई नहीं तबमैं ॥टेक॥
पृथ्वी नहिं जल नहिं। तेज नाहिं तनमैं ॥
वायु नाहिं व्योम नाहिं। मन आदिक मनमैं ॥ १ ॥
शब्दादि रूप रस। गंध सहि धरमैं ॥
श्रोत्र त्वक चक्षु घ्राण। रसना न चरमैं ॥ २ ॥
सत रज तम नाहिं। तीन गुनहि तनमैं ॥
काल नाहिं जीव नाहिं। कर्म नाहिं कृतमैं ॥ ३ ॥
आदि नाहिं अंत नाहिं। मध्य नाहिं असमैं ॥
सुंदर सुभाव नहिं। सुंदर है तसमैं ॥ ४ ॥

॥ पद ॥ ३७ ॥

सोवत सोवत आयो।सुपनेही मैंसुपनो पायो।टेक
प्रथमहि सुपनो आयो येह। आपु भूलि-
करि मान्यो देह ॥
ताके पीछे सुपनो और।सुपनेही मैं कीनी दौर १

सुभा इंद्रि सुभा भोग । सुभा अंतहकरण बियोग
सुपनैहीमैं बांध्यो मोह । सुपनैही मैं भयो बिछोह
सुपनै स्वर्ग नरकमैं बास । सुपनैहीमैं जमकीत्रास
सुपनैमैं चौरासी फिरै । सुपनैहीमैं जनमै मरै ॥३
सतगुरु शब्द जगावनहार । जब यह उपजै
ब्रह्मविचार ॥
सुंदर जागि परै जे कोई । सब संसार सुपन
तब होई ॥ ४ ॥

॥ राग ललित ॥ पद ॥ ३८ ॥

तूं अगाध तूं अगाध । तूं अगाध देवा ॥
निगम नेति नेति कहै । जानै नहिं भेवा ॥टेक॥
ब्रह्मादिक विष्णु शंकर । शेषहू बखानै ॥
आदि अंत मधि तुमहि । कोऊ नहिं जानै ॥१॥
सनकादिक नारदादिक । सारदादिक गावै ॥
सुर नर मुनिगन गंधर्व । कोऊ नहिं पावै ॥२॥

साध सिध थकित भये । चतुर बहु सयाना ॥
सुंदरदास कहा कहै । अतिही हैराना ॥ ३ ॥

॥ राग देवगंधार पद ॥ ३९ ॥

अबके सतगुरु मोहि जगायो । सूतो हुतो अचेत नींदमैं । बहुत काल दुःख पायो ॥ टेक ॥
कबहू भयो देव कर्मनिकरि । कबहू इंद्र कहायो॥
कबहू भूत पिशाच निशाचर । खात न कबहु अघायो ॥ १ ॥
कबहू असुर मनुष्य देहधरि । भूमंडलमैं आयो॥
कबहू पशु पंछि पुनि जलचर । कीट पतंग दिखायो ॥ २ ॥
तीनो गुनके कर्मनि करिके । नाना योनि भ्रमायो
स्वर्ग मृत्यु पाताल लोकमैं । ऐसो चक्र फिरायो३
यह तौ सुपनो है अनादिको । बचन जाल बथरायो ॥

सुंदर ज्ञानप्रकाश भयो जब। भ्रम संदेह
विलायो ॥ ४ ॥

पद ॥ ४० ॥

अब तौ ऐसे करि हम जान्यो ।
जो नानात्व प्रपंच जहांलौं ।
मृगतृष्णाको पान्यो ॥ टेक ॥
रजुको सर्प देखी रजनीमैं ।
भ्रमत अति भय आन्यो ॥
रवि प्रकास जब भयो प्रातहि ।
रजुको रजु पहिचान्यो ॥ १ ॥
ज्यूं बालक बेताल देखिके ।
यौंही वृथा डरान्यो ॥
ना कछु भयो नहीं कछु व्है है ।
यह निश्चयकरि मान्यो ॥ २ ॥
शशा शृंग वंध्यासुत फूले ।
मिथ्या वचन बखान्यो ॥

तैसैं जगत कालत्रय नाहीं ।
समझि सकल भ्रम भान्यो ॥ ३ ॥
जो कछु हुतो रह्यो पुनि सोई ।
दुतियाभाव विलान्यो ॥
सुंदर आदि अंत मध सुंदर ।
सुंदरही ठहरान्यो ॥ ४ ॥

पद ॥ ४१ ॥

पदमैं निर्गुन पद पहिचाना । पदको अर्थ विचारै कोई । पावे पद निर्वाना ॥ टेक ॥
पद बिनचलैं जहां पद नाहीं । पद है सकल निधानां ॥
ज्यौं हस्तीके पदमैं सब पद । काहूपद न भुलाना
देव इंद्र विधि शिव वैकुंठहि।ए पद ग्रंथनि गाना॥
जीव पदसो परिचै नाहीं। मूये पद किन जाना
पद प्रसिद्ध पूरण अविनाशी।पद अद्वैत बखाना
पद है अटल अमरपद कहिये। पद आनंद नछाना

पद खोजै ते सब पद बिसरै। बिसरै ज्ञान रु ध्याना
पदको तातपर्य सो पावै। सुंदर पदहि समाना

पद ॥ ४२ ॥

अब हम जान्यो सबमैं साखी। साखि पुरातन
मुनि आमिली। देह भिन्न करि नाखी ॥टेक॥
साखी सनकादिक अरु नारद। दत्त कपिल
मुनि आखी॥
अष्टावक्र बसिष्ठ व्यास सुत। उन प्रसिद्ध
यह भाखी ॥ १ ॥
साखी रामानंद गुसांई। नाम कबीरहि राखी॥
साखी संत सकलहीं कहिये। गुरु दादू यह दाखी
साखी कोऊ और जानते। मनमैं यह अभिलाखी
अबतौ साखी भये आपही। सुंदर अनुभव चाखी

॥ राग बिलावल ॥ पद ॥ ४३ ॥

संत भलैं या जगमैं आये।
मनसा बाचा राम पढाये ॥

परम दयाल सकल सुख दाता ।
पर उपकारी किये बिधाता ॥ टेक ॥
किये बिधाता बडे ज्ञाता ।
शील संजम उर धरैं ॥
काम क्रोध क्लेश माया ।
राग द्वेषहि परहरै ॥ १ ॥
गुन निधान रु ज्ञान सागर ।
अति सुजान प्रवीन हैं ॥
यौं कहत सुंदर मुक्ति बिचरत ।
सदा ब्रह्महीं लीन हैं ॥ २ ॥

पद ॥ ४४ ॥

जिनके दर्शन पातक जाहीं ।
पसरत सकल विकार नसाहीं ॥
बचन सुनत भय भ्रम सब भागै ।
नख शिख रोम रोम सब जागै ॥टेक॥

जागै जु नख शिख रोम सबहीं ।
प्रेम उमगे पलकमैं ॥
पुनि गलित ह्वै करि अंग भीजै ।
सुख समुद्रकि झलकमैं ॥ १ ॥
वै हरन दुरगति करन सुभ मति ।
परम दुर्लभ गाईयें ॥
यौं कहत सुंदर संत ऐसे ।
बडे भागनि पाइयें ॥ २ ॥

पद ॥ ४५ ॥

साधकी पटंतर कोइ न तुलै ।
बाजि देखि कहा कोउ भूलै ॥
चिंतामन पारस कहा कीजै ।
हीरा पटंतर कैसैं दीजैं । ॥ टेक ॥
दीजैं न पटंतर चंद्र सूरज ।
दीपक अब को कहै ॥

वह कामधेनु रु कल्पतरुवर ।
चंदन पटंतर क्यूं लहै ॥ १ ॥
पुनि मेरु सागर नदी बोहिथ ।
धरनी अवर पेखिया ॥
यौं कहत सुंदर साध सरभरि ।
कोइ न जगमैं देखिया ॥ २ ॥

पद ॥ ४६ ॥

साधकि महिमा अगम अपारा ।
कही न जाइ कोटि मुख द्वारा ॥
जिनकी पदरज वंदहिं देवा ।
इंद्रसहित बिनवै करि सेवा ॥ टेक ॥
सेवा कराहिं पुनि इंद्र ब्रह्मा ।
धूप दीपनि आरती ॥
वह मही दुर्लभ दास हरिके ।
करै स्तुती भारती ॥ १ ॥

अति परम मंगल सदा तिनकै ।
साध महिमा जे कहैं ॥
जन्म साफल होई सुंदर ।
भक्ति दृढ हरिकी लहैं ॥ २ ॥

पद ॥ ४७ ॥

सोइ सोइ सब रैंनि बिहांनी ।
रतन जन्मकी खबर न जानी ॥ टेक ॥
पहिलै पहर मरम नहिं पावा ।
मात पितासौं मोह बंधावा ॥
खेलत खात हस्या कहु रोया ।
बालापन ऐसेही खोया ॥ १ ॥
दूजै पहर भया मतिवाला ।
परधन परत्रिय देखि खुसाला ॥
काम अंध कामनि संग जाई ।
ऐसैंहि यौवन गयो सिराई ॥ २ ॥

तीजे पहरि गया तरनापा ।
पुत्र कलित्रका भया संतापा ॥
मेरे पीछे कैसी होई ।
घरि घरि फिरि हैं लरिका जोई ॥ ३ ॥
चोथे पहरि जरा तन व्यापी
हरि न भज्यो इहिं मूरख पापी ॥
कहि समुझावै सुंदर दासा ।
राम विमुख मरि गये निरासा ॥ ४ ॥

पद ॥ ४८ ॥

कैसै राम मिलै मोहि संतो ।
यह मन थिर न रहाई रे ॥
निहचल निमष होत नहीं कबहु ।
चहुदिसि भागा जाई रे ॥ टेक ॥
कौन उपाई करौं या मनकों ।
कैसि विधि अटकाऊं रे ॥

ऐसैं छूटि जाइ या तनतैं ।
कितहू खोज न पाऊं रे ॥ १ ॥
सोये स्वर्ग पताल निहारै ।
जागै जात न दीसै रे ॥
खेलत फिरै बिखै बनमांहि ।
लीये पांच पचीसै रे ॥ २ ॥
मैं जान्यो मन अब थिर होई ।
दिन दिन परसन लागा रे ॥
नाना चीज धरौं ले आगे ।
तझ करंक परि कागा रे ॥ ३ ॥
ऐसै मनका कौन भरोसा ।
छिन छिन रंग अपार रे ।
सुंदर कहै नहीं वस मेरा ।
राखै सिरजनहार रे ॥ ४ ॥

पद ॥ ४९ ॥

रे मन राम सुमरि राम सुमरि। रामकी दुहाई ॥
ऐसो औसर विचारी कर। तैं हीरा न डारी ॥
पशुके लच्छन निवारी। मनुष देह पाई ॥टेक॥
सकल सौंज मिलि आई। श्रवन नैव बैन गाई॥
संतनिकों सिर नवाई। लेखै तनु लाई ॥ १ ॥
दासनिके होहु दास। छूटै सब आसपास ॥
कर्मनिकों करैं नास। सुद्ध होई भाई ॥ २ ॥
सद्गुरुकी करहु सेव। जिनतैं सब लहै भेव ॥
मिलि है अविनाशि देव।सकल भुवन राई ॥३॥
समझै अपनो सरूप। सुंदर है अति अनूप ॥
भूपनिको होइ भूप। साची ठकुराई ॥ ४ ॥

॥ पद ॥ ५० ॥

सबके आहि अन्नमय प्राण।
बात बनाई कहो कोऊ केती।
नाचि कूदिके तूटत तान ॥ टेक ॥

पंडित मुनि सूर कवि दाता ।
जो कोउ और कहावत जान ॥
जठराअग्नि प्रगट होई जबहीं ।
तबही विसरि जाई सब ज्ञान ॥ १ ॥
मीर मालिक उमराव छत्रपति ।
औरउ कहियत राजा रान ॥
जदपि सकल संपदा घरमैं ।
तदपि सुख देखियतकु मिलान ॥ २ ॥
आसन मारि रहै बनमांही ।
ते उठत होत मध्यान ॥
सुंदर ऐसी क्षुधा पापिनी ।
रहै नहीं काहूको मान ॥ ३ ॥

॥ पद ॥ ५१ ॥

एकहिं ब्रह्म विलास है । सूक्ष्म स्थूला ।
ज्यूं अंकूरतैं वृक्ष है । शाखा फल फूला ॥ टेक॥

जैसे भाजन मृत्तिका । अंतर नहिं कोई ॥
पानीतैं पाला भया पुनी पानी सोई ॥ १ ॥
जैसै दीपक तेजतैं । ऐसा यहु खेला ॥
घाट घरे बहु भांतिकै । है कनक अकेला॥२॥
बाय बघुरा कहनकौं । ऐसा कछु जाना ॥
बादर दीसत गगनमैं। तेऊ गगन बिलाना॥३॥
सतगुरुतैं संसा गया । दूजा भ्रम भागा ॥
सुंदर पटहि विचारतैं । सब देखै धागा ॥ ४॥

॥ पद ॥ ५२ ॥

एक अखंडित देखिये । सब स्वयंप्रकासा ॥
छता अनछता व्है गया।यह वडा तमासा॥टेक॥
पंच तत्त्व दीसै नाहिं । नहिं इंद्रिय देवा ॥
मन बुद्धि चित्त दीसै नहिं। है अलख अभेवा १
सत रज तम दीसै नहीं।नहिं जाग्रत सुपना ॥
सुषुपतिहू तुरिया नहिं ।नहिं और न अपना २

काल कर्म दीसै नहीं । नहीं आहि सुभावा ॥
प्रकृति पुरुष दीसै नहीं । नहिं आव न जावा ३
ज्ञेय ज्ञाता दीसै नहीं । नहीं ध्याता ध्याना ॥
सुंदर सोधत सोध्यतै । सुंदर ठहराना ॥ ४ ॥

पद ॥ ५३ ॥

जाके हृदैमैं ज्ञान है । ताहि कर्म न लागै ॥
सबपरि वैठै मक्षिका । सोपाकतैं भागै ॥ टेक॥
जहां पाहरु जागहि । तहां चोर न जाहि ॥
आंखिन देखत सिंहकौ । पशु दुर पलाही ॥१॥
जा घरमांहीं मंजार है ।तहां मूसक नासै ॥
शब्द सुनतही मोरका । अहि रहै न पासै ॥ २ ॥
यूं रवि निकट न देखियें । कवहू अंधियारा ॥
सुंदर सदा प्रकास मैं सवहीतैं न्यारा ॥ ३ ॥

॥ राग टोडीधयारा ॥ पद ॥ ५४ ॥

राम रमई यौं यौं समझियो ।
ज्यूं दर्पन प्रतिबिंब समईयो ॥ टेक ॥

करै करावै सब घट आपै ।
भिन्न रहै गुन कोइ न व्यापै ॥
रविके उदे करहीं क्रित लोई ।
सूरज कर्म लिपै नहीं कोई ॥ १ ॥
शब्द रूप रस गंध सपरसे ।
मन इंद्रिय नित्य न्यारो दर्से ॥
ऐसैं ब्रह्म जबहिं पहिचानै ।
सुंदरदास तबै मन मानै ॥ २ ॥

पद ॥ ५५ ॥

राम बुलावै राम बुलावै ।
राम बिना यह स्वास न आवै ॥ टेक ॥
रामहि श्रवनहु सबद सुनावै ॥
रामहि नैनहु रूप दिखावै ॥ १ ॥
रामहि नासा गंध लिझावै ॥
रामहि रसना रसहि चखावै ॥ २ ॥

रामहि दोऊ हाथ हलावै ॥
रामहि पावहू पंथ चलावै ॥ ३ ॥
रामहि तनको बसन उढावे ॥
राम सुवावै राम जगावै ॥ ४ ॥
रामहि चेतन जगत नचावै ॥
रामहि नाना खेल खिलावै ॥ ५ ॥
रामहि रंकहि राज करावै ॥
रामहि राजहि भीख मंगावै ॥ ६ ॥
रामहि बहुविधि जल बरखावै ॥
रामहि पलमैं धूरि उडावै ॥ ७ ॥
रामहि सबमैं भिन्न रहावै ॥
सुंदर वाकी वाही पावै ॥ ८ ॥

पद ॥ ५६ ॥

रामनाम रामनाम रामनाम लीजे ॥
रामनाम रटी रटी रामरस पीजे ॥ टेक ॥

रामनाम रामनाम गुरुतैं पाया ॥
रामनाम मेरै हिरदै आया ॥ १ ॥
रामनाम रामनाम भजि रे भाई ॥
रामनाम पटंतरि तुलै न काई ॥ २ ॥
रामनाम रामनाम है अति नीका ॥
रामनाम सब साधनका टीका ॥ ३ ॥
रामनाम रामनाम अति मोहि भावै ॥
रामनाम निसदिन सुंदर गावै ॥ ४ ॥

पद ॥ ५७ ॥

भजि रे भजि रे भजि रे भाई ।
लैरे लैरे लै सुखदाई ॥ टेक ॥
दैरे दैरे तन मन अपना ॥
है रे है रे है सब सुपना ॥ १ ॥
मेटि रे मेटि रे मेटि अहंकारा ॥
भेटि रे भेटि रे पीतम प्यारा ॥ २ ॥

गाइ रे गाइ रे गुन गोविंदा ॥
ध्याइ रे ध्याइ रे परमानंदा ॥ ३ ॥
खोलि रे खोलि रे भरम कपाटा ॥
बोलि रे सुंदर शब्द निराटा ॥ ४ ॥

पद ॥ ५८ ॥

खोजत खोजत सतगुरु पाया ।
धीरै धीरै सब समुझाया ॥ टेक ॥
चिंतत चिंतत चिंता भागी ॥
जागत जागत आतम जागी ॥ १ ॥
बूझत बूझत अंतरि बूझ्या ॥
सूझत सूझत सब कछु सूझ्या ॥ २ ॥
जानत जानत सोई जान्या ॥
मानत मानत निश्चै मान्या ॥ ३ ॥
आवत आवत ऐसी आई ॥
अब तौं सुंदर रही न काई ॥ ४ ॥

पद ॥ ५९ ॥

एक पींजारा ऐसा आया ।
रूह रूई पींजणकै कारण ।
आपण राम पठाया ॥ टेक ॥
पींजन प्रेम मूठि या मनको ।
लैकी तांति लगाई ॥
धुनिही ध्यान बंध्यो अति ऊंचो ।
कबहू छूटि न जाई ॥ १ ॥
जोइ जोइ निकट पिंजावन आवै ।
रूई सबनिकी पींजै ॥
परमारथकों देह धर्‍यो है ।
सम्यक् कछू हि लीजै ॥ २ ॥
बहुत रूई पींजी बहु बिधिकरि
मुदित भये हरि राई ॥
दादू दास अजब पींजारा ।
सुंदर बलि बलि जाई ॥ ३ ॥

पद ॥ ६० ॥

आया था इक आया था ।
जिनि दर्सन प्रगट दिखाया था ॥ टेक॥
श्रवणहु शब्द सुनाया था ॥
तिन सत्य स्वरूप बताया था ॥ १ ॥
ब्रह्मज्ञान समुझाया था ॥
तिन संसा दूरि बहाया था ॥ २ ॥
अलख खजीना ल्याया था
तिनि बांटि सबनिसों खायाथा ॥ ३ ॥
ऐसा दादू राया था ॥
सो सुंदरके मन भाया था ॥ ४ ॥

॥ राग असावरी ॥ ६१ ॥

कैसे धौ प्रीति रामजासों लागै ।
मन अपराधि चहुंदिस भागै ॥ टेक ॥
निसवासुर भरमै अति भारी ॥
कह्या न मानै बड़ा बिकारी ॥ १ ॥

भटकत डोलै विनही काजा ॥
बेसरमीकों नेकु न लाजा ॥ २ ॥
मेरो बस नांहीं कछु यातैं ॥
बारंबार पुकारत तातैं ॥ ३ ॥
आपुहि कृपा करै हरि सोई ॥
तौ सुंदर थिर काहे न होई ॥ ४ ॥

पद ॥ ६२ ॥

अब धू आत्म काहे न देखै ।
जाहि हतै सोइ तुझ मांहीं ।
कहा लजावत भेखै ॥ टेक ॥
हिंसा बहुत करै अपस्वारथ ।
स्वाद लग्यो मद मांसै ॥
महा माइ भैरूके सिर है ।
आपुहि बैठो ग्रासै ॥ १ ॥
गोरख भांगि भखी नहिं कबहू ।
सुरापान नहीं पीया ॥

जूठहि नांव लेत सिद्धनीको ।
नरक जाहिगो भीया ॥ २ ॥
कान फारिकै भस्म लगाई ।
योगी कीयो शरीरा ॥
सकल बियापि नाथ न जान्यो ।
जनम गमायो हीरा ॥ ३ ॥
नाटक चेटक जंत्र मंत्र करि ।
जगत कहा भरमावै ॥
सुंदरदास सुमरी अविनासा ।
अमर अभैपद पावै ॥ ४ ॥

पद ॥ ६३ ॥

साधौ साधन तनको कीजै ।
मन पवना पंचौ बसि राखै ।
सुनि सुधारस पीजै ॥ टेक ॥
चंद सूर दोउ उलटि अपूठा ।
सुखमनिके घर लीजै ॥

नाद बिंद जब गांठि परै तब ।
काया नेकु न छीजै ॥ १ ॥
राजस तामस दोऊ छांडै ।
सातिक वरतै तीजै ॥
चौथापदमैं जाइ समावै ।
सुंदर जुग जुग जीजै ॥ २ ॥

पद ॥ ६४ ॥

मेरा गुरु द्वै पख रहित समाना ।
पिंड ब्रह्मंड निरंतरि खेलै ।
ऐसा चतुर सयाना ॥ टेक ॥
पाप पुन्यकी बेरी काटी ।
हरख शोक नहीं आना ॥
रागदोषतैं भया बिवरजित ।
शीतल तपति बुझाना ॥ १ ॥
हिंदु तुरक दुहूंतैं न्यारा ।
देखै बेद कुराना ॥

मैं तैं मेटि तज्यो अपापर ।
नीच ऊंच सम जाना ॥ २ ॥
दिवस न रैनि सूर नहिं ससिहर ।
आदि अंति भ्रम भाना ॥
जन्म मरनका सोच न कोई ।
पूरण ब्रह्म पिछाना ॥ ३ ॥
जागि न सोवै खाइ न भूखा ।
मरै न जीवै माना ॥
सुंदरदास कहै गुरु दादू ।
देख्या अति हैराना ॥ ४ ॥

पद ॥ ६५ ॥

मेरा गुरु लागै मोहि प्यारा
शब्द सुनावै भ्रम उड्डावै ।
करै जगतसौं न्यारा ॥ टेक ॥
योग जुगतिकी सब विधि जानै ।
बातैं कछू न छानै ॥

मन पवना उलटा गहि आनै ।
आनै छानै जानै　　　　॥ १ ॥
पंचौ इंद्री दृढकरि राखै।
शुनि सुधारस चाखै ॥
वानी ब्रह्म सदाही भाखै ।
भाखै चाखै राखै　　　　॥ २ ॥
परमारथकों जगमैं आया ।
अलख खजीना ल्याया ॥
बांटि बांटि सवहिनसौं खाया ।
खाया ल्याया आया　　　　॥ ३ ॥
परम पुरुष सो प्रगटे आहू ।
श्रवन सुनाया नादू ॥
सुंदरदास ऐसा गुरु दादू ।
दादू नादू आदू　　　　॥ ४ ॥

पद ॥ ६६ ॥

कोइ पिवै रामरस प्यासा रे ।

गगन मंडलमैं अमृत सरवे ॥
उन्मनिके घर बासारे ॥ टेक ॥
सीस उतारि धरै धरती पर ।
करै न तनकी आसा रे ॥
ऐसा महिंगा अमी बिकावै ।
छह रुत बारह मासा रे ॥ १ ॥
मोल करै सो छकै दूरतैं ।
तोलत छूटै बासा रे ॥
जो पीवै सो जुग जुग जीवै ।
कबहु न होइ बिनासा रे ॥ २ ॥
या रस काज भये नृप योगी ।
छांडे भोग बिलासा रे ॥
सेज सिंघासन बैठे रहते ।
भसम लगाइ उदासा रे ॥ ३ ॥
गोरख नाथ भरथरी रसिया ।
सोई कबीर अभ्यासा रे ॥

गुरु दादू परसाद कछू इनके ।
पायो सुंदरदासा रे ॥ ४ ॥

पद ॥ ६७ ॥

मुक्ति तो धोखेकी नीसानी ।
सो कितहू नहीं ठौर ठिकाना ।
जहां मुक्ति ठहरानी ॥ टेक ॥
को कहै मुक्ति व्योमके उपरी ।
को पतालके मांहीं ॥
को कहै मुक्ति रहै पृथ्वी पर ।
ढूंढै तो कहूं नाहीं ॥ १ ॥
वचन बिचार न कीया न किनहू ।
सुनि सुनि सब उठि धायो ॥
गाडर ज्यूं मारग चाले है ।
आगै खोज बिलायो ॥ २ ॥
जीवत कष्ट करै बहुतेरे ।
मुये मुक्ति कहैं जाई ॥

धोखेही धोखे सब भूलै ।
आगे ऊवावाई ॥ ३ ॥
निज स्वरूपको जानि अखंडित ।
ज्यूंका त्यूंही रहिये ॥
सुंदर कछु ग्रहै नहीं त्यागै ।
वहै मुक्तिपद कहिये ॥ ४ ॥

पद ॥ ६८ ॥

राम निरंजन तूंही तूंही ।
अहंकार अज्ञान गयो जब ।
सो तूंही सो तूंही ॥ टेक ॥
तूंही तूंही तबलग कहिये ।
जबलग मैं मैं आगै ॥
मैं मैं मैं मैं होई बिछै जब ।
सोहं सोहं जागै ॥ १ ॥
सोहं सोहं कहै जबलग ।
तबलग दूजा कह्यिये ॥

सुंदर एक न दोइ तहां कछु।
ज्यूंका त्यूं व्है रहिये　　　॥ २ ॥

पद ॥ ६९ ॥

जो तूं जागै जग उपाधिमैं क्षीन होइ ज्यूं चंदा॥
॥ टेक ॥
सोइ रहैतैं है अखंड सुख तौ तूं जुग जुग जीवै॥
जौ जागै तौ परै मृत्युमुख वादिवृथा विष पीवै१
सोवै योगी जागै भोगी यह उलटी गति जानी
सुंदर अरथ विचारै याको सोई पंडित ज्ञानी ॥

पद ॥ ७० ॥

संतो घरहीमैं घर न्यारा।
पिंड ब्रह्मंड तहां कछु नाहीं।
निरालंब निरधारा ॥ टेक ॥
दिवस न रैनि सूर नहिं ससिहर।
अग्नि पवन नहिं पानी ॥

घर आकास तहां कछु नाहिं ।
ता घर सुरती समानी ॥ १ ॥
वेद पुरान सब्द नहीं पहुंचै ।
मनही मनमैं जाना ॥
उलटा पंथ मीनका मारग ।
सुन्यही सूनि पयाना ॥ २ ॥
आदि न अंत मध्य तहां नहीं ।
उतपति प्रलय न होई ॥
तीनहु गुनतैं अगम अगोचर ।
चौथा पद है सोई ॥ ३ ॥
अलिख निरंजन है अविनासी ।
आपै आप अकेला ॥
दादूदास जाइ तहां कीया ।
जीव ब्रह्मसौं मेला ॥ ४ ॥

पद ॥ ७१ ॥

औधूपारा इहि विधि मारौ ।

ब्है भसमंत उडै नहीं कबहू ।
ऐसी धवनी धारौ ॥ १ ॥
पलटै धात होई सब कंचन ।
जीवन जडी विचारो ॥
भागै रोग भूख अति लागै ।
जागै भाग तुह्मारो ॥ २ ॥
और कलाप करो काहेको ।
क्रिया क्रम सब डारो ॥
मिथ्या बूंटि खोदि मरो जिन ।
वृथा जनम कित हारो ॥ ३ ॥
सद्गुर भेद बतावै जबहीं ।
तबहि थिर ब्है पारो ॥
सुंदरदास कही समुझावै ।
बाजै प्रगट नगारो ॥ ४ ॥

राग सिंधूडो ॥ पद ॥ ७२ ॥

तडफडै सूर नीसान धाई पडै ।

कोटकी वोट सब छोडि चालै ॥
स्यामकै कामकों लोट अरु पोट व्है ।
निकसि मैदानमैं चोट घालै ॥ टेक ॥

जहां कडकडै वीर गजराज हय हडहडै ।
धडै हडै धरुनि ब्रह्मंड गाजै ॥
झल हलै स्वार हथियार अति खडहडै ।
देखतां दूरि भक भूर भाजै ॥ १ ॥

जहां तुपक तरवारि अरु सेल टक टूक व्है ।
बाणकि तान चहूं फेर होई ॥
गहर घमसाणमैं कहर धीरज धरै ।
हहरि भाजै नहीं सुभट सोई ॥ २ ॥

पिसन सब पेलि झड झेलि सनमुख लडै ।
मरदकों मारिकरि गरद मेलै ॥
पंच पचीस रिपु रीसकरि निरदलै ।
सीस झुंड मेल्हि कौ कमध खेलै ॥ ३ ॥

अगमको गम करै दृष्टि उलटी धरै ।
जीति संग्राम निजधाम आवै ॥
दास सुंदर कहै मौज मोटी लहै ।
रीझि हरिराई दरसन दिखावै ॥ ४ ॥

पद ॥ ७३ ॥

महा सूर तिनको जस गाऊं ।
जिन हरिसौं लै लाई रे ॥
मनमैं वासी कियो आप बसि ।
और अनीति उठाई रे ॥ टेक ॥
प्रथम सूर सतजुगमैं कहिये ।
ध्रु दृढ ध्यान लगायो रे ॥
माया छलकरि छलन आई ।
डिग्यो न बहुत झिगयो रे ॥ १ ॥
सनक सनंदन नारद सूरा ।
नौ जोगेस्वर न्यारा रे ॥

तीनगुनाको त्याग निरंतर ।
किये ब्रह्म विचारा रे ॥ २ ॥
ऋषभदेव नृप सूर सिरोमनि ।
जाई बस्यो बनमांही रे ॥
एक मेक व्है रह्यो ब्रह्मसों ।
सुध सरीरकी नाहीं रे ॥ ३ ॥
जन प्रहलाद जोध जोरावर ।
पिता दई बहु त्रासा रे ॥
रामनामकी टेक न छांडी ।
प्रगट भयो हरिदासा रे ॥ ४ ॥
सूरबीर दत्तात्रये ऐसो ।
विचरत इच्छा चारी रे ॥
भयो स्वतंत्र नहीं परतंत्र ।
सकल उपाधि निवारी रे ॥ ५ ॥
व्यासपुत्र सुकदेव सुभट अति ।
जनमत भयो विरक्ता रे ॥

रंभा मोहि सकी नहिं ताको ।
सदा ब्रह्म अनुरक्ता रे ॥ ६ ॥
गोरख नाथ भरथरी सूरा ।
कमधज गोपीचंदा रे ॥
चरपट कणेरी और चौरंगी ।
लीन भये तजि द्वंदा रे ॥ ७ ॥
रामानंद कियो सूरातन ।
कासी पुरी मंझारी रे ॥
लोक उपासिक शिवके होते ।
आनि भक्ति विसतारी रे ॥ ८ ॥
नामदेव अरु रंका वंका ।
भयो तिलोचन सूरा रे ॥
भगति करि भे छांडि जगतको ।
वाजै तनके तूरा रे ॥ ९ ॥
कलजुगमांहि कीयो सूरातन ।
दास कबीर निःसंका रे ॥

ब्रह्म अगनि प्रजाळि पलकमैं ।
जीति लियो गढ वंका रे ॥ १० ॥
जन रैदास साधि सुरातन ।
विघन मार मचाई रे ॥
सोझा पीपा सेन धना तिन ।
जीति बहुत लडाई रे ॥ ११ ॥
अंगद भुवन प्रस हरदासा ।
ज्ञान गह्यो हथियारा रे ॥
नानक काना बेण महाभद्र ।
भलो बजायो सारा रे ॥ १२ ॥
गुर दादू प्रगटे साभरिमैं ।
ऐसा सूर न कोई रे ॥
बचन बान लायो जाके उर ।
थकित भयो सुनि सोई रे ॥ १३ ॥
आदि अंत कीयो सूरातन ।
जुग जुग साध अनेकारे ॥

सुंदरदास मौज यह पावै ।
दीजै प्रेम विवेका रे ॥ १४ ॥

पद राग सोरठ ॥ ७४ ॥

जो कोई सुनो गुरुकी वानी ।
सो काहैकूं भ्रमै प्रानी ॥ टेक ॥
घट भीतरि सब दिखलावै ।
बडभागी होइ सु पावै ॥
जो शब्दमांहि मन राखै ।
सो राम रसायन चाखै ॥ १ ॥
घट भीतरि विष्णु महेसा ।
ब्रह्मादिक नारद सेसा ॥
घट भीतरि इंद्र कुबेरा ।
घट भीतरि प्रगट सुमेरा ॥ २ ॥
घट भीतरि सूरज चंदा ।
घट भीतरि सात समुंदा ॥

घट भीतरि कौतुक सारा ।
घट भीतरि सुरसरीधारा ॥ ३ ॥
घट भीतरि है रस भोगी ।
गोदावरि गोरख जोगी ॥
घट भीतरि सिधन मेळा ।
घट भीतरि आप अकेला ॥ ४ ॥
घट भीतरि मथुरा काशी ।
घट भीतरि गृह बनवासी ॥
घट भीतरि तीरथ न्हाना ।
घट भीतरि अवर न जाना ॥ ५ ॥
घट भीतरि नाचै गावै ।
घट भीतरि बैन बजावै ।
घट भीतरि फाग बसंता ।
घट भीतरि कामनि कंता ॥ ६ ॥
घट भीतरि स्वर्ग पताळा ।
घट भीतरि है क्षय काळा ॥

घट भीतरि जुग जुग जीव ।
घट भीतरि अमृत पीवै ॥ ७ ॥
जब घटसौं परिचय होई ।
तब काल न व्यापै कोई ॥
जन सुंदर कहि समुझावै ।
सतगुरु बिन कोई न पावै ॥ ८ ॥

पद ॥ ७५ ॥

मोहि सतगुरु कहि समुझाया हो ।
परम पुरुष बिन और न परसौं ।
पीव निरंजन राया हो ॥ टेक ॥
सब ऊपरि सो मेरा स्वामी ।
उस ऊपरि कोइ न बताया हो ॥
मनसा बाचा और करमना ।
वाहीसौं मन लाया हो ॥ १ ॥
घटधारीसौं प्रीति न मेरी ।
उस सतगुरुकी बलिहारी हो ॥

बंधन काटि किये जिन मुक्ता ।
और सब विपत्ति निवारी हो ॥ २ ॥
बानी सुनत परम सुख पायो ।
दुर्मति गई हमारी हो ॥
भर्म कर्मके संसै खोलै ।
दिये कपाट उधारी हो ॥ ३ ॥
माया ब्रह्म भेद समुझायो ।
सो हम लियो बिचारी हो ॥
आदि पुरुष अभि अंतरि राखै ।
डाइन दूरी विडारी हो ॥ ४ ॥
दया करी उन सब सुख दाता ।
अबकै लीये उबारी हो ॥
भव सागरमैं डूबत काढे ।
ऐसै परउपकारी हो ॥ ५ ॥
गुरु दादूके चरण कमलपर ।
मेल्हु सीस उतारी हो ॥

और कहा लै आगै राखै ।
सुंदर भेट तुह्मारी हो ॥ ६ ॥

॥ पद ॥ ७६ ॥

वे संत सकल सुख दाता हो ।
जिनके हृदै नाम निज निर्मल ।
प्रेम मगन रस माता हो ॥ टेक ॥
रोमांचित अरु गद गद वानी ।
पल पल पुलकत गाता हो ॥
सर्व भूतसौं दया निरंतरि ।
शीतल वैन सुहाता हो ॥ १ ॥
दर्शन करत तापत्रय भागै ।
दर्शन पाप निसाता हो ॥
मौनि रहै बूझैतैं बोलै ।
कहै ब्रह्मकी बाता हो ॥ २ ॥
कोई निंदै कोई वंदै ।
समदृष्टी तत्त्वज्ञाता हो ॥

कोप न करै हर्ष नहिं माने ।
परम पुरुषसौं राता हो ॥ ३ ॥
जगमैं रहै जगतसौं न्यारै ।
ज्यूं जलपूरई पाता हो ॥
सुंदरदास संतजन ऐसै ।
सिरजे आप विधाता हो ॥ ४ ॥

पद ॥ ७७ ॥

भाईरे सतगुरु कही समुझाया ।
मोहि एक बिचार बताया ॥ टेक ॥
धाये भूखे भूखे भूखे ।
जबलग नहीं संतोषा ॥
ध्याये ध्याये भूखे ध्याये ।
हरि भजि पायो मोषा ॥ १ ॥
बैठे चलते चलते चलते ।
जब लग मन थिर नाहीं ॥

बैठे बैठे चलते बैठे ।
जब समुझे हरि मांहिं ॥ २ ॥
निर्मल मैले मैले मैले ।
जबलग मनहिं विकारा ॥
निर्मल निर्मल मैले निर्मल ।
गलत भये गुन सारा ॥ ३ ॥
उत्तम मध्यम मध्यम मध्यम ।
जबलग बसत न जानी ॥
उत्तम उत्तम मध्यम उत्तम ।
आत्म दृष्टी पिछानी ॥ ४ ॥
साचा झूठा झूठा झूठा ।
जबलग आन पुकारै ॥
साचा साचा झूठा साचा ।
बाणी ब्रह्म उचारै ॥ ५ ॥
पंडित मूरख मूरख मूरख ।
जबलग अहं न जाई ॥

पंडित पंडित मूरख पंडित ।
दुविधा दूरि गमाई ॥ ६ ॥
मुक्ता बंध्या बंध्या बंध्या ।
जबलग तजी न आसा ॥
मुक्ता मुक्ता बंध्या मुक्ता ।
सबतें भया उदासा ॥ ७ ॥
जीत्या हाऱ्या हाऱ्या हाऱ्या ।
जबलग है अज्ञाना ॥
जीत्या जीत्या हाऱ्या जीत्या ।
सुंदर ब्रह्म समाना ॥ ८ ॥

पद ॥ ७८ ॥

सब कोऊ भूलि रहे इहि बाजी ।
आपु आपुके अहंकारमैं ।
पादसाह कहा पाजी ॥ टेक ॥
पादसाहिके बिभौ बहुतबिधी ।
खात मिठाई ताजी ॥

पेट पयादौ भरत आपनौ ।
जीमत रोटी भाजी ॥ १ ॥
पंडित भूले वेद पाठकरि ।
पढि क़ुरानकौं काजी ॥
वै पूरब दिस करै डंडवत ।
वै पछिमही निवाजी ॥ २ ॥
तीरथिया तीरथकौं दौरे ॥
हजकौं दौडे हाजी ॥
अंतर गतिकौं खौजै नांहिं ।
भ्रमणैंहीसौं राजी ॥ ३ ॥
अपनै अपनै मदके मानै ।
लखै न फूटी साजी ॥
सुंदर तिनहिं कहा अब कहिये ।
जिनकै भई दुराजी ॥ ४ ॥

॥ राग जेजेवंती ॥ पद ॥ ७९ ॥

काहेकौं भ्रमत है तूं बावरै अन्यत्र जाई ॥

जीसूं तूं कहत दूरि सो तौ तेरे पास रे ॥टेक॥
ऐसैं तूं विचार देखि व्यापक है तोहीमांहि ॥
दूधमांहिं घृत जैसौं फूलनमैं वास है ॥ १ ॥
वाहिरिकौं दौरे तेरे हाथ न परत कछु ॥
उलटि अपूठो तेरौ तोहीमैं प्रकास है ॥ २ ॥
जाकै रूप रेख कछू वरण कह्यो न जाई ॥
अलख अमूरति अमर अविनासी है ॥ ३ ॥
सोहं सोहं बार बार होतइ रहत नित ॥
याहिमैं समझि तो उठत तेरे स्वास है ॥ ४ ॥
यहहीं बिचारै जब सुंदरहिं स्वामी होई ॥
दूसरो विचारै तब सुंदरही दास है ॥ ५ ॥

पद ॥ ८० ॥

आपकों संभारै जब तूंहिं सुख सागर है ॥
आपकौं विसारै तव तूंहिं दुख पाई है ॥टेक॥
तूंही जब आवै ठोर दूसरौ न भासै और ॥
तेरीहि चपलतातैं दूसरो दिखाइ है ॥ १ ॥

ावै कान सुनि भावै दाहिणै पुकारी कहूं ॥
बकै न चेत्यो तो तूं पिछै पछताइ है ॥ २ ॥
ावै आजि भावै कल्पंत बीते होइ ज्ञान ॥
ही तूं अविनासी पदमैं समाइ है ॥ ३ ॥
ंदर कहत संत मारग बतावै तोहि ॥
री खुसी परै तहां तूंहिं चली जाइ है ॥ ४ ॥

॥ राग रामग्री ॥ पद ॥ ८१ ॥

वधू भेख देखि जिन भूलै ।
जबलग आत्म दृष्टि न आई ।
तब लग मिटै न सूलै ॥ टेक ॥
ुद्रा पहरि कहावै जोगी ।
जुगति न दिसे हाथा ॥
वह मारग कहुं रह्यो अंतहीं ।
पहूंचे गोरख नाथा ॥ १ ॥
संन्यास करै बहु तामस ।
लांबी जटा वधावै ॥

दृत्त देवकी रहनि न जानै ।
तत्त्व कहांतैं पावै ॥ २ ॥
मूंड मुडाई तिलक करि रुदा ये ।
माला गरै फुलाई ॥
जिहि सुमिरन कीनो सब संतन ।
सो तो खबर न पाई ॥ ३ ॥
तहबंध बांधी कुतका लीना ।
दम दम करै दिवाना ॥
महमदकी करणीं नहीं जानै ।
क्यूं पावै रहिमाना ॥ ४ ॥
दर्शन लियो भली श्रम कीनी ।
क्रोध करो जिन कोई ॥
सुंदरदास कहै अभि अंतरि ।
बस्तु बिचारो सोई ॥ ५ ॥

पद ॥ ८२ ॥

ये सब जानि जगतकी खोट ।

छांडि श्रीपति सरन साचौ ॥
गहै झूठी वोट ॥ टेक ॥
दगावाज प्रचंड लोभी ।
कामना नहीं छेह ॥
भूत आगै भूत मागै ।
परैगी सिर खेह ॥ १ ॥
देव देवी सकल भ्रम भ्रम ।
कहूं न पूजी आस ॥
मानखा तन पाई ऐसो ।
कीयो यौंही नास ॥ २ ॥
कष्ट करि करि स्वरग वंछहि ।
और पृथवी राज ॥
महामूढ अज्ञान अपनो ।
करही बहुत अकाज ॥ ३ ॥
सुख निधान सुजान समरथ ।
ताहि भजत न कोई ॥

कहत सुंदरदास ऐसे ।
काज कैसे होई ॥ ४ ॥

॥ राग बसंत ॥ पद ॥ ८३ ॥

हम देख वसंत कियो विचार ।
यह माया खेलै अति अपार ॥ टेक ॥
यह छिन छिन मांहि अनेक रंग ।
पुनि कहूं विछुरे कहूं करै संग ॥
गुन धरि बैठि कपट भाई ।
यह आपुहि जनमैं आप खाई ॥ १ ॥
यहु कहूं कामनि कहूं भई कंत ।
कहूं मारै कहूं दयावंत ॥
कहूं जागै कहूं रही सोई ।
यह कहूं हसैं कहूं उठै रोई ॥ २ ॥
यह कहूं पाति कहूं भई देव ।
पुनि कहूं मुक्तिकरि करै सेव ॥

कहूं मालिन कहूं भई फूल ।
कहूं सुखिम कहूं व्है स्थूल ॥ ३ ॥
यह तीनलोकमैं रही पूरी ।
भागि कहा कोई जाइ दूरि ॥
जो प्रगटै सुंदर ज्ञान अंग ।
तो माया मृगजल रज्जु भुजंग ॥ ४ ॥

पद ॥ ८४ ॥

देखो घट घट आत्माराम ।
निरंतर खेलत सर सब संत ॥
ऐसो ख्याली ख्याल किनो है ।
कबहू न आवत अंत ॥ टेक ॥
चारे खानि बिसतार जगत यहै ।
चौरासीलक्ष जंत ॥
खेचर भूचर अरु जलचर ।
बहु विधि सृष्टि रचंत ॥ १ ॥

धरती पवन गगन अपानी ।
अग्नि सदा बरतंत ॥
चंद सूर तारा गन सबही ।
देव यक्ष अगनंत ॥ २ ॥

ज्यौं समुद्रमैं फेन बुदबुदा ।
लहरी अनेक उठंत ॥
तरवर तत्त्व रहै एकरस ।
झरि झर पतर परंत ॥ ३ ॥

ज्यौंका त्यौंही खेल पसारा ।
बीत्यो काल अनंत ॥
सुंदर ब्रह्म विलास अखंडित ।
जानत है सब संत ॥ ४ ॥

॥ राग गुंड ॥ पद ॥ ८५ ॥

विरहन है तुम दरस पियासी ॥
क्यूं न मिल्यो मेरे पिय अविनासी ॥टेक॥

एते दिन हौं काइ विसारी ॥
निसदिन झूरि मरत है नारी ॥ १ ॥
विभिचारनि होती नाहीं ॥
लै पतिव्रतहि रही मनमांहीं ॥ २ ॥
तुम तौ वहुत तृयनि संग कीनो ॥
मैं तौ एक तुह्म चित दीनो ॥ ३ ॥
सुंदरदास भई गति ऐसी ॥
चात्रक मीन चकोरहि जैसी ॥ ४ ॥

पद ॥ ८६ ॥

लागी प्रीति पियासौं साची ॥
अवहु प्रेम मगन व्है नाची ॥ टेक ॥
लोक बेद डर रह्यो न कोई ॥
कुल मरजादा कदकी खोई ॥ १ ॥
लाल छोडि सिर फरका डारा ॥
अब किन हसौ सकल संसारा ॥ २ ॥

भावै कोई करहु कसोटी ॥
मेरे तनकी बोटी बोटी ॥ ३ ॥
सुंदर जबलग संका राखै ॥
तबलग प्रेम कहातैं चाखै ॥ ४ ॥

॥ राग नट ॥ पद ॥ ८७ ॥

यह तौ एक अचंभो भारी ।
करहु आप सिर देहु औरके ।
कैसी रीति तुह्मारी ॥ टेक ॥
पंचतत्त्व गुन तीन आनिके ।
जुक्ति मिलाइं सारी ॥
आपुन निर्बिकार हुइ बैठे ।
हमकों किये बिकारी ॥ १ ॥
जडकी सक्ति कहांकी स्वामी ।
देखहु सृष्टि निहारी ॥
हलन चलन चुंबकतैं दीसै ।
सूई न चलत बिचारी ॥ २ ॥

माया मोह लगाई सबनकों ।
मोहे नर अरु नारी
ममता मच्छर अहंकारकी ।
पाशि गरेमैं डारी ॥ ३ ॥
ठगविद्या नीकी जानत हो ।
बडे चतुर ब्यौपारी ॥
हमकों दोष न देहु गुसांई ।
सुंदर कहत उघारी ॥ ४ ॥

पद ॥ ८८ ॥

बाजी कौन रचि मेरे प्यारे ।
आपु गोपि व्है रहे गुसांई ।
जग सबहीसो न्यारे ॥ टेक ॥
ऐसो चेटक कीयो चेटकी
लोग भुलाये सारे ॥
नानाविधिके रंग दिखाये ।
राते पीरे कारे ॥ १ ॥

पाख परेवा धूरिसु चावरि ।
लुक अंजन विस्तारे ॥
कोई जानि सकै नहीं तुमकों ।
हुन्नर बहुत तुह्मारे ॥ २ ॥

ब्रह्मादिक मुनि पार न पाए ।
मुनि जन योजत हारै ॥
साधक सिद्ध मौनि गहि वैठे ।
पंडित कहा विचारै ॥ ३ ॥

अतिअगाध अतिअगम अगोचर ।
च्यारौं वेद पुकारै ॥
सुंदर तेरी गति तूं जानै ।
किनहू नहीं निरधारै ॥ ४ ॥

॥ राग सारंग ॥ पद ॥ ८९ ॥

देखहु दुरमति या संसारकी ।
हरिसो हीरा छांडि हाथतैं ।

बांधत मोट विकारकी ॥ टेक ॥
नानाविधिके कर्म कमावत ।
खबर नहीं सिरभारकी ॥
झूठे सुखमैं भूलि रहै हैं ।
फूटि आंखि गंवारकी ॥ १ ॥
कोई खेती कोई बनजी लागै ।
कोई आस हथ्यारकी ॥
अंध धंधमैं चहुंदिस धाये ।
सुधि बिसरी किरतारकी ॥ २ ॥
नरक जानके मारग चालै ।
सुनि सुनि बात लबारकी ॥
अपने हाथि गलेमैं बाही ।
पासी माया जारकी ॥ ३ ॥
बारंबार पुकारि कहतहौं ।
सौ है सिरजनहारकी ॥

सुंदरदास विनस करि है ।
देह छिनकमैं छारकी ॥ ४ ॥

पद ॥ ९० ॥

यामैं कोउ नहीं काहूकोरे ।
राम भजन करि लेहु बावरे ।
औसर काहे चूकोरे ॥ टेक ॥
जिनसो प्रीति करतहै गाढी ।
सो मुख लावै ल्यूकोरे ॥
जारि बारि तन खेह करैंगे ।
देदे मूद ठरूकोरे ॥ १ ॥
जोरि जोरि धन करत एकठौ ।
देत न काहू टुकोरे ॥
एक दिना यौंही सब जैहैं ।
जैसैं सरवर सूकोरे ॥ २ ॥
अजहु बेगि समझि किन देखो ।
यहु संसार भिभूकोरे ॥

माया मोह छांडिकरि बोरै ।
सरन गह्रो हरिजूकोरे ॥ ३ ॥
मान पिंड सरजे जिन साहिब ।
ताको काहि न कूकोरे ॥
सुंदरदास कहै समुझावै ।
चेला है दादूकोरे ॥ ४ ॥

पद ॥ ९१ ॥

स्वामी पूरण ब्रह्म बिराजहीं ।
सदा प्रकाश रहै जिनकै उर ।
भ्रम तिमर सब भाजहि ॥ टेक ॥
भाव भगति अरु प्रेम मगन अति ।
रोम रोम धूनि बाजहि ॥
ज्ञान ध्यान सबहीं विधि पूरन ।
सकल भवनमैं गाजहि ॥ १ ॥
दीन दयाल परम सुखदाई ।
करत सबनको काजही ॥

जिनकी महिमा जाई न बरनी ।
फेरी सवांरत साजही ॥ २ ॥
अति अपार भवसागर तारत ।
देकरि नाम जहाजहीं ॥
अनायास प्रभु पार करतहै ।
बांह गहेकी लाजहीं ॥ ३ ॥
कीये प्रगट जगदीस जगतमैं ।
नाना भांति निवाजही ॥
सुंदरदास कहैं गुरुदादू ।
है सबके सिरताजही ॥ ४ ॥

॥ राग मलार ॥ पद ॥ ९२ ॥

अब हम गहे रामजीके सरनै ।
वा बिन और नहीं कोई समरथ ।
मेटै जामण मरनै ॥ टेक ॥
भटकत फिरे बहुत दिन तांई ।
कहूं न पार उतरनै ॥

आन देवकी सेवा करि करि ।
लागे बहुतहि जरनै ॥ १ ॥
काहू ऊपर कियो बहुत हठ ।
काहू ऊपर धरनै ॥
दीजै दोष कर्म अपनेकों ।
वै दिन यौंहिं भरनै ॥ २ ॥
औतारनकी महिमा सुनि सुनि ।
चाले तीरथ फिरनै ॥
दियो बताई पुरुष वह एकै ।
सुंदर का कहि बरनै ॥ ३ ॥

पद ॥ ९३ ॥

देखो भाई ब्रह्माकाश समान ।
परब्रह्म चेतन व्योम जड ॥
यह बिशेषता जान ॥ टेक ॥
दोऊ व्यापक अकल अपरिमित ।
दोऊ सदा अखंड ॥

दोऊ लीपै छिपै कहूं नाहिं ।
पूरण सब ब्रह्मंड ॥ १ ॥
ब्रह्म मांहि यह जगत देखियत ।
व्योम मांहिं घन यौंही ॥
जगत अभ्र उपजै अरु विनसै ।
वे हैं ज्यांके त्यांही ॥ २ ॥
दोऊ अक्षय अरु अविनाशि ।
दृष्टि मुष्टि नहिं आवै ॥
दोऊ नित्य निरंतर कहिये ।
यह उपमान बतावै ॥ ३ ॥
ए हैं तौ एक रूप दिखाई हैं ।
भ्रम मति भूलहु कोई ॥
सुंदर कंजन तुलै लोह संग ।
तौ कहा सरभरि होई ॥ ४ ॥
॥ राग काफी ॥ पद ॥ ९४ ॥
हरि आप अपरछिन हो रहे हो ।
ताहि लिपै छिपै कछु नांहि ॥ टेक ॥

ॐकारका आदि देहो ।
और सकल ब्रह्मंड ॥
खेलत माया मोहनी हो ।
सप्तद्वीप नव खंड ॥ १ ॥
ब्रह्मा सावित्री मिले हो ।
विष्णु लक्ष्मी संग ॥
शंकर गौरि प्रसिध है हो ।
ये मायाके रंग ॥ २ ॥
नाना विधि व्है विसतरि हो ।
खेलन लागी फाग ॥
ब्रह्म न काहू मिले न देहो ।
रोकि रही सब माग ॥ ३ ॥
माया जडसुं कहा करै हो ।
प्रेरक औरे कोई ॥
ज्यों बाजीगर पूतली हो ।
हाथ नचावै सोई ॥ ४ ॥
लोक चेष्टा करत है हो ।

सूरजके जू प्रकास ॥
ताहि कछु व्यापै नहीं हो ।
हर्ष सोक दुख त्रास ॥ ५ ॥
अहंकारकों धरत है हो ।
तवलग जीव प्रमान ॥
अंधकार तब भागि है हो ।
जबसुं उदै होई ज्ञान ॥ ६ ॥
जीव सीव अंतरि यहै हो ।
देखहु प्रगट है नैन ॥
जैसे जलतैं उपजै हो ।
तरंग बुदबुदा फैन ॥ ७ ॥
परमारथ करि देखिये तौ ।
है सब ब्रह्म विलास ॥
कहन सुननकों दूसरो हो ।
गावत सुंदरदास ॥ ८ ॥
॥ राग संकराभरन ॥ पद ॥ ९५ ॥
मन कौंनसौं जाई अटक्यो रे ।

ऐसें बंध्यो जैसे छोऱ्यो न छूटै ।
केउक वरिसां झटक्यो रे ॥ टेक ॥
जाही दिस तूं भ्रमतोही आयो ॥
ताही दिसकों लटक्यो रे ॥ १ ॥
भूलि रह्यो विषयासुखमांहीं ॥
याहीतैं निसदिन भटक्यो रे ॥ २ ॥
गुरु साधुनको कह्यो न मानै ॥
बहु बिधि करि उ हटक्यो रे ॥ ३ ॥
सुंदर मंत्र न लागत कोई ॥
माया सापणि गटक्यो रे ॥ ४ ॥

॥ पद ॥ ९६ ॥

मन कौनसौं लग भूल्योरे ।
इंद्रिनीके सुख देखत नीके ।
जैसे सेवरि फूल्यो रे ॥ टेक ॥
दीपक ज्योति पतंग निहारै ॥
जरि बरि गयो समूल्यो रे ॥ १ ॥

झुठी माया है कछु नाहीं ॥
मृगतृष्णामैं झूल्यो रे ॥ २ ॥
जिति तिति फिरै भटकतो यौंही ॥
जैसें बापु बघूल्यो रे ॥ ३ ॥
सुंदर कहत समझि नहिं कोई ॥
भवसागरमैं झूल्यो रे ॥ ४ ॥

॥ राग धनाश्री ॥ पद ॥ ९७ ॥

हरि हम जानिया । है हरि हमहि मांहिं ॥
जो बाहिरकों देखिये । तो कछु दूजा नांहिं ॥टेक
जो हम इहां बैठे रहैं । तो वह नांहिं दूर ॥
जो शत जोजन जाइये । तो वहां ऊ भरपूर १
सेसनाग वैकुंठ लौं । जहां लगे ब्रह्मंड ॥
वै हरि वहां ऊतै परै । इहां परै नहिं खंड ॥२॥
यौंही बेदनमैं कह्यो । यौंही भाखत संत ॥
यौं जानै बिन व्है नहिं । जनम मरनको अंत ३
जाको अनुभव होइ है । सोई जानै जान ॥
सुंदर याही समझि है । याही आतमज्ञान ॥४॥

॥ पद ॥ ९८ ॥

ब्रह्मविचारतैं ब्रह्म रह्यो ठराई ।
और कछू न भयो हूतो । भ्रम उपज्यो थो आई
॥ टेक ॥
ज्यौं अंधियारी रैनमैं। कलपि लियो रजु व्याल।
जब निकेकरि देखियौं। भ्रग भाग्यो ततकाल १
ज्यूं सुपनै नृप रंक व्है । भूलि गयो निजरूप॥
जागि पर्‍यो जब सुपनतैं । भयो भूपको भूप २
ज्यों फिरतें फिरतो दिशै। जगत सकलही ताही
फिरत रह्यो जब बैठिकै। तब कछु फिरत न आही
सुंदर और न व्है गयो । भ्रमतैं जान्यो आन
अब सुंदर सुंदर भयो। सुंदर उपज्यो ज्ञान ४

॥ राग आरती ॥ पद ॥ ९९ ॥

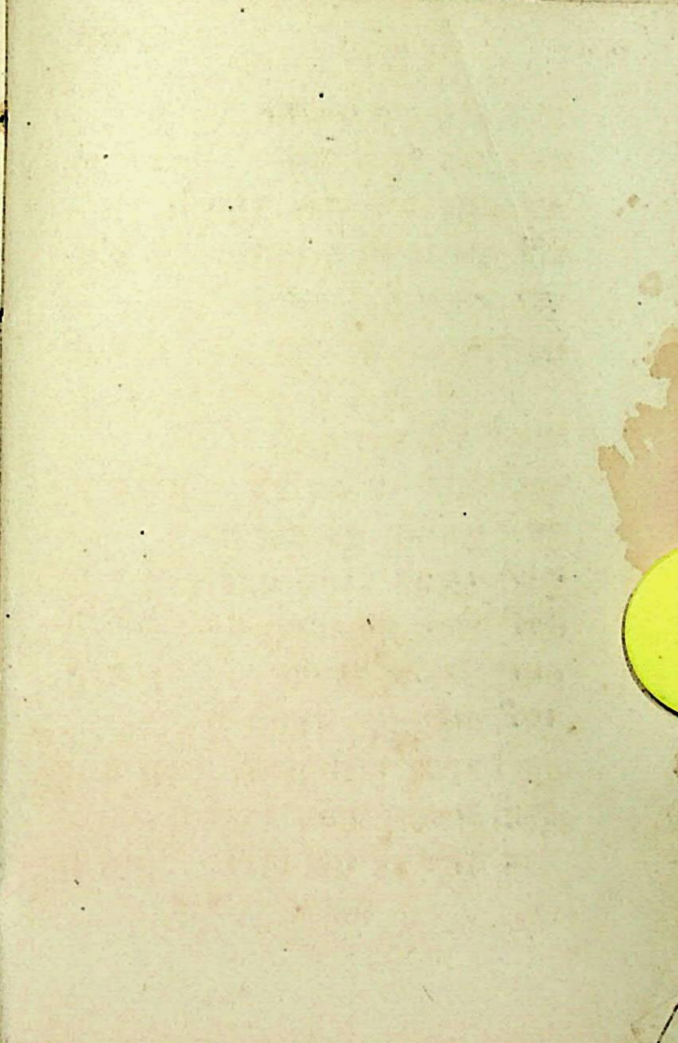
आरती परब्रह्मकी कीजैं ।
और ठौर मेरो मन न पतीजैं ॥ टेक ॥
गगन मंडलमैं आरती साजी ॥
सबद अहद झारी ब्राजी ॥ १ ॥

दीपक ज्ञान भया प्रकासा
सेवक ठाडे स्वामी पासा ॥ २ ॥
अथ उछाह अति मंगल चारा ॥
अति सुख बिलसै बारंबारा ॥ ३ ॥
सुंदर आरति सुंदर देवा ॥
सुंदरदास करै तहां सेवा ॥ ४ ॥

॥ पद ॥ १०० ॥

आरती कैसे करौं गुसांई ॥
तुमही व्यापि रहे सब ठांई ॥ टेक ॥
तुमही कुंभ नीर तुम देवा ॥
तुमही कहियत अलख अभेवा ॥ १ ॥
तुमही दीपक धूप अनूपा ॥
तुमही घंटानाद स्वरूपा ॥ २ ॥
तुमही पाती पुहुम प्रकासा ॥
तुमही ठाकुर तुमही दासा ॥ ३ ॥
तुमही जलथल पावक पवना ॥
सुंदर पकरि रहै मुख मौना ॥ ४ ॥

समाप्त.



Ram Ram
Ram Ram
Ram Ram
Ram Ram
Ram Ram

[illegible]

